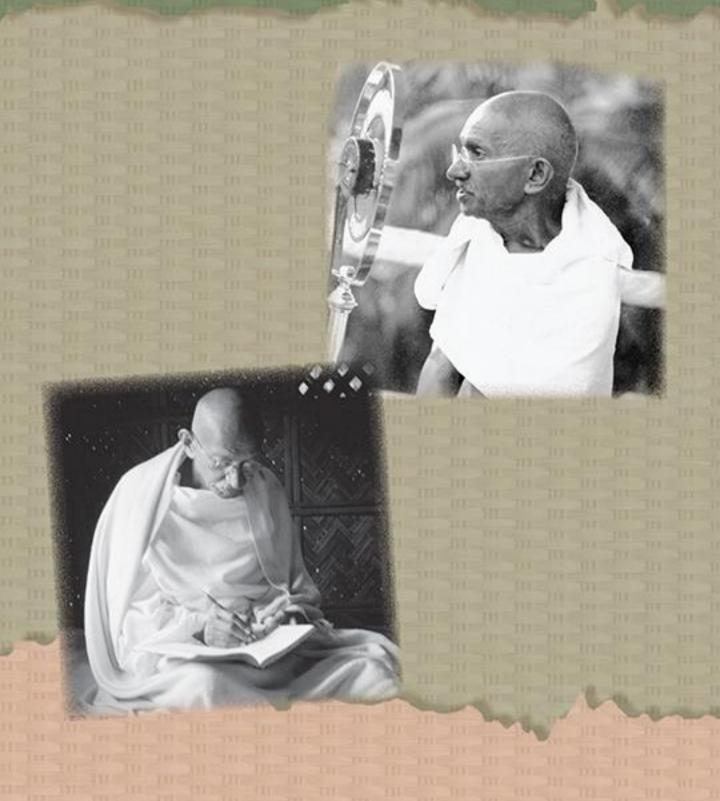


[राष्ट्रपिता द्वारा लोक-प्रतिनिधियों से रखी गई अपेक्षाएँ] संग्राहक हरिप्रसाद व्यास





गांधीजी की अपेक्षा

[राष्ट्रपिता द्वारा लोक-प्रतिनिधियों से रखी गई अपेक्षाएँ]

मो. क. गांधी

संग्राहक

हरिप्रसाद व्यास

पहली आवृत्ति: जनवरी १९६६

ISBN 978-81-7229-151-8

मुद्रक और प्रकाशक विवेक जितेन्द्र देसाई

नवजीवन मुद्रणालय

अहमदाबाद - ३८० ०१४

फोन : ०७९ - २७५४०६३५, २७५४२६३४

E-mail: sales@navajivantrust.org | Website: www.navajivantrust.org



प्रकाशक का निवेदन

गांधीजी की कार्य-पद्धित का निरीक्षण करने पर उसका एक मुख्य लक्षण सहज ही ध्यान में आता हैं। सार्वजिनक हित के प्रश्नों का विचार करते समय उनके निर्णय किसी विशेष विचारसरणी के आधार पर अथवा किसी निश्चित सिद्धान्त से फलित नहीं होते थे। उनका ध्यान केवल इसी बात पर केन्द्रित रहता था कि सत्य और अहिंसा के मूलभूत सिद्धान्तों को देश के शासन से सम्बन्धित कामकाज में व्यवहार का रूप कैसे दिया जाए। काँग्रेस का और काँग्रेस के द्वारा भारतीय राष्ट्र का उन्होंने जो मार्गदर्शन किया, उसे समझने के लिए यह बात खास तौर पर ध्यान में रखने जैसी है।

गांधीजी ने स्वराज्य की स्थापना के लिए काँग्रेसजनों को अपनी कार्य-पद्धित की तालीम दी थी; इतना ही नहीं, स्वराज्य की स्थापना होने के बाद स्वराज्य में राज्य-प्रबन्ध कैसे किया जाए, इस विषय में काँग्रेसजनों की दृष्टि और समझ का भी उन्होंने विकास किया था।

१९३७ में भारत की जनता को प्रान्तीय स्वराज्य के मर्यादित अधिकार प्राप्त हुए उस समय से आरंभ करके १९४७ में शासन की सम्पूर्ण सत्ता और अधिकार भारत के लोगों को मिले तब तक और उसके बाद भी गांधीजी ने अपना यह कार्य जीवन के अंतिम दिन तक चालू रखा था।

स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र की राज्य-व्यवस्था के बारेमें गांधीजी का मूल आग्रह यह था कि जिन सेवकों पर देश के शासन की ज़िम्मेदारी है, उन्हें दो बातों का सदा पूरा ध्यान रखना चाहिए: (१) उन्हें एक ग़रीब राष्ट्र की राज्य-व्यवस्था चलानी है; और (२) उसे चलाते हुए उन्हें भारत के पिछड़े हुए और ग़रीब जन-समुदाय के हित का सबसे पहले ख़याल रखना है। गांधीजी १९१५ में स्थायी रूप से भारत में रहने के लिए दक्षिण अफ्रीका से लौटे तभी से उन्होंने यह समझाना शुरू कर दिया था कि यह कार्य कैसे किया जाए। इसलिए पहले १९३७ में और फिर १९४७ के बाद गांधीजी ने भारत का राजकाज चलाने वाले जनसेवकों को यह बताया था कि उनकी ज़िम्मेदारी कैसी और कितनी है।

इस पुस्तक में गांधीजी के इस विषय से सम्बन्धित भाषणों और लेखों का संग्रह किया गया है। इन लेखों और भाषणों में उन्होंने स्पष्ट रूप से यह दिखाया है कि काँग्रेसजनों ने भारत का ज्ञासन-तंत्र हाथ में लेकर कैसी ज़िम्मेदारी अपने सिर उठाई है और इस ज़िम्मेदारी को वे किस प्रकार भलीभाँति अदा कर सकते हैं। गांधीजी की रीति आदेश देने की नहीं थी। और न उन्होंने कभी यह माना कि काँग्रेसजनों को आदेश देने की कोई सत्ता उनके पास है। वे काँग्रेसियों के भीतर की सदभावना और अच्छाई से अपील करते थे और यह विश्वास रखते थे कि उनकी अपील व्यर्थ नहीं जाएगी।

जनसेवकों को भारत की शासन-व्यवस्था द्वारा भारतीय जनता की कितनी और कैसी सेवा करनी है, इस सम्बन्ध में गांधीजी की आशाओं और अपेक्षाओं का दर्शन हमें इस संग्रह में होता है। ऐसा लगता है कि आज मूलभूत बातों को कुछ हद तक भुलाया जा रहा है और राजनीतिक तथा सार्वजनिक कार्यकर्ता कुछ मिश्र प्रयोजन से कार्य करते दिखाई देते हैं। ऐसे समय यह संग्रह हमें जाग्रत करने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

आशा है, भारत की शासन-व्यवस्था की ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर लेने वाले सेवकों से राष्ट्रिपता ने जो अपेक्षाएँ रखी हैं तथा इस ग़रीब देश की जनता के प्रति उनका जो कर्तव्य है, उसका स्पष्ट दर्शन उन्हें इस संग्रह में होगा।

२६-१-१९६६

* * *

पाठकों से

मेरे लेखों का मेहनत से अध्ययन करने वालों और उनमें दिलचस्पी लेने वालों से मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुझे हमेशा एक ही रूप में दिखाई देने की कोई परवाह नहीं है। सत्य की अपनी खोज़ में मैंने बहुत से विचारों को छोड़ा है और अनेक नई बातें मैं सीखा भी हूँ। उमर में भले ही मैं बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आंतरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटने के बाद मेरा विकास बन्द हो जाएगा। मुझे एक ही बात की चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्यनारायण कि वाणी का अनुसरण करने की मेरी तत्परता। इसलिए जब किसी पाठक को मेरे दो लेखों में विरोध जैसा लगे, तब अगर उसे मेरी समझदारी में विश्वास हो तो वह एक ही विषय पर लिखे हुए दो लेखों में से मेरे बाद के लेख को प्रमाणभूत माने।

हरिजनबन्धु, ३०-४-१९३३

गांधीजी



अनुक्रमणिका

प्रकाशक का निवेदन

विभाग - १: प्रास्ताविक

- १. अधिकार-पत्र
- २. संसदीय ज्ञासन-व्यवस्था

विभाग- २: विधानसभाएँ

- ३. विधानसभाओं में जाना
- ४. धारासभाएँ और रचनात्मक कार्यक्रम
- ५. धारासभाओं का मोह
- ६. रचनात्मक कार्यक्रम

विभाग- ३ : विधानसभाओं के सदस्य

- ७. शपथ-पत्र का मसविदा
- ८. धारासभाओं के सदस्य
- ९. धारासभा की सावधानी
- १०. संविधान-सभा फूलों की सेज नहीं

विभाग - ४ : विधानसभा के सदस्यों का भत्ता

- ११. धारासभा के काँग्रेसी सदस्य और भत्ता
- १२. धारासभा के सदस्यों की तनख़ाह

विभाग- ५: विधानसभा के सदस्यों को चेतावनी

- १३. बड़े दुःख की बात
- १४. एक एक पाई बचाइए
- १५. हम सावधान रहें
- १६. काँग्रेसजनों में भ्रष्टाचार

विभाग- ६: मतदान, मताधिकार और कानून

- १७. धारासभा के सदस्य और मतदाता
- १८. स्त्रियाँ और विधानसभाएँ
- १९ मताधिकार
- २०. कानून द्वारा सुधार



विभाग-७: पद-ग्रहण और मंत्रियों का कर्तव्य

- २१. काँग्रेसी मंत्रि-मंडल
- २२. कितना मौलिक अन्तर है!
- २३. मंत्रीपद कोई पुरस्कार नहीं है
- २४. विजय की कसौटी
- २५. पद-ग्रहण का मेरा अर्थ
- २६. आलोचनाओं का जवाब
- २७. काँग्रेसी मंत्रियों की चौहरी ज़िम्मेदारी
- २८. शराबबन्दी
- २९. खादी
- ३०. काँग्रेस सरकारें और ग्राम-सुधार
- ३१. काँग्रेसी मंत्रि-मंडल और नई तालीम
- ३२. विदेशी माध्यम
- ३३. शालाओं में संगीत
- ३४. साहित्य में गंदगी
- ३५. जुआ, वेश्यागृह और घुड़दौड़
- ३६. कानून-सम्मत व्यभिचार
- ३७. मंत्रि-मंडल और हरिजनों की समस्याएँ
- ३८. आरोग्य के नियम
- ३९. लाल फीताशाही

विभाग- ८: मंत्रियों के वेतन

- ४०. व्यक्तिगत लाभ की आशा न रखें
- ४१. वेतनों का स्तर
- ४२. मंत्रियों का वेतन
- ४३. मंत्रियों के वेतन में वृद्धि
- ४४. हम ब्रिटिश हुकूमत कि नकल न करें

विभाग- ९: मंत्रियों के लिए आचार-संहिता

- ४५. स्वतंत्र भारत के मंत्रियों से
- ४६. मंत्रियों तथा गवर्नरों के लिए विधि-निषेध
- ४७. दो शब्द मंत्रियों से



- ४८. मंत्रियों को मानपत्र और उनका सत्कार
- ४९. मानपत्र और फूलों के हार
- ५०. मंत्रियों को चेतावनी
- ५१. ग़रीबी लज्जा कि बात नहीं
- ५२. अनाप-शनाप सरकारी खर्च और बिगाड़
- ५३. क्या मंत्री अपना अनाज-कपड़ा राशन कि दुकानों से ही खरीदेंगे?
- ५४. सबकी आँखें मंत्रियों की ओर
- ५५. काँग्रेसी मंत्री साहब लोग नहीं
- ५६. देशसेवा और मंत्रीपद
- ५७. कानून में दस्तंदाजी ठीक नहीं
- ५८. अनुभवी लोगों की सलाह

विभाग- १० : मंत्रि-मंडलों की आलोचना

- ५९. एक आलोचना
- ६०. एक मंत्री की परेशानी
- ६१. मंत्रियों की टीका
- ६२. सरकार का विरोध
- ६३. मंत्रियों को भावुक नहीं होना चाहिए
- ६४. धमकियाँ मंत्रियों के लिए रोज कि बात
- ६५. सरकार को कमजोर न बनाइये
- ६६. मंत्री और जनता

विभाग- ११: मंत्रिमंडल और अहिंसा

- ६७. हमारी असफलता
- ६८. आत्म-परीक्षण की अपील
- ६९. नागरिक स्वाधीनता
- ७०. तूफान के आसार
- ७१. विद्यार्थी और हड़तालें
- ७२. क्या यह पिकेटिंग है?
- ७३. मंत्रि-मंडल और सेना
- ७४. काँग्रेसी मंत्री और अहिंसा
- ७५. सचमुच शर्म की बात

विभाग - १२ : विविध

- ७६. प्रान्तीय गवर्नर कौन हों?
- ७७. भारतीय गवर्नर
- ७८. गवर्नर और मंत्रीगण
- ७९. किसान प्रधानमंत्री
- ८०. प्रधानमंत्री का श्रेष्ठ कार्य
- ८१. विधानसभा का अध्यक्ष
- ८२. सरकारी नौकरियाँ
- ८३. सरकारी नौकरों की बहाली
- ८४. लोकतंत्र और सेना
- ८५. अनुशासन का गुण
- ८६. मंत्री और प्रदर्शन
- ८७. नमक-कर
- ८८. अपराध और जेल

स्त्रोत

गांधीजी की अपेक्षा

* धारासभा के सदस्यों को उनका किराया और भत्ता चाहिए, मंत्रियों को उनके वेतन चाहिए, वकीलों को उनका मेहनताना और मुकदमेबाजों को उनकी डिक्रियाँ चाहिए, माँ-बाप को अपने लड़कों के लिए ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे वे मौजूदा जीवन में नामी-गिरामी आदमी बन जाएँ, लखपितयों और करोड़पितयों को सब तरह की सुविधाएँ चाहिए जिससे वे अपने लाखों-करोड़ों को अरबों-खरबों तक पहुँचा सकें और बाकी के लोगों को निःसत्व शान्ति चाहिए। ये सब बड़े सुंदर ढंग से उस मध्यवर्ती संस्था के आसपास घूमते हैं। सब कोई तांडव में मस्त हैं। कोई उससे अपने को मुक्त करने की चिन्ता नहीं करता। और इसलिए ज्यों-ज्यों उसका वेग बढ़ता जाता है त्यों त्यों वे अधिक हर्षोन्मत्त बनते जाते हैं। परन्तु वे नहीं जानते कि यह कृतान्त का तांडव है और उन्हें जो हर्षोन्माद अनुभव होता है, वह उस रोगी के हृदय की तेज़ धड़कन जैसा है जो अपने जीवन की अंतिम साँसें खींच रहा है।

हिन्दी नवजीवन, १२-३-१९२२, पु. २३७

*

* जब कभी आपके हृदय में संदेह उत्पन्न हों या आप अपने बारेमें अत्यधिक विचार करें, तब आप अपने सामने यह कसौटी रखें। अपनी आँखों से देखे हुए सबसे ग़रीब और सबसे दुर्बल मनुष्य का चेहरा आप याद करें और अपने मन से यह प्रश्न पूछें कि जो कदम उठाने का विचार आप कर रहे हैं, वह उस ग़रीब और दुर्बल के लिए उपयोगी सिद्ध होगा या नहीं? उस कदम से उसे कोई लाभ होगा? उस कदम से क्या वह अपने जीवन पर और अपने भविष्य पर. . . फिरसे अधिकार पा सकेगा? दूसरे शब्दों में कहूँ तो क्या आपका वह कदम भूखे और आध्यात्मिक दारिद्र्य भोगने वाले लोगों को स्वराज्य की दिशा में ले जाएँगा? उसके बाद आप देखेंगे कि आपके संदेह और आपका व्यक्तित्व. . . सर्वथा लुप्त हो गए हैं।

महात्मा गांधी: दि लास्ट फ़ेज़, खण्ड-२ (१९५८), पृ. ६५



विभाग - १: प्रास्ताविक

१. अधिकार-पत्र

स्वतंत्र भारत का संविधान

में ऐसे संविधान की रचना के लिए प्रयत्न करूँगा, जो भारत को हर तरह की गुलामी से और किसीका आश्रित होने की भावना से मुक्त कर देगा और यदि ज़रूरत पड़े तो उसे पाप करने का भी अधिकार देगा। मैं ऐसे भारत के लिए कार्य करूँगा, जिसमें ग़रीब से ग़रीब आदिमयों को भी ऐसा लगे कि भारत उनका अपना देश है – जिसके निर्माण में उनका भी महत्त्वपूर्ण हाथ है। मैं ऐसे भारत के लिए कार्य करूँगा, जिसमें बसने वाले लोगों का ऊँचा वर्ग और नीचा वर्ग नहीं होगा; वह ऐसा भारत होगा, जिसमें सारी कौमें पूरी तरह मेलिमलाप और मित्रता के साथ रहेंगी। ऐसे भारत में अस्पृश्यता के अभिशाप के लिए अथवा नशीले पेयों और मादक पदार्थों के अभिशाप के लिए कोई गुंजाइश नहीं होगी। उसमें स्त्रियाँ पुरुषों के साथ समान अधिकारों का उपभोग करेंगी। चूँिक हम बाकी की दुनिया के साथ शांति से रहेंगे और न हम दूसरों का शोषण करेंगे और न अपना शोषण होने देंगे, इसलिए हमारी ऐसी छोटी से छोटी सेना होगी जिसकी कि कल्पना की जा सकती है। उस भारत में ऐसे समस्त देशी या विदेशी हितों का आदर किया जाएगा, जिनका देश के करोड़ों मूक नागरिकों के हितों के साथ कोई संघर्ष और विरोध नहीं होगा। मैं व्यक्तिगत रूप में देशी और विदेशी के भेद से नफ़रत करता हूँ। यह मेरे सपनों का भारत है।... इससे कम किसी चीज़ से मुझे संतोष नहीं होगा। [यं. ई., १०-९-'३१, पृ. २२५]

स्वराज्य सरकार में

स्वराज्य की ऐसी शासन-व्यवस्था में जुआ, शराबखोरी और दुराचार या वर्ग-विद्वेष के लिए कोई स्थान नहीं होगा। धनी लोग अपने धन का उपयोग बुद्धिपूर्वक उपयोगी कार्यों में करेंगे; अपनी शान-शौकत बढ़ाने में या शारीरिक सुखों की वृद्धि में उसका अपव्यय नहीं करेंगे। उसमें ऐसा नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिए, कि कुछ धनी तो रत्न-जटित महलों में रहें और लाखों-करोड़ों ऐसी मनहूस झोंपड़ियों में रहें, जिनमें हवा और प्रकाश का प्रवेश तक न हो।. . . अहिंसक स्वराज्य में न्यायपूर्ण अधिकारों का किसी के भी द्वारा कभी अतिक्रमण नहीं हो सकता; और इसी तरह किसीको कोई अन्यायपूर्ण अधिकार

भी नहीं हो सकते। सुसंगठित राज्य में किसीके न्याय्य अधिकारों का किसी दूसरे के द्वारा अन्यायपूर्वक छीना जाना असंभव होना चाहिए और कभी ऐसा हो जाए तो अपहर्ता को अपदस्थ करने के लिए हिंसा का आश्रय लेने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए। [ह., २५-३-'३९, पृ. ६५]

सच्चे लोकतंत्र के विकास के साधन

भारत सच्चे लोकतंत्र के विकास का प्रयत्न कर रहा है, जिसमें हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं होगा। इस प्रयत्न में हमारे शस्त्र वही होंगे, जो सत्याग्रह के हैं – अर्थात् चरखा, ग्रामोद्योग, हाथ-उद्योगों द्वारा दी जाने वाली प्राथमिक शिक्षा, अस्पृश्यता-निवारण, कौमी एकता, शराबबन्दी और अहमदाबाद की तरह मज़दूरों का अहिंसक संगठन। इनका अर्थ है सामुदायिक प्रयत्न और सामुदायिक शिक्षण। इन कार्यों के संचालन के लिए हमारे पास बड़ी-बड़ी संस्थाएँ हैं। ये सब शुद्ध ऐच्छिक हैं और इनका एकमात्र पृष्ठबल है भारत के छोटे से छोटे आदमी की सेवा। [ह., १८-५-'४०, पृ. १२९]

२. संसदीय ज्ञासन-व्यवस्था

स्वराज्य से मेरा अभिप्राय है लोक-सम्मित के अनुसार होने वाला भारतवर्ष का शासन। लोक-सम्मित का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी से बड़ी संख्या के मत के द्वारा होगा, फिर वे स्त्रियाँ हों या पुरुष, इसी देश के हों या इस देश में आकर बस गए हों। वे लोग ऐसे होने चाहिए, जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया हो।... [हिं. न, २९-१-'२५, पृ. १९८]

फिलहाल मेरे स्वराज्य का अर्थ होगा भारत की आधुनिक व्याख्या वाली संसदीय शासन-व्यवस्था। [यं. ईं., २९-१२-'२०, पृ. ६]

आज की मेरी सामूहिक प्रवृत्ति का ध्येय तो हिन्दुस्तान की प्रजा की इच्छा के अनुसार चलने वाला पार्लियामेन्टरी पद्धति का स्वराज्य पाना है। [हिंद स्वराज्य, (१९५९), पृ. २३]

संसदीय शासन-व्यवस्था के अभाव में हम कहीं के न रहेंगे।. . .

तब हमारी संसद क्या करेगी? जब हमारी संसद हो जाएगी तब हमें महान भूलें करने और उन्हें सुधारने का अधिकार होगा। प्रारंभिक अवस्थाओं में बड़ी-बड़ी भूलें हमसे होंगी ही।. . . ब्रिटेन की



लोकसभा का इतिहास बड़ी-बड़ी भूलों का इतिहास है। एक अरबी कहावत कहती है कि मनुष्य भूलों का अवतार है। स्वराज्य की एक परिभाषा है भूल करने की स्वतंत्रता और की हुई भूलों को सुधारने का कर्तव्य। और ऐसा स्वराज्य पार्लियामेन्ट - संसद - में ही निहित है। उसी पार्लियामेन्ट की आज हमें ज़रूरत है। आज हम उसके योग्य हैं। [नटेसन, पृ. ४०६-०८]

विभाग - २ : विधानसभाएँ

३. विधानसभाओं में जाना

मैं आपसे कहूँ कि धारासभाओं (विधानसभाओं) का बहिष्कार सत्य और अहिंसा की तरह कोई शाश्वत अथवा सनातन सिद्धांत नहीं है। उनके प्रति मेरा जो विरोध-भाव था, वह अब बहुत कम हो गया है। लेकिन इसके ये मानी नहीं है कि मैं पहले की सहयोग की स्थिति की ओर लौट रहा हूँ। यह तो शुद्ध युद्धकला का प्रश्न है; अमुक समय पर सब से ज़रूरी क्या है, केवल इतना ही मैं कह सकता हूँ। क्या मैं वही असहयोगी हूँ, जो कि १९२० में था? हाँ, मैं वही असहयोगी हूँ। परन्तु आप लोग यह भूल जाते हैं कि मैं इस अर्थ में सहयोगी भी था कि असहयोग मैंने सहयोग के ख़ातिर किया था; और तब भी मैंने कहा था कि यदि मैं देश को सहयोग के ज़िरए आगे ले जा सकूँ, तो मुझे सहयोग करना चाहिए। धारासभाओं में जाने की मैंने अब जो सलाह दी है, वह सहयोग देने के लिए नहीं बल्कि सहयोग लेने के लिए दी है।...

यदि धारासभाओं के चुनाव की लड़ाई का अर्थ सत्य और अहिंसा की कुरबानी हो, तो प्रजातंत्र को कोई एक क्षण के लिए भी नहीं चाहेगा। जनता की वाणी परमेश्वर की वाणी है; और यह उन ३० करोड़ मनुष्यों की वाणी है, जिनका हमें प्रतिनिधित्व करना है। क्या सत्य और अहिंसा के द्वारा ऐसा करना संभव नहीं? जो लोग जनता के प्रतिनिधि नहीं हैं, जो जनता के सेवक नहीं हैं, उनकी आवाज़ जुदी हो सकती है; परन्तु उन लोगों की नहीं, जो ३० करोड़ मनुष्यों के सेवक होने का दावा करते हैं।

हमारे देश के लोगों की बहुत बड़ी संख्या को वोट (मत) देने का अधिकार प्राप्त हो गया है – उनमें से क़रीब एक-तिहाई लोग वोट दे सकते हैं। इन चुनावों ने हमें उनके पास काँग्रेस का सारा कार्यक्रम ले जाने का मौका दिया है। यदि यह बात थी तो गांधी-सेवा-संघ के सदस्य क्या अलग खड़े रहते? इसमें शक नहीं कि हम रचनात्मक कार्यक्रम की प्रतिज्ञा से बंधे हुए हैं। परन्तु क्या यह देखना हमारा कर्तव्य नहीं कि हमारे नाम पर जो लोग धारासभाओं में जाते हैं, वे रचनात्मक कार्यक्रम को वहाँ पूरा करते हैं या नहीं? याद रखिए कि बगैर रचनात्मक कार्यक्रम के कोई भी राजनीतिक कार्यक्रम टिक नहीं सकता।

वह सारा कार्यक्रम सत्य और अहिंसा का प्रतीक है; और यह देखना गांधी-सेवा-संघ का सबसे पहला काम है कि उस कार्यक्रम को किसी तरह की क्षति तो नहीं पहुँच रही है।

यह बात ध्यान में रखिए कि मेरा मतलब यह नहीं है कि आप अपने सदस्यों को धारासभाओं में एक अपिरहार्य विपत्ति (बुराई) समझकर भेजें। वह तो आपका एक कर्तव्य होना चाहिए। आज जो धारासभाएँ हैं वे हमारी हैं, उनमें हमारी जनता के प्रतिनिधि हैं। हमें वहाँ अपने सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का पालन करना है। में काँग्रेस से जो हट गया हूँ उसके पीछे कुछ खास कारण हैं। यह मैंने इसलिए किया है कि काँग्रेस को मैं और भी अधिक मदद दे सकूँ। जब तक सत्य और अहिंसा पर आधार रखने वाले १९२० के कार्यक्रम की प्रतिज्ञा पर काँग्रेस कायम है तब तक मेरा सारा समय और सारी शक्ति उसकी सेवा के लिए अर्पित है।

लेकिन यह प्रश्न पूछा जाता है कि जिन धारासभाओं की हमने मुखालिफ्त की, उनमें हम कैसे जाए? तब की धारासभाओं से आज की धारासभाएँ भिन्न हैं। हम उन्हें नष्ट नहीं करना चाहते; नष्ट तो हम उस 'सिस्टम' – पद्धित या प्रणाली – को करना चाहते हैं, जिसे चलाने के लिए ये धारासभाएँ बनाई गई हैं।

हम वहाँ सत्य और अहिंसा को कुरबान करने के लिए नहीं, बल्कि उन्हें वहाँ स्थापित करने के लिए जाते हैं। आज काँग्रेस को चुनावों पर कुछ लाख रुपये खर्च करने पड़े हैं। लेकिन देश में जब हम ऐसी ताकत पैदा कर देंगे, जिसका कोई मुकाबला न कर सके, तब हमें एक पाई भी खर्च नहीं करनी पड़ेगी। लेकिन सच बात तो यह है कि हम अकसर रचनात्मक कार्यक्रम की बातें ही किया करते हैं। अब तक असल में हमने कितना हासिल किया है? खादीशास्त्र के आज कितने विशेषज्ञ हमारे पास है? यदि सम्पूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम हमने पूरा कर लिया होता, तो आज किसी भी प्रान्त की धारासभा में सिवा काँग्रेस पार्टी के कोई दूसरी पार्टी न होती।

लेकिन मैंने जो यह सब कहा है, उसका यह मतलब नहीं कि आप सब के सब आज धारासभाओं में जाने की बात सोचने लगें। सबकी तो बात ही नहीं, गांधी-सेवा-संघ का एक भी आदमी धारासभा में जाने का प्रयत्न न करे। मेरे कहने का मतलब तो यह है कि अगर मौका आ जाएँ, तो कोई उससे पहलू न बचाए। धारासभा में जाने के लिए कानूनी बारीकियों का ज्ञान ज़रूरी नहीं। साहस और रचनात्मक कार्यक्रम में अचल श्रद्धा, बस इतना ही वहाँ जाने के लिए ज़रूरी है। आपमें से जो लोग धारासभाओं में जाएँ, उनसे मुझे यही उम्मीद रखनी चाहिए कि आप वहाँ अपनी तकली चलाना जारी रखेंगे और मद्य-निषेध तथा रचनात्मक कार्यक्रम के लिए आप वहाँ काम करेंगे। लेकिन वहाँ सत्ता के लिए छीना-झपटी नहीं होनी चाहिए। उसका मतलब तो हमारी बरबादी होगी। केवल वही लोग धारासभाओं में जाएँगे, जिन्हें कि गांधी-सेवा-संघ जाने के लिए कहेगा। मैं इससे इनकार नहीं करता कि धारासभाएँ एक भारी प्रलोभन हैं, वे क़रीब-क़रीब शराब की दुकानें ही हैं। स्वार्थ साधने वालों और नौकरियों के पीछे पड़े रहने वालों को वे मौका देती हैं। किन्तु कोई काँग्रेसी, कोई गांधी- सेवा-संघ का सदस्य इस गंदे उद्देश्य को लेकर धारासभाओं में नहीं जा सकता। काँग्रेस का नेता काँग्रेस के कार्यक्रम पर ध्यान देने के लिए उन्हें बाध्य करता रहेगा और नाजायज तरीक़ों से उसमें किसी को जरा भी हाथ नहीं डालने देगा। इस तरह की प्रतिज्ञा लेकर लोग वहाँ कर्तव्य-बुद्धि से जाएँगे, न कि उसे एक अपरिहार्य विपत्ति समझकर। अगर हमसे हो सका तो ग्यारहों धारासभाओं को हमें ऐसे आदिमयों से भर देना हैं, जो फौलाद के जैसे सच्चे हों, लोकसेवा जिनका व्रत हो और जिनका अपना कोई स्वार्थ न हो। [ह. से., १-५-'३७, ए. ८९-९०]

४. धारासभाएँ और रचनात्मक कार्यक्रम

श्री किशोरलाल की शंका और भय यह है कि धारासभा (विधानसभा) का कार्यक्रम हमेशा प्रलोभनों को उभाड़ता है और मनुष्य इससे अपने को भूल जाता है, अत: उसका सत्य और अहिंसा को भूल जाना स्वाभाविक है।. . . मैं मानता हूँ कि धारासभा का कार्यक्रम मनुष्य की लालसाओं को उभाड़ सकता है और उसे बड़े-बड़े प्रलोभनों में डाल सकता है। पर क्या इसी वजह से हमें उससे अपना पहलू बचाना चाहिए? हम उसके प्रलोभनों का प्रतिरोध क्यों न करें?. . .

हमारा कार्यक्रम केवल एक ही है – और वह है रचनात्मक कार्यक्रम, क्योंकि स्वराज्य इसी पर निर्भर करता है। किन्तु धारासभाओं में जाने में सत्य और अहिंसा को हम जरा भी कुरबान नहीं करेंगे। वहाँ जाकर भी हम रचनात्मक कार्य को मदद पहुँचाना चाहते हैं। मैं आपसे कहता हूँ कि यदि हम सब ने चरखे को बुद्धिपूर्वक चलाया होता, तो हमें स्वराज्य हासिल हो गया होता और हमें धारासभाओं में नहीं जाना पड़ता। अभी तक हम चरखे के साथ यों ही खेलते रहे। हमने उसे बुद्धिपूर्वक चलाया नहीं है। अब अगर हम उसे बुद्धिपूर्वक चलाना चाहते हैं, तो हमें तीन करोड़ मतदाताओं के प्रतिनिधियों के घनिष्ठ संपर्क में आना ही चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि अगर यह बात है, तो हम सभी को धारासभाओं में जाना चाहिए; या हम में से जो जाना चाहें उन सब को जाने की इजाज़त मिल जानी चाहिए। हम एक एक के बारे में अच्छी तरह जाँच करेंगे। इसका यह अर्थ हुआ कि हम संघ का दरवाजा धारासभा के सभी सदस्यों के लिए नहीं खोल रहे हैं। हम तो सिर्फ़ उन्हीं के लिए खोलते हैं, जो रचनात्मक कार्यक्रम की प्रतिज्ञा लिए हुए हैं और जिनके बगैर काँग्रेस की धारासभा की एक जगह खो देने का अंदेशा हो।. . . हम चाहते हैं कि अगर हो सके तो धारासभाओं में सब ऐसे ही आदमी भेजे जाएँ, जो चरखे में विश्वास रखते हों।

धारासभा के कार्यक्रम को दाखिल करके हम अहिंसा की दिशा में एक कदम आगे बढ़ रहे हैं।.. . सत्य और अहिंसा मठवासी संन्यासियों के ही धर्म नहीं है; धारासभाओं, अदालतों और अन्य व्यवहारों में भी ये सनातन सिद्धांत लागू हो सकते हैं। आपकी श्रद्धा की बहुत सख्त परीक्षा होने वाली है, परन्तु इस सख्त परीक्षा के डर से ही आप उससे अपने को न बचाएँ।...

सारा ही रचनात्मक कार्यक्रम – हाथ-कताई और हाथ-बुनाई, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता-निवारण और मद्य-निषेध – सत्य और अहिंसा की शोध के लिए हैं। धारासभाओं में जानेकी अगर हमारे लिए कोई दिलचस्पी हो सकती है, तो वह सिर्फ़ इसीलिए हो सकती है, किसी और कारण से नहीं। सत्य और अहिंसा साधन भी हैं और साध्य भी हैं; और यदि अच्छे और सच्चे आदमी धारासभाओं में भेजे जाएँ, तो वे सत्य और अहिंसा की ठोस शोध का साधन बन सकती है। अगर वे ऐसी नहीं हो सकती, तो यह उनका नहीं बल्कि हमारा दोष होगा। जनता पर हमारा सच्चा काबू हो तो धारासभाएँ सत्य और अहिंसा का शोध का साधन अवश्य बनेंगी; दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता। [ह. से., ८-५-'३७, पृ. ९१-९२]

५. धारासभाओं का मोह

मैं मानता हूँ कि धारासभाओं में या अन्य निर्वाचित संस्थाओं में किसी न किसी काँग्रेसी को तो जाना ही चाहिए। पहले मैं इस मत का नहीं था कि जहाँ चुनाव हो वहाँ काँग्रेसियों को उम्मीदवारी करनी ही चाहिए; लेकिन अब मैं इस मत का हूँ। मेरी यह आशा सफल नहीं हुई कि सब काँग्रेसी धारासभा का बहिष्कार करेंगे। अब जमाना भी बदला है और स्वराज्य नज़दीक आया है। यदि ऐसा है, तो जहाँ चुनाव होता हो वहाँ काँग्रेसी उम्मीदवार होने ही चाहिए। इसमें सम्मान कभी हेतु हो ही नहीं सकता, सेवा ही हेतु हो सकती है। काँग्रेस जैसी संस्था की यह प्रतिष्ठा होनी चाहिए और है कि जिसे वह पसंद करे वही चुनाव के लिए खड़ा हो; जिस आदमी को वह पसंद न करे उसे दुःख तो होना ही नहीं चाहिए, बल्क उसे दूसरी सेवा के लिए मुक्ति मिलने की खुशी होनी चाहिए। वास्तव में ऐसी स्थित नहीं है, यह दुःख की बात है।

दूसरे, चुनाव लड़ने में काँग्रेस के पैसे खर्च करने की ज़रूरत ही नहीं होनी चाहिए। लोकप्रिय संस्था के उम्मीदवार तो घर बैठे चुने जाने चाहिए। ग़रीब मतदाताओं के लिए सवारी का इंतजाम घर बैठे होना चाहिए। उदाहरण के लिए, पेटलाद गाँव के मतदाताओं को नड़ियाद जाना पड़े, तो ग़रीबों का किराया पेटलाद के खुशहाल लोग दें। संगठित, लोकसत्तात्मक, अिहंसक संस्था की यह एक निशानी है। पैसे पर नज़र रखने वाली संस्था ग़रीबों की सेवा कभी नहीं कर सकती। अगर लोगों की लड़ाई पैसे से जीती जा सकती हो, तो अंग्रेजी सल्तनत, जो अपार पैसा खर्च कर सकती है और कहती है, सबसे प्रिय मानी जाएगी। लेकिन हक़ीकत यह है कि शाही नौकर भी, जो बड़ी-बड़ी तनख़ाहें लेते हैं, दिल में अंग्रेजी सल्तनत से ख़ुश नहीं होते। और करोड़ों ग़रीबों का तो पूछना ही क्या?

हम धारासभा की उपयोगिता की भी जाँच करें। धारासभा सल्तनत के दोषों को खुला कर सकती है, परन्तु यह उसकी बड़ी सेवा नहीं है। सल्तनत के दोष जानने वाले और उसके शिकार बनने वाले लोग शिकार क्यों बनते हैं, यह कौन बता सकता है ? यह जनता को बताने वाले और उन दोषों का विरोध करना जनता को सिखाने वाले की सेवा बहुत बड़ी है। धारासभा इस काम में बाधक बनती है, बनी है और बनेगी। धारासभा का दूसरा और सच्चा उपयोग है बुरे कानूनों को न बनने देना और लोकोपयोगी कानून पास करना। लोकोपयोगी कानून का मतलब यह है कि अधिकारी सत्ता मुख्यत: रचनात्मक कार्यों के लिए जितनी सुविधा कर सके उतनी कर दें।

असल बात यह है कि धारासभा का काम लोकमत के अनुसार चलना है। आज तो उसमें कुछ वाक्चातुर लोगों कि ज़रुरत मानी जाती हैं। लेकिन आख़िर में वह ज़रूरत कम ही रहेगी, उसमें तो व्यवहार-कुशल ज्ञानियों की और उनकी बात का अनुमोदन करने वाले दूसरे लोगों की ही ज़रुरत रहेगी। इस प्रकार जिसमें केवल सेवा का ही स्थान है और जिसने मान-सम्मान, पदवी वगैरा का बहिष्कार किया है, उस संस्था में इस भावना का होना ही हानिकारक है कि धारासभा में जाने में प्रतिष्ठा है। अगर यह विचार जड़ पकड़ ले, तो उसमें मुझे महान काँग्रेस का पतन और अंत में उसका नाश ही दिखाई देता है।

अगर काँग्रेस की ऐसी हालत हो जाए, तो हिन्दुस्तान के नर-कंकालों में लहू और माँस कौन पूरेगा और हिन्दुस्तान को तथा दुनिया को किसका आधार रहेगा? [ह. से., १०-२-'४६, पृ. ८]

६. रचनात्मक कार्यक्रम

काँग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने इलाहाबाद की अपनी बैठक में स्वीकृत एक प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया है कि धारासभाओं के सदस्यों और काँग्रेस के दूसरे कार्यकर्ताओं के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि जिन तीन करोड़ ग्रामवासियों और उनके प्रतिनिधियों के बीच सीधा संपर्क स्थापित हो गया है, उनके झोंपड़ों तक वे काँग्रेस का १९२० का रचनात्मक कार्यक्रम पहुँचाएँ। जो प्रतिनिधि धारासभाओं में चुने गए हैं वे अगर चाहें तो ग्रामवासियों की ओर उपेक्षा का भाव बता सकते हैं, या चाहें तो उन्हें आर्थिक बोझ से थोड़ी अथवा उचित मात्रा में मुक्ति भी दिला सकते हैं। परन्तु जब तक वे चतुर्विध रचनात्मक कार्यक्रम में – अर्थात् सार्वित्रिक हाथ-कताई द्वारा खादी के सार्वित्रिक उत्पादन और उपयोग के, हिन्दू-मुस्लिम एकता के, शराब की जिन्हें लत पड़ गई है उनमें प्रचार करके एकदम शराब बन्द करने की प्रेरणा देने के और हिन्दुओं द्वारा अस्पृश्यता के पूर्ण निवारण के कार्यक्रम में – ग्रामवासियों की दिलचस्पी पैदा नहीं करेंगे, तब तक उनमें आत्म-विश्वास, स्वाभिमान और खुद की स्थिति में सतत सुधार करने की शक्ति जैसे गृण नहीं आ सकते।

१९२० और १९२१ में हज़ारों सभाओं में यह बतलाया गया था कि इन चार चीज़ों के बिना अहिंसा के मार्ग से स्वराज्य प्राप्त होना असंभव है। मैं मानता हूँ कि आज भी मेरी वह बात उतनी ही सच है।

सरकारी व्यवस्था द्वारा करों का नियमन करके आम जनता की आर्थिक स्थिति सुधारना एक बात है; और उनके मन में यह भावना पैदा करना बिलकुल दूसरी बात है कि वे केवल अपने ही प्रयत्न से अपनी स्थिति को सुधारें। यह तो वे खुद अपने हाथों से सूत कात कर तथा गाँवों की दूसरी दस्तकारियों को बढ़ा कर ही कर सकते हैं।

इसी तरह विभिन्न सम्प्रदायों या कौमों के पारस्परिक व्यवहारों का नियमन नेताओं के अपनी मरजी से किए हए समझौतों या राज्य के जबरन् लादे हुए समझौतों द्वारा करना एक बात है; और आम लोग एक-दूसरे के धर्मों और बाहरी व्यवहारों के प्रति आदरभाव रखने लगें यह बिलकुल दूसरी बात है। धारासभाओं के सदस्य और काँग्रेस के कार्यकर्ता गाँवों के लोगों में पहुँचकर जब तक उन्हें परस्पर सहिष्णुता रखना नहीं सिखाएँगे तब तक यह चीज़ संभव नहीं है।

फिर कानून के बल पर शराब बन्द कराना – और यह तो करना ही होगा – एक चीज़ है; और मद्य-निषेध का स्वेच्छा से पालन करवा कर उसे टिकाए रखना बिलकुल दूसरी चीज है। निराश और बैठे ठाले लोग ही यह कहते हैं की खर्चीली और भारी जासूसी पद्धित के बिना मद्य-निषेध का काम चल नहीं सकता। अगर कार्यकर्ता ग्रामजनों के पास जाएँ और जहाँ-जहाँ लोग शराब पीते हैं वहाँ उसके बुरे परिणाम लोगों को अच्छी तरह समझाएँ तथा शोध करने वाले विद्वान शराब की लत के कारण खोज़ निकालें और लोगों को सही ज्ञान कराएँ, तो मद्य-निषेध का काम बिना किसी खर्च के चल सकता है। इतना ही नहीं, उससे मुनाफ़ा भी हो सकता है। यह काम स्त्रियाँ विशेष रूप से कर सकती हैं।

यही बात अस्पृश्यता को भी लागू होती है। अस्पृश्यता के दुष्परिणामों को कानून द्वारा हम भले नष्ट कर दें, और यह करना ही है; परन्तु जब तक लोग अपने दिल से छुआछूत की भावना को नहीं निकालेंगे तब तक हमें सच्ची स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। जब तक आम जनता के हृदय से अस्पृश्यता की भावना दूर नहीं होती तब तक वह एकता की भावना से और एक हृदय से कदापि काम नहीं कर सकती।

इस प्रकार अस्पृश्यता-निवारण का कार्य तथा इस रचनात्मक कार्यक्रम के अन्य तीनों अंग लोकिशक्षा से भरे हुए हैं। और अब तो तीन करोड़ स्त्री-पुरुषों के हाथ में – सही या गलत रूप में – सत्ता सौंप दी गई है, इसलिए यह कार्य तात्कालिक महत्त्व का हो गया है। यह सत्ता चाहे जितनी अल्प या सीमित हो, तो भी काँग्रेसवादियों और दूसरों के हाथ में – जिन्हें इन मतदाताओं से वोट लेने हों – इन तीन करोड़ मनुष्यों को सही या गलत रास्ते से शिक्षा देने की शक्ति है। जो वस्तुएँ उनके जीवन के साथ अत्यंत निकट का सम्बन्ध रखती हैं, उनमें उन लोगों की बिलकुल ही उपेक्षा करना गलत मार्ग होगा। ह. से., २२-५-'३७, पृ. ११०-११]

विभाग- ३: विधानसभाओं के सदस्य

७. शपथ-पत्र का मसविदा

श्री व्रजलाल नेहरू ने *हरिजन* में छापने के लिए शपथ-पत्र का जो मसविदा भेजा है, वह नीचे दिया जाता है:

इस शपथ-पत्र पर हिन्दुस्तान की सैनिक और असैनिक सरकारी नौकरियों के सारे सदस्यों को, केन्द्र की, प्रान्त की या स्थानीय नौकरियों के सारे उम्मीदवारों को, इन सरकारों के मातहत दूसरी बड़ी-बड़ी तनख़ाहों वाली नौकरियों के लिए अर्जी करने वालों को और विधानसभाओं के सदस्यों के साथ संविधान-सभा के सदस्यों को भी हस्ताक्षर करने होंगे।

मैं ईमानदारी के साथ यह शपथ लेता हूँ :

- मैं भारतीय संघ का नागरिक हूँ, जिसके प्रति हर हालत में वफ़ादार रहने का मैं वचन देता हूँ।
- मैं इस सिद्धांत को नहीं मानता कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र हैं। मेरी यह राय है
 कि हिन्दुस्तान के सब लोग फिर वे किसी भी जाति या धर्म के हों एक ही राष्ट्र के अंग
 हैं।
- मैं अपने सारे कार्यों और भाषणों द्वारा ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे इस प्राचीन और पिवत्र
 देश के सब लोगों की एक राष्ट्रीयता के विचार को शक्ति मिले।
- ४. अगर किसी समय मैं इस प्रतिज्ञा को तोड़ने का अपराधी साबित होऊँ, तो मुझे उस समय की अपनी किसी भी बड़ी तनख़ाह की नौकरी या पद से हटा दिया जाए।

इस शपथ-पत्र के शब्दों में सुधार की गुंजाइश हो सकती है। लेकिन अगर हम राजनीतिक क्षेत्र में बढ़ने वाले रोग से मुक्त होना चाहते हैं, तो इस मसविदे में रही भावना सचमुच प्रशंसा के लायक और अपनाने जैसी है। [ह. से., १७-८-'४७, पृ. २३४]

८. धारासभाओं के सदस्य

जो काँग्रेसी किसी धारासभा का सदस्य है वह वहाँ किसी भी पद पर क्यों न आसीन हो, काँग्रेस का अनुशासन मानने के लिए वह बंधा हुआ है और काँग्रेस की जो भी हिदायतें समय-समय पर जारी हों उनका पालन उसे करना होगा।

मेरी राय में तो जो काँग्रेसी धारासभाओं के सदस्य हैं, चाहे वे केवल सदस्य हों या मंत्री हों या अध्यक्ष हों, उन्हें अपने हरएक काम में इस बात का ध्यान रखना होगा कि काँग्रेस-विधान के अनुसार उन्हें सत्य और अहिंसा पर कायम रहना है। इस प्रकार जब किसी धारासभा में कोई काँग्रेसी अपने विरोधियों के साथ पेश आए, तो उसका व्यवहार बिलकुल ईमानदारी का और विनम्रता से युक्त ही होना चाहिए। ईमानदारी से दूर रहने वाली गंदी राजनीति का वह सहारा न लेगा, कभी नीचता पर नहीं उतरेगा और अपने विरोधी की कठिनाई से लाभ नहीं उठाएगा। धारासभा में जितना ही बडा उसका पद होगा, उतनी ही अधिक इन विषयों में उसकी जि़म्मेदारी होगी। धारासभा का सदस्य अपने निर्वाचन-क्षेत्र और अपने दल का प्रतिनिधित्व करता है, इसमें तो कोई संदेह ही नहीं। लेकिन इसके साथ-साथ वह अपने समस्त प्रान्त का भी प्रतिनिधित्व करता है। मंत्री अपने दल की उन्नति तो ज़रूर करता है, परन्तु कुल मिलाकर अपने राष्ट्र को हानि पहुँचाकर नहीं। निश्चय ही वह काँग्रेस की उसी हद तक उन्नति करता है, जिस हद तक वह राष्ट्र को उन्नत करता हैं, क्योंकि वह जानता है कि अगर विदेशी शासकों से वह युद्ध नहीं कर सकता, तो अपने राष्ट्र के अंदर ही अपने विरोधियों से भी वह युद्ध नहीं ठानेगा। और चूँिक धारासभा एक ऐसी जगह है जहाँ सब जातियाँ, वे पसंद करें या न करें, परस्पर मिलती हैं, इसलिए वहीं वह अपने विरोधियों को जीत कर ऐसी शक्ति पैदा करने की आशा रख सकता है, जिसे अदम्य बनाया जा सके। धारासभा को केवल गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्ट की परिभाषा में ही न देखा जाए बल्कि एक ऐसा साधन समझा जाए, जिसका उपयोग ऐसे प्रश्न हल करने में किया जा सकता है, जिन्हें हल करने की राष्ट्र के विभिन्न संप्रदायों के प्रतिनिधियों से आज्ञा रखी जा सकती है। यदि उन्हें अमर्यादित अधिकार हों, तो सांप्रदायिक एकता सहित हमारे राष्ट्र कि सारी समस्याएँ उसमें हल की जा सकती हैं। और यह तय है कि गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्ट एसी अनेक समस्याओं को हल करने में धारासभाओं का प्रयोग करने की मनाही नहीं करता, जो उनके कार्यक्षेत्र से बाहर हैं परन्तु राष्ट्रीय प्रगति के लिए ज़रूरी हैं।

इस दृष्टिकोण से देखें तो धारासभा के अध्यक्ष की स्थिति प्रधानमंत्री से भी बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि जब वह अध्यक्ष के आसन पर आसीन होता है तब उसे न्यायाधीश का कर्तव्य पालना होता है। उसे निष्पक्ष और न्यायपूर्ण निर्णय देने होते हैं। उसे बवंडर के बीच भी शान्त रहकर सदस्यों के बीच शिष्टता और सौजन्य बनाए रखना पड़ता है। इस प्रकार विरोधियों को जीतने की उसे ऐसी सुविधाएँ प्राप्त हैं जैसी अन्य किसी सदस्य को शायद ही हों।

ऐसी हालत में सभा-भवन के बाहर यदि कोई अध्यक्ष निष्पक्ष न रहकर दलबन्दी के चक्कर में पड़ जाए, तो संभवत: उसका वैसा असर नहीं पड़ सकता जैसा हर जगह उसके निष्पक्ष और शान्त बने रहने पर पड़ सकता है। मैं यह दावा करता हूँ कि अगर कोई अध्यक्ष अपने अत्यंत सीमित क्षेत्र के बाहर भी वैसा ही निष्पक्ष रहने की आदत डाल ले, तो वह काँग्रेस की प्रतिष्ठा ही बढ़ाएगा। इस पद के कारण उसे जो अनोखा अवसर मिला है उसे यदि वह समझ ले, तो वह ऐसा करके हिन्दू-मुस्लिम तनातनी तथा दूसरी भी अनेक समस्याओं के हल का रास्ता तैयार कर सकता है। इस प्रकार मेरी राय में अध्यक्ष को जैसा सभा-भवन में वैसा ही यदि उसके बाहर भी रहना हो, तो उसे प्रथम श्रेणी का काँग्रेसी होना चाहिए। मनुष्य के रूप में भी उसका चिरत्र ऐसा होना चाहिए कि कोई उस पर अँगुली न उठा सके। यह ज़रूरी है कि वह योग्य, निर्भय, स्वभावत: न्यायी और इन सब से अधिक मन-वचन-कर्म से सच्चा और अहिंसक हो। तब वह जिस प्लेटफॉर्म पर खड़ा रहना चाहेगा उस पर खड़ा रह सकेगा। [ह. से., १६-७-'३८, पृ. १७२-७३]

९. धारासभा की सावधानी

श्री पीतवासबाबू की नज़रबन्दी के लिए दरअसल कोई कारण समझ में नहीं आता। बंगाल सरकार लोकमत के प्रति ज़िम्मेदार है। यह हो ही नहीं सकता कि उसके बिना जाने ही गवर्नर ने हुक्म जारी कर दिया हो। वह भारत-रक्षा कानून का अमल मनमाने ढंग से नहीं कर सकती। उसे अपनी हर कार्रवाई को जनता के सामने उचित साबित करना चाहिए। अगर धारासभा अपने अस्तित्व को योग्यता सिद्ध करना चाहती है, तो उसे उत्तरदायी मंत्रि-मंडल के कामों से और उनके कारणों से परिचित रहना चाहिए। [ह. से., ८-३-'४२, पृ. ७२]

१०. संविधान-सभा फूलों की सेज नहीं

यह समय आराम करने का या मौज़-शौक में दिन बिताने का नहीं है। मैंने पं. जवाहरलाल नेहरू से कहा कि वे राष्ट्र के ख़ातिर काँटों का ताज़ पहनें और उन्होंने मेरी बात स्वीकार की। संविधान बनाने वाली सभा आप सबके लिए फूलों की सेज नहीं, परन्तु निरे काँटों की सेज साबित होने वाली है। लेकिन आप उसकी ज़िम्मेदारी से बच नहीं सकते |

परन्तु इसका यह मतलब कभी नहीं कि आपमें से हरएक को वहाँ जाना ही चाहिए। वहाँ सिर्फ़ उन्हीं लोगों को जाना चाहिए, जो अपनी कानूनी शिक्षा के कारण या दूसरी किसी विशेष योग्यता के कारण वहाँ जाने और सभा का काम करने की क्षमता रखते हैं। अपनी कुरबानियों के बदले में मिलने वाले इनाम के ख़याल से किसी को संविधान-सभा में नहीं जाना चाहिए। वहाँ तो धर्म समझकर इस तैयारी से जाना चाहिए, मानो फाँसी पर लटकना हो या सेवा के यज्ञ में अपना सर्वस्व होम देना हो।

इसके अलावा, आप लोगों के संविधान-सभा में जाने का एक और भी कारण है। अगर आप मुझसे पूछें कि संविधान-सभा में सम्मिलित होने के प्रस्ताव को आप लोग अस्वीकार कर दें या वह सभा बन ही न पाए, तो क्या उस हालत में मैं लोगों को व्यक्तिगत रूप में अथवा सामूहिक रूप में सत्याग्रह की लड़ाई शुरू करने की सलाह दूँगा? अथवा क्या मैं स्वयं उपवास शुरू करूँगा? तो मेरे पास आपके इस प्रश्न का एक ही उत्तर है : 'नहीं, मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगा।' मैं उन लोगों में हूँ, जो अकेले चलने में विश्वास रखते हैं। इस संसार में मैं अकेला आया हूँ, दुःख के समुद्र जैसे इस संसार में मैं अकेला तैरा हूँ, और समय आने पर मैं अकेला ही यहाँ से चल दूँगा। मैं यह भी जानता हूँ कि बिलकुल अकेला होने पर भी मैं सत्याग्रह की लड़ाई शुरू करने में पीछे नहीं हदूँगा। पहले मैं ऐसा कर चुका हूँ। परन्तु यह समय न तो सत्याग्रह की लड़ाई छेड़ने का है और न उपवास आरंभ करने का है। संविधान बनाने वाली सभा के कार्य को मैं सत्याग्रह का स्थान लेने वाला कार्य मानता हूँ। वह रचनात्मक सत्याग्रह है। [ह. से., २१-७-'४६, प. २२७]

विभाग - ४: विधानसभा के सदस्यों का भत्ता

११. धारासभा के काँग्रेसी सदस्य और भत्ता

संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) की धारासभा के एक सदस्य ने मुझे एक पत्र भेजा है। वह इस प्रकार हैं :

संयुक्त प्रान्त में हमें ७५ रुपये महीने भत्ता मिलता है। काँग्रेस की सत्ता ढाई साल रही। इस अरसे में धारासभा की बैठकें कभी तो छह छह दिन में ख़तम हो गई और कभी-कभी महीनों चलती रहीं। इसके सिवा, निर्वाचित, विशिष्ट और नियमित कमेटियों की भी बैठकें हुई। इनमें से कुछ कमेटियाँ अभी भी काम कर रही हैं और हमारा बहुत समय ले लेती हैं। साथ ही, यह भी पता नहीं कि धारासभा फिर कब बुला ली जाएँ। अपने-अपने चुनाव के क्षेत्रों में दौरा करने में हमारा साल भर में दो सौ-दो सौ रुपया खर्च हो जाता है। ऐसे भी निर्वाचन-क्षेत्र हैं, जो लखनऊ से दो सौ मील से भी ज्यादा दूर हैं। साल में तीन दौरों का ओसत मान लें, तो हर सदस्य को इस काम में ६ सप्ताह लगाने पडते हैं। सदस्य लोग जब लखनऊ में रहते हैं तब उन्हें अपने-अपने चुनाव के क्षेत्रों से आने वालों की आवभगत भी करनी पड़ती है। हर सदस्य को अपने दल और प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी को ४ रुपये माहवार देना पड़ता है। ऐसी दशा में व्यापार-धंधा तो छूट ही जाता है, और यह जाहिर है कि किसी सदस्य की आमदनी का अगर खानगी जरिया न हो तो बिना कुछ भत्ता लिए अपना सारा समय देना उसके लिए बिलकुल असंभव है। संयुक्त प्रान्त की धारासभा के सदस्यों के सामने यह प्रश्न कई बार आ चुका है। हममें से बहुतों को ऐसा लगता है कि या तो भत्ता बढ़ाया जाना चाहिए या हममें जो ग़रीब लोग हैं उन्हें धनवानों के लिए मैदान छोडकर निकल जाना पडेगा। आपको तो यह जानकर दुःख हुआ कि धारासभा के कुछ सदस्य भत्ता अपने ही काम में ले रहे हैं। परन्तु मैंने आपके सामने तसवीर का दूसरा पहलू पेश किया, जिससे आप हमें रास्ता दिखा सकें। यह भी याद रखने की बात है कि काँग्रेस की आज्ञा मानकर हमने जो चुनाव लड़े, उनमें हममें से बहुतों को कर्ज लेना पड़ा था।

दूसरी जिस बात की ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ, वह है काँग्रेस में फैली हुई गंदगी का सवाल। इसके अन्य दो कारण तो हैं ही, साथ ही धारासभा की सदस्यता का लालच भी काँग्रेस के साधारण कार्यकर्ताओं को बहुत बड़ा है। इससे लोग वर्तमान सदस्य को हटा कर उसकी जगह खुद आने की कोशिश करते हैं और इसके लिए अकसर बुरे उपाय काम में लाते हैं। अगर यह समझ लिया जाए कि जिन सदस्यों ने अच्छा काम किया है उन्हीं को फिरसे खड़ा किया जाएगा, तो वह अच्छी बात होगी। ऐसी नीति से धारासभाओं के काम के लिए कार्यकर्ताओं का एक तालीम पाया हुआ समूह ज़रूर बना रहेगा। सदस्यों को यह अनुभव भी अच्छी तरह हो जाएगा कि धारासभाओं के बाहर उन्हें रचनात्मक कार्य भी करना है।

तीसरी बात, जिस पर प्रकाश डालने की आपसे नम्र प्रार्थना है, यह है कि बड़े-बड़े काँग्रेसियों का भी पश्चिमी ढँग के रहन-सहन, विचार और संस्कृति की ओर जबरदस्त झुकाव हो रहा है। खद्दर पहनते हुए भी उनमें से बहुतेरे अपनी देशी संस्कृति से बिलकुल दूर रहते हैं और उन्हें जो भी प्रकाश मिलता है वह पश्चिम से ही मिलता है।

जहाँ तक सदस्यों के भत्ते से सम्बन्ध है, उसके पक्ष में दी गई दलीलों से मैं कायल नहीं हुआ हूँ। अलबत्ता, सभी मामलों में कुछ लोगों को तो कष्ट होता ही है। परन्तु ऐसे उदाहरणों से नियम बनाना अच्छी बात नहीं है। याद रहे कि धारासभाओं पर काँग्रेस का ठेका नहीं है। वहाँ कई दलों के प्रतिनिधि होते हैं। इसलिए सिर्फ़ काँग्रेस की सुविधा का ही ख़याल नहीं रखा जा सकता। पत्रलेखक यह मान बैठे हैं कि प्रत्येक सदस्य धारासभा के काम को विशेष रूप से ध्यान में रखकर अपना सारा समय राष्ट्रीय सेवा में लगाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि धारासभाओं के सदस्यों का राजनीति ही एक धंधा हो गया है और धारासभाएँ खास तौर पर उनके लिए सुरक्षित स्थान बन गई हैं। मेरा बस चले तो मैं ये बातें राजनीतिक दलों से ही करा लूँ। मैं जानता हूँ कि इस प्रश्न में कठिनाइयाँ भरी पड़ी हैं और इस पर पूरी तरह तथा शान्ति से चर्चा होनी चाहिए। पर मैंने जो बात उठाई है वह बिलकुल छोटी है। जब धारासभाओं का काम एक तरह से बन्द हो तब सदस्य लोग कुछ भी भत्ता क्यों लें? जाँच की जाए तो पता चलेगा कि बहुत से सदस्य धारासभा में चुने जाने से पहले इतना नहीं कमा रहे थे जितना कि वे अब कमा रहे हैं। धारासभाओं को अपनी मामूली कीमत से अधिक कमाई का साधन बना लेना खतरनाक बात है। प्रान्तों के ज़िम्मेदार लोगों को मिलकर सोचना चाहिए और कोई ऐसा निर्णय करना चाहिए, जिससे काँग्रेस की भी शोभा बढ़े और जिस काम के लिए वे खप रहे हैं उसकी भी शोभा बढ़े।

पत्रलेखक ने वर्तमान सदस्यों को स्थायी उम्मीदवार बना देने का जो प्रश्न उठाया है, वह मेरे हाथ की बात नहीं है। इस मामले में मुझे कोई अनुभव नहीं है। इसकी गहराई में जाना काँग्रेस कार्यसमिति का काम है। रही बात पश्चिम से प्रकाश लेने की आदत की। तो अगर मेरे सारे जीवन से किसी को कोई रास्ता न मिला हो, तो अब और मैं क्या रास्ता बता सकता हूँ? प्रकाश तो पूर्व से निकल कर सर्वत्र फैला करता था। अगर पूर्व का भंडार खाली हो गया है, तो यह स्वाभाविक है कि पूर्व को पश्चिम से प्रकाश उधार लेना पड़ेगा। मुझे तो आश्चर्य है कि प्रकाश यदि प्रकाश ही हो और कोई रोग न हो, तो क्या वह कभी भी खतम हो सकता है ! बचपन में मैंने पढ़ा था कि प्रकाश अर्थात् ज्ञान देने से बढ़ता है, घटता नहीं। कुछ भी हो, मैंने तो इसी विश्वास पर अमल किया है और इसलिए बापदादाओं की पूँजी पर ही अपना व्यापार चलाया है। में कभी घाटे में नहीं रहा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं कुएँ का मेंढक बन जाऊँ। अगर प्रकाश पश्चिम से आए, तो मुझे उससे लाभ उठाने में कोई आपित्त नहीं है। मैं इतना ध्यान ज़रूर रखूँगा कि पश्चिम की तड़क-भड़क के वशीभूत मैं न हो जाऊँ। मुझे भूल से इस तड़क-भड़क को ही सच्चा प्रकाश नहीं समझ लेना होगा। प्रकाश हमें जीवन प्रदान करता है और तड़क-भड़क मौत के मुँह में ले जाती है। [ह.से., १३-१-'४०, पृ. ३८६ (आ)]

१२. धारासभा के सदस्यों की तनखाह

प्रश्न - धारासभा के एक सदस्य की माहवार तनख़ाह २०० रुपये हैं। चूँिक वह कस्बे में रहता है, इसिलए धारासभा की बैठकों के दिनों में वह १५ रुपये रोज का भत्ता पाने का अधिकारी है। इसके अलावा, जिस दिन वह धारासभा की बैठक में हाज़िर रहे, उस दिन के लिए वह सवारी-भत्ते के ढ़ाई रुपये ले सकता है। साथ ही, अपने रहने के स्थान से शहर में आने पर उसे प्रथम वर्ग के ड्यौढ़े किराए के हिसाब से सफर खर्च का भत्ता भी मिल सकता है। लेकिन एक ही दिन के लिए वह सफर-खर्च का भत्ता और दैनिक भत्ता दोनों नहीं ले सकता।

१. अ. क्या गरीबों के प्रतिनिधि और सेवक के नाते ऐसे आदमी को यह तनख़ाह लेनी चाहिए?
आ. अगर वह अपनी पूरी तनख़ाह स्थानीय काँग्रेस कमेटी को या जिस संस्था में वह काम
करता हो उसे रचनात्मक कार्य के लिए दे-दे, तो क्या वह इस दोष से मुक्त हो सकेगा?

- इ. अगर ऐसा हो तो क्या इसका यह मतलब न होगा कि ध्येय के शुद्ध होने से उसे प्राप्त करने का साधन भी शुद्ध ठहरता है?
- धारासभा के अधिवेशन के दिनों में सदस्य को शहर में रहना होगा और धारासभा के सदस्य के नाते अपने फ़र्जों और ज़िम्मेदारियों को अदा करने के लिए उसे कुछ खर्च भी करना पडेगा।
 - अ. ऐसी हालत में क्या वह अपने आदर्श के साथ मेल बैठाते हुए इन खर्चों को पूरा करने के लिए दैनिक भत्ता ले सकता है?
 - आ. अगर ऐसा हो सकता हो और भत्ते का कुछ ही हिस्सा लिया न जा सकता हो, तो क्या उसे पूरा भत्ता लेना चाहिए? और बची हुई रकम अपनी संस्था को, जिसके मातहत वह काम करता हो, दे देनी चाहिए?
 - इ. अगर ऐसा किया जा सके, तो क्या अपने आदर्श के साथ मेल बैठाते हुए वह इस तरह बची हुई रकम को या उसके कुछ भाग को अपने परिवार के लिए खर्च कर सकता है? क्योंकि ऐसा न करने पर उसे अपने घर का खर्च चलाने के लिए मित्रों के दान का सहारा लेना पड़ेगा।
- अ. क्या ऐसी स्थिति में भी उसे सवारी-भत्ता लेना चाहिए, जब कि दैनिक भत्ते की रकम उसके सवारी वगैरा के सब खर्चों को पूरा करने के लिए काफ़ी से ज्यादा हो? (सवारी का भत्ता तो शहर में रहते हुए उसके धारासभा की बैठकों में शामिल होने के लिए ही रखा गया है।)
 - आ. अगर वह सामान्यत: ट्राम में या मोटर-बसों में सफ़र करता हो, तो क्या धारासभा की बैठकों में शरीक होने के लिए उसे कीमती या खर्चीली सवारी का उपयोग करना चाहिए?
- ४. अगर कोई सदस्य सिद्धांत के ख़ातिर तीसरे दर्जे में सफ़र करता हो, तो मील के हिसाब से सफ़र-भत्ता लेने के मामले में उसे उस स्थिति में क्या करना चाहिए जब कि उसके लिए पहले दरजे के ड्यौढ़े किराए के हिसाब से भत्ता लेना कानूनी तौर पर संभव हो?

उत्तर – मेरी राय में विभिन्न धारासभाओं के सदस्यों को जो तनख़ाहें और भत्ते दिए जाते हैं, वे उनकी देशसेवा के लिहाज़ से हर तरह ज्यादा हैं। तनख़ाहों या भत्तों के जो स्तर निश्चित किए गए हैं, वे ब्रिटिश नमूने के हैं। दुनिया के इस ग़रीब से ग़रीब देश की आय के साथ उनका कोई मेल नहीं बैठता। इसलिए इन प्रश्नों का मेरा उत्तर यही है कि जब तक मंत्रि-मंडल सारा खर्च कम न करे तब तक या तो ली जाने वाली तनख़ाह या भत्ता उस पार्टी को दे दिया जाए, जिसके अधीन वह सदस्य काम करता है; और वह उतनी ही रकम ले जितनी पार्टी ने उसके लिए निश्चित कर दी हो। और अगर यह संभव न हो तो वह उतनी रकम ले जितनी उसे अपने लिए और अपने परिवार के लिए सचमुच ज़रूरी मालूम हो। और बची हुई रकम को वह रचनात्मक कार्य के किसी अंग में या इस तरह के अन्य किसी सार्वजनिक कार्य में लगा दे। तनख़ाह या भत्ते के रूप में निश्चित की गई रकम लेना ज़रूरी है, लेकिन यह किसी सदस्य के लिए अनिवार्य नहीं है कि वह उस रकम को अपने लिए खर्च भी करे। हाँ, अपनी ज़रूरत के मुताबिक खर्च किया जा सकता है। ध्येय के शुद्ध होने से साधन के शुद्ध होने का प्रश्न यहाँ उठता ही नहीं। [ह. से., २-६-'४६, प्. १६२-६३]

विभाग - ५: विधानसभा के सदस्यों को चेतावनी

१३. बड़े दुःख की बात

बहुत से लोग संविधान-सभा में जाने के लिए इच्छुक है और मुझे इस बारे में पत्र लिख रहे हैं। मुझे डर लगने लगा है कि अगर यह आम लोगों की दिमागी हालत की निशानी हो, तो कहना होगा कि उन्हें हिंदुस्तान की आज़ादी के बनिस्बत अपने को आगे लाने की ही ज्यादा चिन्ता है। इन चुनावों के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है; फिर भी जब मेरे पास इतने पत्र आ रहे हैं, तो काँग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों के पास कितने पत्र आते होंगे? पत्र लिखने वालों को समझना चाहिए कि मैं चुनावों में कोई दिलचस्पी नहीं लेता। कार्यसमिति की जिन बैठकों में इन अर्जियों पर विचार किया जाता है, उनमें मैं उपस्थित नहीं रहता। और अकसर मुझे अखबारों से ही पता चलता है कि कौन-कौन चुने गए हैं। शायद ही कभी किसी चुनाव के बारे में मेरी सलाह पूछी जाती है। लेकिन आज तो मैं उस बीमारी की ओर आम लोगों का ध्यान खींचने के लिए लिख रहा हूँ, जिसकी निशानी इतने पत्र या अर्जियाँ हैं। इसे लिखने में मेश आशय यह बताने का नहीं है कि मुझ से इस बारे में मदद की कोई आशा न रखी जाए। इन चुनावों के बारे में साम्प्रदायिक दृष्टि से सोचना गलत है और साथ ही यह सोचना भी गलत है कि संविधान-सभा में हर कोई जा सकता है। और यह ख़याल करना तो सरासर गलत है कि ये चुनाव प्रतिष्ठा की निशानी हैं। जो लोग इस तरह की सेवा के योग्य हैं, उनके लिए यह सेवा का एक साधन है। और आख़िरी बात मैं यह भी कह दूँ कि जितने दिन तक संविधान-सभा अपना काम करेगी, उतने दिन तक उसकी बैठकों में शामिल होकर थोड़ा रुपया जमा कर लेने का ख़याल तो बहुत ही बुरी चीज है।

संविधान-सभा में उन्हीं लोगों को जाना चाहिए, जो दुनिया के सब देशों के संविधानों की जानकारी रखते हों और इससे भी ज्यादा ज़रूरी यह है कि वे हिंदुस्तान को जिस तरह के संविधान की ज़रूरत है वैसे संविधान के बारे में कुछ जानते-समझते हों। यह सोचना या समझना कि सच्ची सेवा तो संविधान-सभा में जाकर ही हो सकती है, एक नीचे गिराने वाली बात है। सच्ची सेवा तो संविधान-सभा के बाहर पड़ी है। इसके बाहर सेवा का जो क्षेत्र पड़ा है, उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है। जिस तरह की संविधान सभा आज बन रही है, आज़ादी की लड़ाई में उसकी भी अपनी एक जगह है। लेकिन उस जगह की कीमत बहुत कम है; और वह भी तभी कि जब हम बुद्धिमानी से उसका अच्छी तरह उपयोग करें।

संविधान-सभा में बैठक पाने के लिए ही सब भाग-दौड करने लगें, तो विश्वास रखिए कि ऐसी सभा से कोई सार नहीं निकलेगा। इस भाग-दौड को देखकर तो डर लगता है कि कहीं वह सभा स्वार्थी लोगों की शिकारगाह न बन जाए। यह तो मानना ही होगा कि संसदीय प्रवृत्ति का ही सीधा नतीजा आज की यह संविधान-सभा है। स्व. देशबन्धु चितरंजन दास और स्व. पंडित मोतीलाल नेहरू ने धारासभा में जाकर जो मेहनत की, उसने मेरी आँखें खोल दीं और मैं यह देख सका कि देश की आज़ादी की लडाई में पार्लियामेन्टरी प्रोग्राम की भी अपनी जगह है। पहले मैंने इसका कड़ा विरोध किया था; क्योंकि शुद्ध असहयोग के साथ इस प्रोग्राम का कोई मेल नहीं बैठता। लेकिन शुद्ध असहयोग कभी चला ही नहीं। जो चला वह भी आगे चल कर धीमा पड़ गया। अगर काँग्रेस वाले शुद्ध अहिंसक असहयोग को अपनाते, तो पार्लियामेन्टरी प्रोग्राम देश के सामने आता ही नहीं। बुराई के साथ अहिंसक असहयोग करने का मतलब है अच्छाई के साथ - जो भी कुछ अच्छा है उस सब के साथ - सहयोग करना। इसलिए परदेशी सरकार के साथ अहिंसक असहयोग करने का एक ही अर्थ हो सकता है और वह यह कि अपनी देशी अहिंसक सरकार बनाई जाए। यदि हम पूरा पूरा असहयोग कर पाते, तो आज हिंदुस्तान में अहिंसक स्वराज्य आ चुका होता। लेकिन वैसा तो हम कुछ कर नहीं पाए। ऐसी स्थिति में जिस तरीके को देश जानता है और जिसे हम छुड़वा नहीं पाए, उसका विरोध करना व्यर्थ होता। धारासभा में जाना मंजूर करने के बाद इस नए कदम का बहिष्कार करना अनुचित होता। परन्तु इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं, न हो सकता है, कि संविधानसभा में घुसने के लिए बेशरमी के साथ होड़ की जाए या भाग-दौड़ मचाई जाए। हरएक को अपनी मर्यादा समझ लेनी चाहिए। [ह. से., २८-७-'४६, पृ. २३७-३८]

१४. एक एक पाई बचाइए

मैंने देखा है कि धारासभाओं के सदस्य अपने निज़ी कामों के लिए भी निहायत कीमती गुलकारी किए हुए काग़ज़ का उपयोग करते हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, दफ्तरों का लिखने का सामान (स्टेशनरी) वहाँ से बाहर नहीं ले जाया जा सकता। दफ्तरों में भी व्यक्तिगत कामों के लिए – जैसे मित्रों या रिश्तेदारों को पत्र लिखना या धारासभा के सदस्यों का सार्वजनिक कार्य करने वाले किसी व्यक्ति को सार्वजनिक सेवा से भिन्न किसी दूसरे काम के लिए पत्र लिखना – इसके उपयोग की इजाज़त नहीं है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, दुनिया के हर भाग में इस बात की मनाही है।

लेकिन इस ग़रीब देश के लिए तो मैं और भी आगे जाऊँगा। लिखने के जिस सामान का मैंने जिक्र किया है, वह हमारे देश के लिए बहुत महँगा हैं। अंग्रेज दुनिया के सब से खर्चीले देश के लोग हैं। वे यह भी जानते हैं कि हम पर वे अपनी जितनी धाक बैठा सकें उतना ही उन्हें लाभ है। इसलिए उन्होंने दफ्तरों के लिए बहुत कीमती और बड़े-बड़े मकान बनवाये हैं, जिनकी देखभाल के लिए नौकरों और उनके सहारे जीने वाले चापलूसों की एक फ़ौज़ की ज़रुरत होती है। अगर हमने उनके तरीकों और आदतों की नकल की, तो हम-आप तबाह हो जाएँगे और देश को भी अपने साथ ले डूबेंगे। अंग्रेजों ने हमें जीता था, इसलिए उनकी बुराइयाँ बरदाश्त कर ली गई। लेकिन अगर वे ही बुराइयाँ हम में हुई, तो वे बरदाश्त नहीं की जाएँगी। देश में आज काग़ज़ की कमी है। इसलिए मेरी राय है कि ये तमाम खर्चीली आदतें हम छोड़ दें। हमें ग्रामोद्योग के हाथ-काग़ज़ का उपयोग करना चाहिए, जिस पर उर्दू और नागरी में नाम, ठिकाना वगैरा सादे ढँग से छपा हो। गुलकारी किए हुए काग़ज़ को, जो पहले का छपा हुआ है, काटकर आसानी से ज्यादा अच्छे काम में लाया जा सकता है। हम किफ़ायत करने के बहाने उसका उपयोग करें। बेशक, ग्रामोद्योग के माल से तब तक इन्तज़ार नहीं कराया जा सकता जब तक कि कीमती और बहुत संभव है विदेशी माल खतम न हो जाए। जनता की सरकारों को चाहिए कि वे आते ही लोकप्रिय कार्य करें और सस्ती आदतें अपनायें। [ह. से., १६-६-'४६, प. १८४]

१५. हम सावधान रहें

आन्ध्र का एक पत्र

मेरे पास आन्ध्र देश से एक करुण पत्र आया है। एक नौज़वान का और एक बूढ़े का ख़त है। बूढ़े को मैं जानता हूँ, पर नौज़वानों को नहीं जानता। वे नौज़वान भाई लिखते हैं कि जब से १५ अगस्त आ गई है, तब से लोगों को ऐसा लगने लगा है कि वे मनमानी कर सकते हैं। पहले तो अंग्रेजों का डर था। अब किसका डर है? आन्ध्र के लोग तगड़े हैं। अब आज़ाद हो गए हैं, तो काबू के बाहर हो गए हैं। आज़ादी पाने को उन्होंने भी काफ़ी बलिदान तो दिया है, लेकिन काँग्रेस आज गिरती जाती है। आज सबको नेता बनना है, पैसा पैदा करने के प्रयत्न करने हैं। वे लिखते हैं कि तुम यहाँ आकर रहो। मुझे वह अच्छा लगता है। पर कैसे जाऊँ? आन्ध्र के लोगों को मैं जानता हूँ। मेरे लिए सब जगहें एक सी हैं। सारा हिंदुस्तान मेरा है। मैं हिंदुस्तान का हूँ। लेकिन आज मैं दूसरे काम में पड़ा हूँ। मेरी आवाज़ ज़ल्दी से

ज़ल्दी वहाँ पहुँच जाएँ, इसिलए यहाँ यह सब कह रहा हूँ। वे लिखते हैं, एम.एल.ए. और एम.एल.सी. लोग गन्दगी फैला रहे हैं। उस गन्दगी को कम करने के लिए सदस्यों की संख्या कम करनी चाहिए। गन्दगी कम होगी तो उसे हटाना आसान होगा।

कम्युनिस्ट और सोशिलस्ट भाई भी वहाँ पड़े हैं। वे लोग काँग्रेस पर हमला करके हिंदुस्तान की सत्ता हाथ में लेना चाहते हैं। अगर सब हिंदुस्तान की सत्ता अपने हाथ में लेने की कोशिश करें, तो हिंदुस्तान का क्या हाल होगा? हिंदुस्तान सबका है। हिंद हमारा न बने, हम हिंद के बनें। हम सब हिंद की सेवा करें और वह भी निःस्वार्थ भाव से। यह हमारा पहले नम्बर का काम है। हम अपना पेट भरने का न सोचें। अगर हम अपने रिश्तेदारों को नौकरी दिलाने की कोशिश करेंगे, तो काम बिगड़ जाएगा। [दिल्ली-डायरी, (१९६०), पृ. ३२४-२५]

आत्मशुद्धि की आवश्यकता

मैंने कल आन्ध्र से आए हुए दो पत्रों का उल्लेख किया था। पत्र लिखने वाले वृद्ध मित्र देशभक्त कोंडा वेंकटप्पैया गारू हैं। मैं उनके पत्र से कुछ भाग यहाँ देता हूँ:

राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों के सिवा, एक बड़ा पेचीदा सवाल यह है कि काँग्रेस के लोगों का नैतिक पतन हो गया है। दूसरे प्रान्तों के बारे में तो मैं अधिक नहीं कह सकता, पर मेरे प्रान्त में हालत बहुत खराब है। राजनीतिक सत्ता पाकर लोगों के दिमाग ठिकाने नहीं रहे। लेजिस्लेटिव असेम्बली और लेजिस्लेटिव कौंसिल के कई सदस्य इस मौके का अपने लिए पूरा-पूरा लाभ उठाने की कोशिश कर रहे हैं।

वे अपनी जान-पहचान का फायदा उठाकर पैसा बना रहे हैं और मजिस्ट्रेटों की कचहरियों में पहुँचकर न्याय के मार्ग में भी रुकावट डालते हैं। जिला कलेक्टर और दूसरे माल-अधिकारी भी आज़ादी से अपना फ़र्ज अदा नहीं कर सकते। कौंसिल के मेम्बर उसमें हस्तक्षेप करते हैं। कोई ईमानदार अधिकारी लम्बे समय तक अपनी जगह पर नहीं रह सकता। उसके ख़िलाफ़ मंत्रियों के पास रिपोर्ट पहुँचाई जाती है और मंत्री किसी सिद्धांत को न मानने वाला ऐसे स्वार्थी लोगों की बातें सुनते हैं। स्वराज्य की लगन एक ऐसी चीज़ थी, जिसके कारण सभी स्त्री-पुरुष आपके नेतृत्व को मानने लगे थे। परन्तु ध्येय पूरा हो जाने पर अधिकतर काँग्रेसी लड़वैयों के नैतिक बन्धन टूट गए हैं। बहुत से पुराने योद्धा आज उनका साथ दे रहे हैं, जो हमारे स्वातंत्रय आंदोलन के कट्टर विरोधी थे। अपना मतलब निकालने के लिए वे लोग आज काँग्रेस में अपना नाम लिखवा रहे हैं। समस्या दिन-ब-दिन ज्यादा पेचीदा बनती जा रही है। नतीजा यह है कि काँग्रेस की और काँग्रेस सरकार की बदनामी हो रही है। लोगों का काँग्रेस पर से विश्वास हट रहा है। अभी-अभी यहाँ म्युनिसिपैलिटी के चुनाव हुए थे। ये चुनाव बताते हैं कि कितनी तेज़ी से जनता काँग्रेस के काबू से बाहर जा रही है। चुनाव की पूरी तैयारी करने के बाद गंतूर में लोकल बोर्ड्स (स्थानीय संस्थाओं) के मंत्री का ज़रूरी संदेशा आने से चुनाव एकाएक रोक दिये गए।

मैं समझता हूँ कि क़रीब दस साल से यहाँ सब सत्ता एक नियुक्त की हुई कौंसिल के हाथों में रही है और अब क़रीब एक साल से म्युनिसिपैलिटी का कामकाज़ एक कमिश्नर के हाथों में है। अब ऐसी बात चल रही है कि सरकार शहर की म्युनिसिपैलिटी का कारोबार सँभालने के लिए एक कौंसिल नियुक्त करेगी।

मैं बूढ़ा हूँ। मेरी टाँग टूट गई है। लकड़ी के सहारे लंगड़ाते-लंगड़ाते थोड़ा-बहुत चलता फिरता हूँ। मुझे अपना कोई स्वार्थ नहीं साधना है। इसमें शंका नहीं कि ज़िले और प्रान्त की काँग्रेस कमेटियाँ जिन दो गुटबंदियों में बंटी हुई हैं, उनके मुख्य-मुख्य काँग्रेस वालों के ख़िलाफ़ मैं कड़े विचार रखता हूँ। और मेरे विचार सब लोग जानते हैं।

काँग्रेस में फिरकेबाज़ी लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की पैसे बनाने की प्रवृत्ति और मंत्रियों की कमज़ोरी के कारण जनता में विद्रोह की वृत्ति पैदा हो रही है। लोग कहते हैं कि इससे तो अंग्रेजी हुकूमत बहुत अच्छी थी, और वे काँग्रेस को गालियाँ भी देते हैं।

आन्ध्र के और दूसरे प्रान्तों के लोग इस त्यागी सेवक के कहने की कीमत करें। वे ठीक कहते हैं कि जिस बेईमानी का उल्लेख उन्होंने किया है, वह सिर्फ़ आन्ध्र में ही नहीं पाई जाती। परन्तु वे आन्ध्र के बारेमें ही अपना निजी अभिप्राय दे सकते हैं। हम सब सावधान बनें। [दिल्ली-डायरी, (१९६०), पृ. ३३०-३१]

१६. काँग्रेसजनों में भ्रष्टाचार

इस पद-ग्रहण का अर्थ या तो अधिक महान प्रतिष्ठा की ओर कदम बढ़ाना है या फिर प्रतिष्ठा से बिलकुल हाथ धो बैठना है। अपनी प्रतिष्ठा को यदि हमें बिलकुल नहीं गँवा बैठना है, तो मंत्रियों और धारासभाओं के सदस्यों को अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक आचरण के प्रति जागरूक रहना ही होगा। उनकी हर बात संदेह से परे होनी चाहिए। वे कोई ऐसा काम न करें, जिससे खुद उन्हें या उनके सम्बन्धियों या मित्रों को व्यक्तिगत रूप में के कोई फ़ायदा पहुँचता हो। अगर वे अपने सम्बन्धियों या मित्रों की किसी सरकारी पद पर नियुक्ति करें, तो उसकी वजह यही होनी चाहिए कि उस पद के उम्मीदवारों में वे सब से अधिक योग्य हैं और सरकार उन्हें जो वेतन देती है उससे कहीं ज्यादा पाने की उनमें योग्यता है। काँग्रेसी मंत्रियों और धारासभा के सदस्यों को बिना किसी डर या दबाव के अपना फ़र्ज अदा करना चाहिए। उन्हें अपनी सीटों या पदों को खोने का खतरा उठाने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। अगर इन पदों और धारासभाओं की सदस्यता में काँग्रेस की प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ाने की ताक़त नहीं है, तो उनका कुछ भी मूल्य नहीं। चूँिक ये दोनों चीज़ें सार्वजनिक और व्यक्तिगत आचरण पर पूरी तरह से निर्भर करती हैं, इसलिए किसी भी प्रकार के नैतिक पतन के मानी हैं काँग्रेस को धक्का पहुँचाना। अहिंसा का यह आवश्यक फलितार्थ है। [ह. से., २३-४-४-१३८, पृ. ७६]

धारासभा में अनुशासन-भंग

दैनिक अखबारों में आया है कि मध्यप्रान्तीय धारासभा का अधिवेशन जब शुरू हुआ, तो दर्शकों ने – जो गैलरी में ठसाठस भरे हुए थे – श्री राघवेन्द्र राव के विरुद्ध अनुचित प्रदर्शन किया। गैलरी जिन लोगों से भरी हुई थी, वे संभवतः काँग्रेसवादी थे या ऐसे लोग थे जिनकी काँग्रेस के साथ सहानुभूति थी। मेरा ख़याल है कि हमें अपने ढंग की पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाएँगी, उसके बाद भी विभिन्न राजनीतिक दल तो रहेंगे ही। यदि उन दलों ने एक-दूसरे के साथ सहिष्णुता नहीं दिखाई या एक-दूसरे के प्रति साधारण शिष्टता और सौजन्य ज़ाहिर न किया तो वह हमारे लिए तकलीफ़ का कारण हो जाएगा और फिर काँग्रेस को तो जो सारे राष्ट्र के प्रतिनिधित्व का दावा करती है अपने विरोधियों या दूसरों के प्रति असहिष्णु होना पुसा ही नहीं सकता। यदि काँग्रेस एकमात्र अखिल भारतीय संस्था है और वह है भी तब तो वह सभी प्रकार के हितों का प्रतिनिधित्व करती है। वह तो श्री राघवेन्द्र राव तक का प्रतिनिधित्व

करती है जो कि किसी समय काँग्रेस के एक प्रतिष्ठित सदस्य थे। हो सकता है कि जिस निर्वाचन-क्षेत्र से वे खड़े हुए थे उसमें वोटों के सम्बन्ध में अनुचित तरीक़ा काम में लाया गया हो। अगर ऐसा हुआ है तो यह कानून के देखने की बात है। लेकिन जब तक श्री राव अपराधी साबित नहीं होते तब तक उनको ईमानदार समझना ही चाहिए। और अगर वे दोषी साबित भी हो जाएँ तो उनके विरुद्ध जो अनुचित प्रदर्शन किया गया उसके बचाव में उनका वह अपराध कोई प्रमाण थोड़े ही हो जाएँगा?

असिहष्णुता, अविनय और कटुता न केवल काँग्रेस के अनुशासन और प्रतिष्ठा के विपरीत है, बिल्कि ये दुर्गुण तो किसी भी भद्र या सभ्य समाज के लिए अवांछनीय हैं और प्रजातंत्र की भावना के तो निश्चय ही विरुद्ध हैं। [ह. से., १४-८-'३७, पृ. २०७]

विभाग - ६: मतदान, मताधिकार और कानून

१७. धारासभा के सदस्य और मतदाता

धारासभा के सदस्य सेवक हैं

धारासभा के सदस्य देश के शासक नहीं, परन्तु देश के प्रतिनिधि हैं और इसलिए देश के सेवक हैं। [ह. से., २५-१-'४२, पृ. १६]

केवल सीमित संख्या में ही पुरुष और स्त्रियाँ धारासभाओं के सदस्य बन सकते हैं - कि १५००। इस सभा में बैठे हुए लोगों में से कितने धारासभा के सदस्य बन सकते हैं? और इस समय ३॥ करोड़ से ज्यादा लोग इन १५०० सदस्यों के लिए मत नहीं दे सकते। तब बाकी के ३१॥ करोड़ लोगों का क्या? स्वराज्य की हमारी कल्पना में तो ३१॥ करोड़ ही सच्चे स्वामी हैं और ३॥ करोड़ मतदाता इन लोगों के सेवक हैं, जो स्वयं धारासभाओं के १५०० सदस्यों के स्वामी हैं। इस प्रकार १५०० सदस्य देश के प्रति वफ़ादार रहकर अपने कर्तव्य का पालन करें, तो वे दोहरे सेवक हैं – सेवकों के भी सेवक हैं।

परन्तु ३१॥ करोड़ लोगों को भी अपने प्रति और अपने राष्ट्र के प्रति, जिसके व्यक्तियों के नाते वे केवल छोटे अंश हैं, वफ़ादार रहकर अपना कर्तव्य पालन करना है। और अगर वे आलसी और निष्क्रिय बने रहें, स्वराज्य के बारेमें कुछ न जानें और उसे जीतने के उपाय भी न जानें, तो वे धारासभा के इन १५०० सदस्यों के गुलाम बन जाएँगे। मेरी दलील के लिए देश के ३॥ करोड़ मतदाता उसी श्रेणी के हैं, जिस श्रेणी के ३१॥ करोड़ लोग हैं। क्योंकि यदि वे उद्यमी और बुद्धिमान न बनें, तो वे १५०० खिलाड़ियों के हाथ के प्यादे बन जाएँगे – भले ही वे काँग्रेसजन हों या और कोई हों। अगर मतदाता केवल हर तीसरे या पाँचवें साल अपने मत दर्ज कराने के लिए ही नींद से जागें और मत देकर फिर गहरी नींद में सो जाएँ, तो उनके सेवक ज़रूर उनके स्वामी बन जाएँगे। [ह., २-१-'३७, पृ. ३७५]

सत्ता कहाँ रहती है?

हम एक अरसे से इस बात को मानने के आदी बन गए हैं कि आम जनता को सत्ता सिर्फ़ धारासभाओं के ज़रिए मिलती है। इस ख़याल को मैं अपने लोगों की एक गंभीर भूल मानता रहा हूँ। इस भ्रम या भूल की वजह या तो हमारी जड़ता है या वह मोहिनी है, जो अंग्रेजों के रीति-रिवाजों ने हम पर डाल रखी है। अंग्रेज जाति के इतिहास के छिछले या ऊपर के अध्ययन से हमने यह समझ लिया है कि सत्ता शासन-तंत्र की सबसे बड़ी संस्था पार्लियामेन्ट से छनकर जनता तक पहुँचती है। सच बात यह है कि सत्ता जनता के बीच रहती है, जनता की होती है और जनता समय-समय पर अपने प्रतिनिधियों की हैसियत से जिनको पसंद करती है उनको उतने समय के लिए उसे सौंप देती है। जनता से भिन्न या स्वतंत्र पार्लियामेन्टों की सत्ता तो ठीक, हस्ती तक नहीं होती। पिछले इक्कीस बरसों से भी ज्यादा अरसे से मैं यह इतनी सीधी-सादी बात लोगों के गले उतारने की कोश्रिश करता रहा हूँ। सत्ता का असली भंडार तो सत्याग्रह की या सविनय कानून भंग की शक्ति में है। एक समूचा राष्ट्र यदि अपनी धारासभा के कानूनों के अनुसार चलने से इनकार कर दे, और इस सिविल नाफरमानी के नतीजों को बरदाश्त करने के लिए तैयार हो जाए, तो सोचिए कि क्या नतीजा होगा! ऐसी जनता सरकार की धारासभा को और उसके शासन प्रबन्ध को जहाँ का तहाँ, पूरी तरह रोक देगी। सरकार की, पुलिस की या फ़ौज की ताक़त, फिर वह कितनी ही जबरदस्त क्यों न हो, थोड़े लोगों को ही दबाने में कारगर होती है। लेकिन जब कोई समूचा राष्ट्र सब कुछ सहने को तैयार हो जाता है तो उसके दृढ़ संकल्प को डिगाने में किसी पुलिस की या फ़ौज की कोई ज़बरदस्ती काम नहीं देती।

फिर, पार्लियामेन्ट के ढंग की ज्ञासन-व्यवस्था तभी उपयोगी होती है जब पार्लियामेन्ट के सब सदस्य बहुमत के फेंसलों को मानने के लिए तैयार हों। दूसरे ज्ञब्दों में, इसे यों कहिए कि पार्लियामेन्टरी ज्ञासन-पद्धित का प्रबन्ध परस्पर अनुकूल समूहों में ही ठीक-ठीक काम देता है। [रचनात्मक कार्यक्रम, (१९५८), पृ. १३-१४]

१८. स्त्रियाँ और विधानसभाएँ

कस्तूरबा ट्रस्ट और विधानसभाएँ

२८, २९ और ३० मार्च (१९४६) को उरुली कांचन में दो बैठकें हुईं : एक कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट के एजेन्टों की और दूसरी ट्रस्ट की कार्यकारिणी समिति की। एजेन्टों की बैठक अपने ढंग की पहली ही थी। बैठक में एजेन्टों ने बहुत से दिलचस्प सवाल पूछे। एक बहन ने पूछा कि कस्तूरबा ट्रस्ट की एजेन्ट बहनें विधानसभा की सदस्या क्यों नहीं हो सकतीं? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि यदि उन्हें अपने कार्य

के साथ न्याय करना हो, तो विधानसभा के कर्तव्य पूरे करने के लिए उन्हें समय ही नहीं मिल सकता। निश्चित कारण यह है कि यदि ग्रामवासियों को विधानसभा के सदस्यों की ओर मदद के लिए ताकना पड़े। तो यह ग्रामवासियों के लिए एक गलत उदाहरण पेश करना होगा। [ह., ७-४- ४६, पृ. ७६]

क्यों नहीं?

एक बहन को मेरा यह कहना चुभता है कि यदि धारासभा की सदस्या बहनें कस्तूरबा-निधि-मंडल की एजेन्ट बनें तो वह ग्रामवासियों के सामने एक गलत उदाहरण होगा। वे कहती हैं कि अगर यह बात मौजूदा धारासभाओं के लिए हो तब तो ठीक हो सकती है लेकिन जब हमारा शासन होगा तब तो शकल बदल जाएगी। धारासभा के सदस्य पथ-प्रदर्शक होंगे। इसलिए वहाँ जाना लाभदायक ही होगा। जिस काम को करने में यों ही बरसों लग जाते हैं, वह काम धारासभा के मारफ़त एक ही बैठक में हो जाएगा।

इस दलील में तीन गलतियाँ हैं। पहले तो यह बात ही नहीं है कि मैंने आज की और अपने शासन-काल में होने वाली धारासभाओं में कोई भेद किया है। ऐसा भेद अनावश्यक है।

दूसरे यह मानना कि ऐसे सदस्य पथ-प्रदर्शक होंगे, भ्रममूलक होगा। मतदाता किसी को धारासभा में इसलिए नहीं भेजते कि उससे मार्गदर्शन प्राप्त करें, बल्कि इसलिए भेजते हैं कि हम उसके लिए जो रास्ता तय कर दें उस पर चलने की वफ़ादारी उसमें है। पथ-प्रदर्शक तो हम हैं, धारासभा के सदस्य नहीं। वे हमारे सेवक हैं, स्वामी नहीं। आज का यह भ्रम वर्तमान शासन-पद्धित का पैदा किया हुआ है। जब यह भ्रम दूर हो जाएगा, तो सदस्य बनने वालों की भरमार बहुत कम हो जाएगी। धर्म समझकर जाने वाले लोग थोड़े ही होंगे। वे हमारी इच्छा से वहाँ जाएँगे। धारासभा में जाने की अगर कोई ज़रूरत हो सकती है तो वह आज है, जब कि वहाँ जाकर लोक-शासन के लिए लड़ना है। लेकिन आज तो कुछ हद तक हमने यह भी देख लिया है कि वहाँ पहुँच कर लोक-शासन के लिए लड़ाई कम होती है।

तीसरी गलती यह मानने में है कि धारासभाएँ ही मार्गदर्शन के सबसे योग्य साधन हैं। अपने इर्द-गिर्द देखने से पता चलता है कि दुनिया भर में पथ-प्रदर्शक ज्यादातर जो धारासभा के बाहर रहने वाले लोग ही होते हैं। यदि ऐसा न हो तो लोक-शासन सड़ जाए। क्योंकि मार्गदर्शन करने का क्षेत्र तो व्यापक और विशाल है और धारासभा का बहुत छोटा। लोक-जीवन की धारा महासागर है, जब कि धारासभा एक बहुत छोटी नदी। [ह. से., २८-४-'४६, पृ. १०९]

प्रश्नोत्तर

प्र。 – हमें मालूम होता है कि काँग्रेस किसी भी प्रतिनिधि-संस्था या समिति के लिए महिला प्रतिनिधियों को बड़ी तादाद में चुनने के ख़िलाफ़ है। असल में न्याय का तक़ाज़ा है कि अलग-अलग संस्थाओं में महिलाओं को ज्यादा संख्या में चुना जाए। इस सवाल को आप कैसे हल करेंगे?

उ॰ – ऐसी बातों में मुझे समानता का या दूसरे किसी तरह के अनुपात का मोह नहीं है। इसमें योग्यता ही मुख्य कसौटी होनी चाहिए। आज तक अगर स्त्रियों को इस क्षेत्र से दूर रखने का रिवाज चला आया है, तो अब से समान योग्यता के आधार पर पुरुषों के बदले स्त्रियों की तरजीह देने का उलटा रिवाज चालू कर देना चाहिए। इस तरजीह का यह नतीजा हो सकता है कि पुरुषों की सारी जगहें स्त्रियों के हाथ में आ जाएँ, लेकिन इसकी कोई चिन्ता नहीं। कोई स्त्री केवल स्त्री है इसीलिए उसे सदस्य बनाने पर जोर देना ख़तरनाक बात होगी। स्त्रियाँ हों या दूसरे कोई दल हों, उन्हें किसी की मदद पर आधार न रखना चाहिए। उन्हें न्याय की माँग करनी चाहिए, न कि पक्षपात या मेहरबानी की। इसलिए स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए यही ठीक होगा कि वे अंग्रेजी या पश्चिमी शिक्षा के बदले अपने समाज में प्रान्तीय भाषाओं द्वारा ऐसी शिक्षा का प्रसार करें, जो लोगों को नागरिकों के सारे फ़र्ज पूरे करने लायक बना दे। अगर पुरुष इस ओर पहले कदम बढ़ाते हैं, तो उनका यह काम मेहरबानी नहीं बल्कि स्त्रियों के साथ किया जाने वाला न्याय ही होगा, जो बहुत पहले किया जाना चाहिए था। [ह. से., ७-४-'४६, पृ. ७०]

१९. मताधिकार

मैंने बालिग मताधिकार का वरण किया है।... बालिग मताधिकार एक नहीं अनेक कारणों से ज़रूरी है। और मेरे लिए एक निर्णायक कारण यह है कि वह मुझे न केवल मुसलमानों की परन्तु तथाकथित हिन्दुओं की, ईसाइयों की, मज़दूरों की और सभी प्रकार के वर्गों की सारी उचित महत्त्वाकांक्षाएँ संतुष्ट करने के लिए समर्थ बनाता है। मैं इस विचार को सहन नहीं कर सकता कि जिस आदमी के पास धन है उसे मतदान का अधिकार हो और जिस आदमी के पास धन या अक्षरज्ञान तो नहीं परन्तु चरित्र है

उसे मतदान का अधिकार न हो; अथवा आदमी रात-दिन पसीना बहाकर ईमानदारी से कड़ी मेहनत करता है उसे केवल इस अपराध के लिए मतदान का अधिकार न हो कि वह ग़रीब है। [यं. ई., ८-१०-'३१, पृ. २९७]

जहाँ तक मताधिकार का सम्बन्ध है, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि २१ या १८ वर्ष की उम्र से ऊपर के सब बालिंग स्त्री-पुरुषों को मत देने का अधिकार रहेगा। मैं अपने जैसे बूढ़ों को यह अधिकार नहीं देना चाहता। ऐसे लोग किसी काम के नहीं। हिंदुस्तान और बाकी की दुनिया उन लोगों के लिए नहीं है, जो मौत के किनारे खड़े हैं। उनके लिए मौत है, जिंदगी नौज़वानों के लिए है। इस तरह मैं चाहूँगा कि जैसे १८ वर्ष की उम्र से कम उम्र के लोगों को मत देने का अधिकार नहीं होगा, उसी तरह एक निश्चित उम्र के बाद के लोगों को – मान लीजिए कि ५० साल से ऊपर की उम्र के लोगों को भी इससे वंचित रखना होगा। [ह. से., २-३-'४७, पृ. ३८]

वयस्क मताधिकार और अक्षरज्ञान की कसौटी

अब तक मैं यह मानता और कहता आया हूँ कि हरएक वयस्क आदमी को – फिर वह निरक्षर हो या साक्षर – मत देने का अधिकार होना चाहिए। लेकिन काँग्रेस-विधान को जिस तरह अमल में लाया जा रहा है, उसका निरीक्षण करते-करते मेरी राय बदल गई है। अब मैं यह मानने लगा हूँ कि मताधिकार के लिए अक्षरज्ञान का होना आवश्यक है। इसके दो कारण हैं। मत को एक विशेष अधिकार के रूप में माना जाए और उसके लिए कुछ योग्यता आवश्यक समझी जाए। सादी से सादी योग्यता अक्षरज्ञान की – लिखना, पढ़ना आ जाने की – है। और अक्षरज्ञान वाले मताधिकार के विधान के अनुसार बना हुआ मंत्रि-मंडल यदि मताधिकार से वंचित निरक्षर प्रजाजनों के हित की चिन्ता रखने वाला होगा, तो आवश्यक अक्षरज्ञान तो उन्हें देखते-देखते हो जाएगा। [ह. से., २८-१-'३९, पृ. ४०४-०५]

२०. कानून द्वारा सुधार

लोग ऐसा सोचते मालूम होते हैं कि किसी बुराई के ख़िलाफ़ कानून बना दिया जाए, तो वह बुराई अपने-आप निर्मूल हो जाती है। इस सम्बन्ध में अधिक कुछ करने की आवश्यकता नहीं रहती। लेकिन इससे ज्यादा बड़ी कोई आत्म-वंचना नहीं हो सकती। कानून तो अज्ञान में फँसे हुए या बूरी वृत्ति वाले अल्पसंख्यक लोगों को ध्यान में रखकर यानी उनसे उनकी बुराई छुड़वाने के उद्देश्य से बनाया जाता है और उसी स्थिति में वह सफल भी होता है। बुद्धिमान और संगठित लोकमत अथवा धर्म की आड़ लेकर दुराग्रही अल्पसंख्यक लोग जिस कानून का विरोध करते हैं, वह कभी सफल नहीं हो सकता। [यं. ईं., ७-७-'२७, पृ. २१९]

पहली चीज़ तो यह है कि हमारे प्रयत्न में ज़बरदस्ती या असत्य का लेश भी नहीं होना चाहिए। मेरी नम्र राय में आज तक ज़बरदस्ती के द्वारा कोई भी महत्त्वपूर्ण सुधार नहीं कराया जा सका है। कारण यह है कि ज़बरदस्ती के द्वारा ऊपरी सफलता होती भले दिखाई दे किन्तु उससे दूसरी अनेक बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं, जो मूल बुराई से मो ज्यादा हानिकारक सिद्ध होती हैं। [यं. ईं., ८-१२-'२७, पृ. ४१५]

एक बार जब कानून अमल में आ जाता है, तब उसे बदलने के पहले सभी किठनाइयों का सामना करना होता है। जनमत के पूरी तरह शिक्षित होने पर ही देश में प्रचलित कानून रद किए जा सकते हैं। जिस विधान के मातहत हर समय कानून सुधारे जाते हैं या रद किए जाते हैं, उसे स्थायी या सुगठित नहीं कहा जा सकता है। [सत्याग्रह इन साउथ आफ्रिका, (१९६१), पृ. ८८]

मुझे डर है कि भारत को अगले कई वर्षों तक दबी हुई और गिरी हुई जनता को दुःख और ग़रीबी के कीचड़ से उठाने के लिए आवश्यक कानून कायदे बनाने का काम करते रहना होगा। इस कीचड़ में उसे एक हद तक तो पूँजीपितयों, जमींदारों और तथाकिथत उच्च वर्गों ने और बाद में ब्रिटिश शासकों ने फँसाया है; अलबत्ता, ब्रिटिश शासकों ने अपना यह काम बहुत वैज्ञानिक रीति से किया है। अगर हमें इस जनता का उसकी इस दुरवस्था से उद्धार करना है; तो अपना घर सुव्यवस्थित करने की दृष्टि से भारत की राष्ट्रीय सरकार का यह कर्तव्य होगा कि वह लगातार जनता को ही तरजीह देती रहे और जिन बोझों के भार से उसकी कमर टूटी जा रही है उनसे उसे मुक्त भी कर दे। और यदि जमींदारों को, अमीरों को और उन लोगों को जो आज विशेषाधिकार भोग रहे हैं – िफर वे यूरोपीय हों या भारतीय – ऐसा मालूम हो कि उनके साथ निष्पक्षता का व्यवहार नहीं हो रहा है, तो मैं उनसे सहानुभूति रखूँगा। लेकिन मैं उनकी कोई सहायता नहीं कर सकूँगा, क्योंकि मैं तो इस प्रयत्न में उनकी मदद चाहूँगा; और सच तो यह है कि उनकी मदद के बिना इस जनता का कीचड़ से उद्धार करना संभव ही नहीं होगा।

इसिलए धन या अधिकारों के रूप में जिनके पास कोई संपत्ति है उनके तथा जिनके पास ऐसी कोई संपत्ति नहीं है उन ग़रीबों के बीच संघर्ष तो अवश्य होगा। और यदि इस संघर्ष का भय रखा जाता हो और सब वर्ग मिलकर करोड़ों मूक लोगों के सिर पर पिस्तौल तान कर ऐसा कहना चाहते हों कि 'तुम लोगों को तुम्हारी अपनी सरकार तब तक नहीं मिलेगी जब तक कि तुम इस बात का आश्वासन नहीं देते कि हमारी संपत्ति और हमारे अधिकारों को कोई आँच नहीं आएगी', तब तो मुझे लगता है कि राष्ट्रीय सरकार का निर्माण हो ही नहीं सकता। [नेश्चन्स व्हाॅइस, (१९५८), पृ. ५१-५२]

विभाग-७: पद-ग्रहण और मंत्रियों का कर्तव्य

२१. काँग्रेसी मंत्रि-मंडल

पद-ग्रहण के मामले में काँग्रेस कार्यसमिति तथा काँग्रेसवादियों ने मेरी राय से अपने को प्रभावित होने दिया है, इसलिए सर्व-साधारण को यह बताना मेरे लिए ज्ञायद ज़रूरी हो गया है कि पद-ग्रहण के बारे में मेरी क्या कल्पना है और काँग्रेस के चुनाव-घोषणापत्र के अनुसार पद-ग्रहण द्वारा क्या-क्या किया जा सकता है। यह बात शायद पाठकों को उस मर्यादा से बाहर की मालूम पड़े, जो कि मैंने *हरिजन* के लिए अपने-आप बना रखी है। लेकिन इसके लिए मुझे माफी माँगने की ज़रूरत नहीं है। कारण इसका बिलकुल साफ़ है। भारतीय शासन विधान (गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्ट) हिंदुस्तान की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए बिलकुल पर्याप्त नहीं है, यह आम-तौर पर सब कोई मानते हैं। परन्तु इसके द्वारा तलवार के शासन को बहुमत के शासन में बदला जा सकता है, फिर वह कितना ही सीमित और निर्बल क्यों न हो। तीन करोड़ स्त्री-पुरुषों के विशाल निर्वाचन-मंडल का निर्माण करके उसके हाथ में विशाल सत्ता सौंपने की बात को हम और कह ही क्या सकते हैं? यह सच है कि इस विधान में यह आशा निहित है कि हमारे ऊपर जो कुछ भी ज़बरदस्ती लादा गया है उसे हम ग्रहण करेंगे, यानी अपने शोषण को अंत में हम अपने लिए वस्तुतः एक आशीर्वाद समझेंगे। लेकिन तीन करोड़ मतदाताओं के प्रतिनिधियों का अपने-आपमें काफ़ी विश्वास हो और उनमें कुशलता हो कि अपने हाथ में आई हुई सत्ता का (जिसमें पद-ग्रहण भी शामिल है) वे विधान बनाने वालों के स्वीकृत आशय को पराजित कर देने के उद्देश्य से उपयोग कर सकें, तो यह आशा निष्फल हो सकती है। और ऐसा करना कुछ कठिन काम नहीं है, बशर्ते कि हम कानूनी तौर पर इस विधान का ऐसा उपयोग करें जैसा उपयोग किए जाने की उन्होंने आशा नहीं रखी है और जैसा वे चाहते हैं वैसा उपयोग हम उसका न करें।

इस प्रकार शराब की आमदनी से शिक्षा का खर्च चलाने के बजाय शिक्षा को स्वावलम्बी बनाकर मंत्रि-मंडल तत्काल मद्य-निषेध को अमल में ला सकते हैं। यह एक चौंका देंने वाली बात मालूम पड़ेगी, लेकिन मैं तो इसे सर्वथा व्यावहारिक और बिलकुल उचित समझता हूँ। इसी तरह जेलों को सुधार-गृहों और कारखानों का रूप दिया जा सकता है। उस हालत में वे खर्चीले और सजा देने वाले महकमों के बदले स्वावलम्बी और शिक्षणात्मक महकमे बन जाएँगे। इर्विन-गांधी करार के अनुसार, जिसकी सिर्फ नमक वाली धारा अब भी कायम है, नमक ग़रीबों के लिए मुफ्त मिलना चाहिए। लेकिन ऐसा है नहीं। अब कम से कम काँग्रेसी प्रान्तों में तो यह हो ही सकता है। इसी तरह जो भी कपड़ा खरीदा जाए वह खादी का ही होना चाहिए। शहरों के बजाय अब गाँवों और किसानों की तरफ़ ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए। ये तो इधर-उधर के कुछ उदाहरण भर हुए। ये सब बातें पूरी तरह कानून-सम्मत हैं। परन्तु इनमें से किसी एक के लिए भी अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

इसके बाद मंत्रियों के अपने निजी आचरण का सवाल आता है। काँग्रेसी मंत्री किस तरह अपना कर्तव्य पालन करेंगे? राष्ट्रपति (काँग्रेस अध्यक्ष) तो तीसरे दर्जे में यात्रा करते हैं। तब कया मंत्री पहले दर्ज में यात्रा करेंगे? इसी प्रकार राष्ट्रपति तो खुरदरे और सादे खद्दर के कुर्ते, धोती और जाकिट से ही संतोष कर लेते हैं, तब क्या मंत्री पश्चिम के रहन-सहन के ढंग और पैमाने पर पैसा खर्च करेंगे? गत १७ वर्षों से काँग्रेसियों ने कठोरता से सादगी का पालन किया है। अतः राष्ट्र अपने मंत्रियों से यही आशा करेगा कि अपने प्रान्तों के शासन में वे उसी सादगी का प्रवेश कराएँ। इसके लिए वे लज्जित नहीं होंगे, बल्कि गर्व का अनुभव करेंगे। क्योंकि भूमंडल पर एक हमारा ही राष्ट्र सब से अधिक ग़रीब है, जिसमें लाखों लोग अधभूखे रहते हैं। इसके प्रतिनिधि ऐसे ढंग और तौर-तरीकों से रहने का साहस नहीं कर सकते, जो उनके निर्वाचकों के रहन-सहन और तौर-तरीकों से मेल न खाते हों। अंग्रेज लोग तो विजेता और शासक के रूप में यहाँ आते हैं। इसलिए वे रहन-सहन का ऐसा स्तर रखते हैं, जिसका पराजितों की असहाय अवस्था से बिलकुल मेल नहीं खाता। अतः मंत्री लोग दूसरा कुछ न करें और सिर्फ़ गवर्नरों और सुरक्षित सिविल सर्विस वालों की नकल करने से ही बचे रहें, तो वे यह दिखा देंगे कि काँग्रेस की और उन लोगों की मनोवृत्ति में कितना अंतर है। सच तो यह है कि जैसे हाथी और चींटी के बीच कोई साझेदारी नहीं हो सकती, वैसे ही उनके और हमारे बीच भी नहीं हो सकती।

लेकिन काँग्रेस वालों को यह ख़याल कभी न करना चाहिए कि सादगी पर उन्हीं का ठेका है और १९२० में पतलून और कुर्सी छोड़कर उन्होंने कोई गलती की है। इस सम्बन्ध में मैं ख़लीफ़ा अबूबकर और उमर के उदाहरण सामने रखूँगा। राम और कृष्ण इतिहास के पहले के नाम हैं, इसलिए उनका यहाँ उदाहरण के रूप में मैं उपयोग नहीं करूँगा। इतिहास हमें राणा प्रताप और शिवाजी के अत्यंत सादगी से रहने का हाल भी बताता है। लेकिन इस बारे में मतभेद हो सकता है कि जब वे अपने उत्थान पर थे,

यानी जब उनके पास सत्ता थी, तब उन्होंने क्या किया? लेकिन पैगम्बरसाहब, अबूबकर और उमर के बारेमें तो कोई मतभेद है ही नहीं। उनके कदमों पर सारी दुनिया की दौलत लोटती थी, फिर भी उनका जीवन इतनी कठोर सादगी का था कि इतिहास में वैसी मिसाल मिलना कठिन है। हज़रत उमर यह कभी पसंद न करते कि सुदूर प्रान्तों के उनके नायब खुरदरे कपड़े और मोटे अन्न के सिवा और किसी चीज़ का उपयोग करें। काँग्रेसी मंत्री अगर सादगी और किफ़ायतशारी की उस विरासत को कायम रखें, जो १९२० से उन्हें मिली है, तो वे हज़ारों रुपये की बचत और लोगों में आशा का संचार करेंगे और शायद सिविल सर्विस वालों के रुख को भी बदल देंगे। मेरे लिए यह कहने की तो शायद ही ज़रूरत हो कि सादगी का अर्थ भद्दापन नहीं है। सादगी में तो ऐसी सुंदरता और कला है, जिसे कोई भी व्यक्ति देख सकता है। साफ़-सुथरा और सलीकेदार होने के लिए रुपये-पैसे की ज़रूरत नहीं होती। तड़क-भड़क और आडंबर तो प्राय: अशिष्टता और गंवारपन का ही दूसरा नाम है।

यह सीधा-सादा काम तो यह प्रदर्शित करने की भूमिका मात्र होना चाहिए कि नया विधान जनता की इच्छापूर्ति करने के लिए बिलकुल अपर्याप्त है और उसका अंत करने के लिए हम दृढ़ता के साथ कटिबद्ध हैं।

अंग्रेजों के अखबार हिंदुस्तान को हिंदू और मुसलमानों के दो भागों के रूप में बाँटने का जीतोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। जिन प्रान्तों में काँग्रेस का बहुमत है उन्हें हिंदू और बाकी पाँच प्रान्तों को वे मुस्लिम प्रान्तों का नाम देते हैं। यह साफ़ तौर पर ग़लत है, इसकी उन्हें कभी चिन्ता ही नहीं हुई। अतः मुझे इस बात की बड़ी आशा है कि छह प्रान्तों के (जिनमें काँग्रेस का बहुमत है) मंत्री उनकी ऐसी व्यवस्था करेंगे, जिससे इस प्रकार का कोई संदेह न रहे। अपने मुसलमान साथियों को वे दिखा देंगे कि हिंदू, मुसलमान, सिख, पारसी या ईसाई के बीच कोई भेदभाव नहीं है। न सवर्ण और अवर्ण जातियों के हिंदुओं के बीच ही वे कोई भेदभाव मानेंगे। वे तो अपने हर कार्य से यही प्रकट करेंगे कि उनके लिए सब लोग एक ही भारत माता की संतान हैं; न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा। ग़रीबी और आबहवा बिना किसी मेदभाव के सबके लिए समान हैं और सबकी मुख्य समस्याएँ भी एक सी ही हैं। और जब कि – जहाँ तक हम कार्यों से निर्णय कर सकते हैं – अंग्रेजी पद्धित का लक्ष्य हमारी पद्धित से बिलकुल भिन्न है, दोनों लक्ष्यों का प्रितिनिधित्व करने वाले स्त्री-पुरुष मूलत: एक ही मानव-परिवार के हैं। अब उन्हें एक-दूसरे के संपर्क में

आने का ऐसा अवसर मिलेगा जैसा पहले कभी नहीं मिला था। मानव-दृष्टि से मैंने विधान का जो अध्ययन किया है वह अगर सही हो, तो उसके ज़िरए दो दल – हरएक अपने-अपने इितहास, अपनी आधार-भूमि और अपना लक्ष्य सामने रखकर - एक दूसरे को बदलने के लिए आगे बढ़ते हैं। जड़ और आत्मा रिहत संस्थाएँ होती हैं, न कि उन्हें बनाने वाले और उनका उपयोग करने वाले मनुष्य। अगर अंग्रेज या अंग्रेजियत में पले हुए हिंदुस्तानी कम से कम यदि भारतीय यानी काँग्रेस के दृष्टिकोण से भी देख सकें, तो समझना चाहिए कि काँग्रेस ने अपनी लड़ाई जीत ली और पूर्ण स्वाधीनता हमें एक बूँद खून बहाए बिना ही प्राप्त हो जाएँगी। मैं जिसे अहिंसात्मक तरीक़ा कहता हूँ वह यही है। यह तरीक़ा चाहे बेवकूफी भरा समझा जाए या काल्पनिक अथवा अव्यावहारिक, परन्तु यही वह सर्वोत्तम तरीक़ा है जिसे काँग्रेसियों, अन्य भारतीयों तथा अंग्रेजों को जानना चाहिए। यह ध्यान रहे कि पद-ग्रहण इसलिए नहीं किया जा रहा है कि किसी न किसी तरह नए विधान पर अमल किया जाए। यह तो काँग्रेस का अपना पूर्ण स्वतंत्रता का ध्येय सिद्ध करने की दिशा में एक ऐसा गंभीर प्रयत्नमात्र है, जिसमें एक ओर तो खूनी क्रांति यानी रक्तपात को बचाना है और दूसरी ओर सविनय अवज्ञा को ऐसे पैमाने पर करने से रोकना है, जिस पर कि अभी तक उसे करने का प्रयत्न नहीं हुआ है। ईश्वर हमारे इस प्रयत्न को आशीर्वाद दें ! [ह. से., १७-७-'३७, पृ. १७४-७५]

२२. कितना मौलिक अन्तर है!

जरा सोचने की बात है कि पुराने और नए राज्य-प्रबन्ध में कितना मौलिक अन्तर है! इसके महत्त्व को पूरी तरह अनुभव करने के लिए इस नए विधान द्वारा लादी गई तथा प्रबन्धकों के मार्ग में बेहद रोड़े अटकाने वाली मर्यादाओं को हम एक क्षण के लिए भुला दें। पद-ग्रहण करने में काँग्रेस ठेठ पराकाष्ठा की सीमा तक चली गई है। पर सवाल यह है कि इससे दरअसल उसके हाथों में सत्ता कितनी आई है। पहले मंत्रिमंडलों पर गवर्नरों का नियंत्रण था, अब काँग्रेस का है। अब वे काँग्रेस के प्रति ज़िम्मेदार हैं। अपनी प्रतिष्ठा के लिए वे काँग्रेस के ऋणी हैं। गवर्नरों और सिविल सर्विस वालों को आज भले ही हम हटा न सकें, फिर भी वे मंत्रि-मंडलों के प्रति जवाबदेह हैं। तब भी मंत्रियों का उन पर नियंत्रण एक हद तक ही है। किन्तु इस हद के अंदर रहते हुए भी वे काँग्रेस की यानी जनता की सत्ता का संगठन कर सकते हैं। मंत्रियों के कार्य गवर्नरों के लिए चाहे जितने अरुचिकर हों, पर जब तक वे इस कानून की

मर्यादा में रहेंगे तब तक गवर्नर उनका कुछ भी नहीं कर सकेंगे। और अच्छी तरह परीक्षा करने पर हमें साफ़-साफ़ दिखाई दे सकता है कि जनता अगर अहिंसक बनी रही, तो काँग्रेस के मंत्रि-मंडलों के हाथों में राष्ट्र को विकसित करने की अब भी काफ़ी सत्ता है।

इस सत्ता का उपयोग करके अगर अच्छे परिणाम लाने हैं, तो जनता को चाहिए कि वह काँग्रेस और उसके मंत्रियों को हार्दिक सहयोग दे। अगर मंत्री कुछ अन्याय करें, तो हर आदमी इसकी शिकायत राष्ट्रिय महासमिति (ऑल इंडिया काँग्रेस कमेटी) के मंत्री से कर सकता है और उसके परिमार्जन की माँग भी कर सकता है। पर कानून को कोई अपने हाथों में न ले।

काँग्रेसवादियों को यह भी अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि आज सारा मैदान काँग्रेस के हाथों में है। एक भी राजनीतिक दल ऐसा नहीं है, जो उसकी सत्ता के ख़िलाफ़ उंगली तक उठा सके; क्योंकि दूसरे दल कभी गाँवों में गए ही नहीं है। और न यह काम ही ऐसा है, जो एक दिन में किया जा सके। इसलिए जहाँ तक मैं नज़र दौड़ाता हूँ, मुझे तो यही दिखाई देता है कि हमारे मंत्रियों के लिए – यदि वे ईमानदार, निःस्वार्थ, उद्योगशील, सजग और तत्पर हैं तथा अपने करोड़ों भूखों मरने वाले भाई-बहनों का सचमुच भला करना चाहते हैं – काँग्रेस के पूर्ण स्वतंत्रता वाले ध्येय की तरफ़ तेज़ी से आगे कदम बढ़ाने के लिए यह बड़ा अच्छा मौका है। निःसंदेह इस कथन में भी बहुत सत्य है कि इस नए कानून ने राष्ट्र-निर्माणकारी महकमों के लिए मंत्रियों के हाथों में कुछ भी पैसा नहीं छोड़ा है। पर अधिकांश में यह भी तो एक भ्रम ही है कि राष्ट्र-निर्माण केवल पैसे से ही हो सकता है। सर डेनिअल हेमिल्टन के साथ मैं भी यही मानता हूँ कि सच्चा धन सोना-चाँदी नहीं, बल्कि श्रमशक्ति है। धनशक्ति के साथ श्रमशक्ति का होना अच्छा है। किन्तु श्रमशक्ति मुख्य हो और उसके साथ जहाँ ज़रुरत हो वहाँ पैसे की भी सहायता ले लें, तो वह अधिक अच्छा है, कम तो हरगिज़ नहीं।

एक अंग्रेज अर्थशास्त्री, जो कि हिंदुस्तान में एक बड़े ऊँचे पद पर रह चूके हैं, लिखते हैं;

हिंदुस्तान को हमारी सब से बुरी देन है ये महँगी नौकरियाँ। पर जो हुआ सो हुआ। मुझे तो अब कोई स्वतंत्र वस्तु ढूँढ़कर बतानी होगी। आज जो कुछ पैसे के लिए किया जाता है वह अब आगे सेवा की दृष्टि से होना चाहिए। डॉक्टरों तथा शिक्षकों को भारी-भारी तनख़ाहें क्यों दी जाएँ? सहकारिता के सिद्धांत के अनुसार क्यों नहीं अधिकाँश काम चलाया जा सकता? आप पूँजी की चिल्लाहट क्यों मचाते हैं, जब कि सत्तर करोड़ हाथ काम करने के लिए तैयार हैं? अगर हम सहकारिता के आधार पर – जो कि समाजवाद का एक संशोधित रूप है – काम करें, तो हमें धन की कम से कम अधिक परिणाम में तो ज़रूरत नहीं होगी।

सेगांव में मुझे इसका प्रमाण मिल रहा है। यहाँ के चार सौ बालिग निवासी बड़ी आसानी से एक साल में दस हज़ार रुपये कमा सकते हैं, बशर्ते कि वे मेरे बताये हुए मार्ग पर चलें। पर वे चलते नहीं। उनमें सहयोग की कमी है। वे काम करते समय बुद्धि से काम नहीं लेते और कोई भी नई बात सीखना नहीं चाहते। छुआछूत उनके रास्ते में एक बड़ी जबरदस्त रुकावट है। अगर कोई उन्हें एक लाख रुपये भी दे-दे, तो वे उसका सदुपयोग नहीं करेंगे। लेकिन अपनी इस दशा के लिए वे लोग खुद ही ज़िम्मेदार नहीं है। ज़िम्मेदार हम मध्यम वर्ग के लोग हैं। सेगांव जैसी ही हालत दूसरे गांवों की भी समझ लीजिए। लेकिन धीरज के साथ प्रयत्न किया जाय, तो उन पर भी सेगांव की ही तरह असर – भले बहुत थोड़ा ही क्यों न हो – पड़ सकता है। पर बगैर एक पाई भी अधिक खर्च किये राज्य इस दिशा में बहुत-कुछ कर सकता है। सरकारी अधिकारियों का उपयोग लोगों को सताने के बजाय उनकी सेवा में किया जा सकता है। ग्रामीणों पर किसी तरह की जोर-ज़बरदस्ती करने की ज़रूरत नहीं है। उन्हें ऐसी बातें करने की शिक्षा दी जा सकती है, जिससे कि वे नैतिक, बोद्धिक, शारीरिक और आर्थिक सब दृष्टियों से सम्पन्न हो जाएँ। [ह. से., २४-७-'३७, प. १८२]

२३. मंत्रीपद कोई पुरस्कार नहीं है

विभिन्न प्रान्तों से मेरे पास कई ऐसे पत्र आ रहे हैं, जिन में काँग्रेस के मंत्रीपद ग्रहण करने पर खुद को या अपने किसी मित्र को मंत्रीपद न देने की शिकायत के साथ-साथ इस सम्बन्ध में मुझसे बीच में पड़ने के लिए कहा जाता है। मेरे ख़याल में ऐसा एक भी प्रान्त न होगा जहाँ से मेरे पास ऐसी शिकायतें न आई हों। बल्कि इनमें से कई पत्रों में तो यह भय भी बताया गया है कि अगर अमुक व्यक्ति के दावों पर ध्यान न दिया गया, तो साम्प्रदायिक दंगे आदि भयंकर परिणाम उपस्थित होंगे।

इस सम्बन्ध में पहली बात तो मैं यह कहूँगा कि मंत्रियों के चुनाव के किसी भी मामले में मैंने कोई दखल नहीं दिया है। पहले तो मेरी ऐसी कोई इच्छा ही नहीं है; फिर अगर इच्छा हो भी तो काँग्रेस से बिलकुल अलग हो जाने के कारण मुझे ऐसे मामलों से हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। काँग्रेस के मामलों में मैं उसी हद तक पड़ता हूँ जहाँ तक मंत्रीपद ग्रहण करने के सिलिसले में खड़े होने वाले प्रश्नों के बारेमें या पूर्ण स्वाधीनता के हमारे लक्ष्य को पहुँचने के लिए अपनाई जाने वाली नीतियों के बारेमें मेरी सलाह की ज़रूरत हो।

लेकिन मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरे पास जो लोग लम्बे-लम्बे पत्र भेज रहे हैं, उनके ख़याल में मंत्रीपद मानो पुरानी सेवाओं के बदले में मिलने वाले पुरस्कार हैं, जिनके लिए कुछ काँग्रेसी अपने दावे पेश कर सकते हैं। मैं उन्हें यह सुझाने का साहस करता हूँ कि मंत्रीपद तो सेवा के द्वार हैं; जिन लोगों को वे सुपुर्द किये जायें उन्हें प्रसन्नता और पूरी योग्यता के साथ जनता की सेवा करनी चाहिए। इसलिए इन पदों के लिए आपस में छीना-झपटी होनी ही नहीं चाहिए। विभिन्न हितों को संतुष्ट करने के लिए मंत्रीपदों का निर्माण करना निश्चय ही गलती होगी। अगर मैं किसी प्रान्त का प्रधानमंत्री होता और मेरे पास ऐसे दावे आते, तो मैं अपने निर्वाचकों से कह देता कि वे किसी और आदमी को अपना नेता चुन लें। इन पदों से हमें चिपट नहीं जाना है, बल्कि हलके हाथ से उन्हें पकड़े रहना है। ये तो कांटों के ताज हैं या होने चाहिए। ये प्रसिद्धि के लिए कभी नहीं हो सकते। पद तो यह देखने के लिए ग्रहण किये गये हैं कि अपने लक्ष्य की ओर हम जिस गति से बढ रहे हैं, उसमें इनसे कुछ ज़ल्दी होती है या नहीं। ऐसी सूरत में अगर स्वार्थी या गुमराह लोगों को प्रधानमंत्रियों पर हावी होकर प्रगति में बाधा डालने दी गई, तो वह बड़ी दुःखद बात होगी। जिन लोगों से अंत में जाकर मंत्रियों को सत्ता हासिल होती है, उनसे अगर आश्वासन माँगना ज़रूरी था, तो आपस में एक-दूसरे को समझने, असंदिग्ध रूप से वफ़ादार रहने और अनुशासन का स्वेच्छापूर्वक पालन करने का आश्वासन पाने की दूनी ज़रूरत है। काँग्रेसजनों ने अगर अपने व्यवहार में काफ़ी निःस्वार्थता, अनुशासन और लक्ष्यप्राप्ति के लिए काँग्रेस द्वारा प्रतिपादित साधनों में अपना विश्वास प्रकट नहीं किया, तो जिस विकट लड़ाई में हमारा देश लगा हुआ है उसमें हमें विजय नहीं मिल सकती।

भला हो कराची के प्रस्ताव का, जिसके कारण काँग्रेस के मातहत ग्रहण किये जाने वाले मंत्रीपदों के लिए आर्थिक आकर्षण नहीं हो सकता। यहाँ मैं यह ज़रूर कहुँगा कि ५०० रु॰ की तनख़ाह को ज्यादा से ज्यादा समझने के बजाय कम से कम समझना गलती है। ५०० रु॰ तो आख़िरी हद है। हमारे देश पर बहुत भारी भारी तनख़ाहों का जो बोझ लदा हुआ है उसके हम अगर आदी न हो गये होते, तो ५०० रु की तनख़ाह को हमने बहुत ज्यादा समझा होता। काँग्रेस में तो पिछले १७ सालों में आम तौर पर तनख़ाह की कम से कम दर ७५ रु॰ रही है। राष्ट्रीय शिक्षा, खादी और ग्रामोद्योग काँग्रेस के जो तीन बड़े-बड़े रचनात्मक अखिल भारतीय विभाग हैं, उनमें तनख़ाह की स्वीकृत दर ७५ रु॰ माहवार रही है। और इन विभागों में ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं जो - जहाँ तक योग्यता का सम्बन्ध है - इतने योग्य हैं कि किसी भी दिन मंत्रीपद की जिम्मेदारी सँभाल सकते हैं। उनमें ख्यातिप्राप्त शिक्षाशास्त्री, वकील, रसायनशास्त्री और व्यापारी हैं, जो अगर चाहें तो आसानी से ५०० रु. माहवार से ज्यादा कमा सकते हैं। भला मंत्री बनने पर ऐसा फर्क क्यों आ जाना चाहिए, जैसा कि हम आज देख रहे हैं? लेकिन अब तो शायद जो कुछ होना था वह हो चुका। मैंने जो बातें कहीं वे तो मेरी व्यक्तिगत राय को ही प्रगट करती हैं। प्रधानमंत्रियों के लिए मेरे मन में इतना ज्यादा आदर है कि उनके निर्णय और उनकी बुद्धिमत्ता पर मैं शंका नहीं कर सकता। उनके सामने जो परिस्थितियाँ उपस्थित थीं, उनमें उनके ख़याल से नि:संदेह यही सर्वोत्तम था। अपने पास आने वाले पत्रों के जवाब में पत्रलेखकों को जो बात मैं बताना चाहता हूँ, वह यह है कि इन पदों को इनकी वजह से मिलने वाली तनख़ाह और भत्ते की रकम के ख़ातिर ग्रहण नहीं किया गया है।

और फिर दल में से उन्हीं लोगों को ये पद दिए जाएँगे, जो कि इन पर आसीन होकर इनके द्वारा प्राप्त कर्तव्य का पालन करने के लिए सबसे अधिक योग्य होंगे।

और अंत में, असली कसौटी तो यह है कि उसी दल के सदस्यों को इन पदों के लिए चुना जाए, जिसकी वजह से प्रधानमंत्रियों को अपना पद प्राप्त हुआ है। कोई भी प्रधानमंत्री अपने दल के ऊपर अपनी मर्जी के किसी पुरुष या स्त्री को एक क्षण के लिए भी नहीं लाद सकता। वह तो इसीलिए प्रमुख है कि योग्यता, व्यक्तियों के ज्ञान तथा दूसरे जिन गुणों से नेतृत्व प्राप्त होता है उनके लिए उसे अपने दल का पूरा विश्वास प्राप्त है। [ह. से., ७-८-'३७, पृ. १९८]

२४. विजय की कसौटी

मुझे अपनी यह राय ज़ाहिर करने में कोई हिचिकचाट नहीं हुई कि काँग्रेस के मंत्रियों ने अपने लिए जो वेतन लेने का निश्चय किया है, वह हमारे – अर्थात् संसार के इस सबसे अधिक दरिद्र देश के – पैमाने को देखते हुए बहुत ही अधिक है, क्योंकि हमारा असली पैमाना तो वही होना चाहिए। प्रॉ. के. टी. शाह ने ज़ल्दी ज़ल्दी में एक टिप्पणी तैयार करके मेरे पास भेजी है। उसमें उन्होंने बताया है कि हिंदुस्तान की वार्षिक औसत आमदनी ४ पौंड और इंग्लैंड की ५० पौंड है। दुर्भाग्य से हमें अब भी कुछ समय अंग्रेजी विरासत का बोझ ढोना ही होगा। अपनी शक्तिभर कोशिश करने पर भी आदर्श पैमाने पर हम आज नहीं पहुँच सकते। ये तनख़ाहें और भत्ते अब बदले नहीं जा सकते। पर अब सवाल तो यह है कि कया ये मंत्री, उनके सचिव और धारासभाओं के सदस्य खूब परिश्रम करके अपने को इन ऊँची तनख़ाहों के पात्र सिद्ध कर देंगे? क्या धारासभाओं के सदस्य भी अब अपना पूरा समय राष्ट्र की सेवा में देंगे और अपनी सेवाओं तथा समय का ठीक-ठीक हिसाब पेश करेंगे? कोई यह कल्पना करने की भूल न करें कि जैसा भी कुछ हम चाहते हैं या जैसा होना चाहिए वैसा सब हो गया है।

फिर केवल यही काफ़ी नहीं होगा कि मंत्रीगण सादगी से रहें और केवल खुद ही खूब काम करते रहें। उन्हें यह भी ध्यान रखना होगा कि उनके अधीन काम करने वाले विभाग भी ठीक उसी तरह काम कर रहे हैं जैसा कि ये चाहते हैं। उदाहरण के लिए, अब जनता को न्याय ज़ल्दी और कम खर्च में मिल जाना चाहिए। आज तो वह अमीरों के विलास की वस्तु और जुए का खेल बन गया है। पुलिस का भय मिट जाना चाहिए और अब उसे जनता का मित्र बन जाना चाहिए। शिक्षा में भी ऐसी क्रांति होनी चाहिए कि वह साम्राज्यवादी लुटेरों की ज़रूरतों की नहीं, बल्कि ग़रीब ग्रामवासियों की ज़रूरतों की पूर्ति करने लगे।

अगर मंत्रियों के बस की बात होगी तो अब शीघ्र ही वे सब कैदी छोड़ दिए जाएँगे, जिन्हें राजनीतिक अपराधों के कारण – चाहे वे हिंसात्मक अपराध ही क्यों न हों – कैद कर लिया गया था। यह एक गंभीरता से सोचने की बात है। क्या इसके मानी यह है कि अब सब को हिंसा करने कि छूट मिल गई? हरगिज़ नहीं। यह काँग्रेस के अहिंसात्मक उद्देश्य के बिलकुल ख़िलाफ़ होगा। व्यक्तियों की हिंसा से जितनी अंग्रेज सरकार को – जिसे काँग्रेस उलटना चाहती है – घृणा है, उससे कहीं अधिक

घृणा खुद काँग्रेस को है। काँग्रेस इस हिंसा का प्रतिकार सत्ता अर्थात् सुसंगठित हिंसा द्वारा नहीं परन्तु अहिंसा द्वारा करेगी। वह गुमराहों को मैत्रीभाव से समझा-बुझाकर और हर प्रकार की हिंसा के ख़िलाफ़ जोरदार और विचारपूर्ण लोकमत तैयार करके उसे दूर करेगी। उसके उपाय निषेधात्मक हैं, दंडात्मक नहीं। दूसरे शब्दों में, काँग्रेस सेनाबल पर भरोसा रखने वाली पुलिस की सहायता से नहीं, बल्कि जनता की सिदच्छा पर आधार रखने वाले अपने नैतिक बल से ज्ञासन करेगी। वह आज जो ज्ञासन करने जा रही है उसका आधार ज्ञास्त्रास्त्रों से सुसज्जित किसी महान सत्ता की दी हुई शक्ति नहीं बल्कि उस जनता कि सेवा है, जिसका वह अपने हर कार्य में प्रतिनिधित्व करना चाहती है।

तमाम प्रकार के साहित्य पर लगाई गई बन्दी भी उठाई जा रही है। मेरा ख़याल है कि इस साहित्य में कुछ ऐसी भी पुस्तकें होंगी, जिनमें हिंसा, अश्लीलता तथा जातीय विद्वेष का प्रचार भी होगा। काँग्रेस राज्य के मानी हिंसा, अश्लीलता और जातीय विद्वेष फैलाने कि आज़ादी नहीं है। काँग्रेस का विश्वास है कि आपत्तिजनक साहित्य पर रोक लगाने में सुशिक्षित नागरिक उसका पूरा साथ देंगे। मंत्री भी अगर देखें कि उनके प्रान्तों में हिंसा, जातीय विद्वेष या अश्लीलता बढ़ रही हैं, तो ताजीरात हिंद या ऐसे ही तमाम उपायों का अवलम्बन लेने से पहले वे यह आशा करें और चाहें कि काँग्रेस कमेटियाँ उनकी तत्काल और पूरी सहायता करेंगी। वे काँग्रेस कार्यसमिति से भी सहायता माँगें। सचमुच काँग्रेस की विजय की कसौटी तो यही है कि वह किस हद तक पुलिस और सेना को बेकार साबित कर देती है। और अगर वह ऐसा न कर सकी, अगर ऐसे प्रसंग आ ही जायें जब पुलिस और सेना की सहायता लेना अनिवार्य हो जाय, तो कहना चाहिए कि काँग्रेस बुरी तरह असफल हुई। इस मौजूदा विधान को तोड़ने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि काँग्रेस सेना से किसी भी प्रकार की सहायता न ले और यह सिद्ध करके दिखा दे कि वह अच्छी तरह शासन कर सकती है। पुलिस से भी, जिसका मैत्रीभाव प्रकट करने वाला कोई नया नामकरण किया जा सकता है, वह कम से कम सहायता ले। [ह. से., २१-८-'३७, पृ. २१४]

१. तुलनात्मक आंकड़े

इसके साथ दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों के कुछ मुख्य अधिकारियों को दिए जाने वाले वार्षिक वेतन और भत्तों की यादी दी जा रही है। (ग्रेट ब्रिटेन: ८,००० पौंड; अमेरिका: १८,००० पौंड; फ्रान्स: २८,००० पौंड; आस्ट्रेलिया: ८,००० पौंड; केनेडा: १०,००० पौंड; भारत: १,३०,००० पौंड।) इन आंकड़ों परसे पूरी स्थिति समझ में नहीं आ सकती, क्योंकि ये वेतन देश की औसत आय पर कितने भाररूप हैं, यह बात ये आंकड़े नहीं बता सकते। आज तक के निश्चित आंकड़े मैं नहीं दे सकता, लेकिन मुझे जो याद हैं वे लगभग निश्चित है; और उन परसे मैं यह कह सकता हूँ कि भिन्न-भिन्न देशों की वार्षिक आय के नीचे दिए जा रहे आंकड़े बराबर हैं। वे इस प्रकार हैं :

ग्रेट ब्रिटन पौंड ५० आस्ट्रेलिया पौंड ७० अमेरिका " १०० केनेडा " ७५ फ्रान्स " ४० हिंदुस्तान " ४

(आजके भावके अनुसार अधिकसे अधिक)

जापान की आय भी हिंदुस्तान की अपेक्षा कहीं अधिक है।) (*हरिजन* २१-८-'३७; पृ. २१८)

-के. टी. शाह

२५. पद-ग्रहण का मेरा अर्थ

श्री शंकरराव देव लिखते हैं:

"'आदेशपत्र नहीं' शीर्षक आपकी टिप्पणी (ह. से., २८-८-'३७) के दूसरे पैरे में आपने लिखा है – 'काँग्रेस के चुनाव घोषणापत्र और प्रस्तावों की दृष्टि से भी मैं मंत्रीपद ग्रहण करने का एक खास अर्थ लेता हूँ। इसलिए पद-ग्रहण के अपने इस अर्थ को मैं जनता और मंत्रियों के सामने न रखूँ, तो वह ठीक नहीं होगा।' मैंने जहाँ तक आपके आशय को समझा है, पद-ग्रहण को आपने इसलिए आवश्यक समझा कि इससे रचनात्मक कार्यक्रम में सहायता मिलेगी तथा जनता की सेवा करने तथा काँग्रेस की शक्ति बढ़ाने का मौका मिलेगा। लेकिन मैं समझता हूँ कि इस सम्बन्ध में आप अपना आशय ज़रा विस्तार से समझा दें, तो ज्यादा अच्छा होगा।"

सही हो या गलत, लेकिन १९२० से काँग्रेस के जैसे विचार रखने वाले लाखों-करोड़ों हिंदुस्तानियों का यह दृढ़ मत रहा है कि अंग्रेजी हुकूमत हिंदुस्तान के लिए कुल मिलाकर शापरूप ही सिद्ध हुई है। और इस हुकूमत के टिके रहने का कारण अंग्रेजी फ़ौजें तो हैं ही, पर साथ ही उसके लिए धारासभाएँ, उपाधियाँ, अदालतें, शिक्षासंस्थाएँ और अर्थनीति भी उतनी ही ज़िम्मेदार हैं। काँग्रेस अंत में इस नतीजे पर पहुँची कि हमें बन्दूकों से डरना नहीं चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि जनता को उस सुसंगठित हिंसा का, अंग्रेजी बंदूकें जिसका एक नग्न प्रतीकमात्र हैं, प्रतिकार अपनी सुसंगठित अहिंसा द्वारा होना चाहिए; और धारासभाओं आदि का प्रतिकार असहयोग द्वारा होना चाहिए। इस असहयोग का एक मज़बूत और परिणामजनक विधायक पहलू भी था, जिसे लोग रचनात्मक कार्य कहते थे। जिस हद तक यह १९२० का कार्यक्रम सफल हुआ, उसी हद तक राष्ट्र भी सफल हुआ।

और यह नीति कभी बदली नहीं है। इसकी शर्ते भी काँग्रेस ने उठाई नहीं है। बिल्क मेरा तो यह मत है कि तब से जितने भी प्रस्ताव काँग्रेस ने स्वीकार किये हैं, वे सब इस मूलभूत नीति के निषेधक नहीं बिल्कि पूरक हैं, जब तक उनकी तह में वही १९२० वाली वृत्ति मौजूद है।

१९२० की नीति का मुख्य आधार राष्ट्र की सुसंगठित अहिंसा थी। अंग्रेजी शासन-प्रणाली पत्थर की तरह जड़ ही नहीं बल्कि राक्षसी भी थी। परन्तु उसके पीछे काम करने वाले स्त्री-पुरुष ऐसे नहीं थे। इसलिए हमारा अहिंसा का उद्देश्य तो यह था कि हम इस प्रणाली को चलाने वालों का हृदय बदल दें, यह नहीं कि उनका नाश कर दें। फिर वे अपना हृदय चाहे खुशी से बदलें या मजबूर होकर। अगर उन्होंने यह देखा – भले वे इसे न भी चाहते हों – कि हमारी अहिंसा के कारण उनकी बंदूकें, तोपें और वे तमाम चीज़ें, जो उन्होंने अपनी सत्ता को मज़बूत करने के लिए निर्माण की थीं, बेकार हो गई हैं, तो वे सिवा इसके कर ही कया सकते हैं कि अटल नियति के सामने अपना सिर झुकाकर या तो यहाँ से चले जाएँ या अगर रहना ही पसंद करें तो हमारी शर्तों पर रहें; यानी हमारे मित्र बनकर हमसे सहयोग करें, न कि शासक बनकर हम पर अपनी इच्छाएँ लादें।

अगर काँग्रेसवादी इस मनोवृत्ति को लेकर धारासभाओं में गये हैं और इसी मनोवृत्ति से उन्होंने पद-ग्रहण किया है, और अगर अंग्रेज शासक भी काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों को अनिश्चित काल तक बरदाश्त करते रहें, तो समझना चाहिए कि काँग्रेस इस कानून को तोड़ने और सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के

मार्ग में काफ़ी हद तक सफल हो जाएँगी। क्योंकि अगर मेरी बताई शर्तों पर काफ़ी अरसे तक मंत्रिमंडल कायम रहे, तो निश्चय ही काँग्रेस की शक्ति दिन-दिन बढ़ती ही जाएँगी और अंत में जाकर वह ऐसी दुर्दमनीय हो जाएगी कि उसके मार्ग में कोई खड़ा नहीं हो सकेगा। पर इस परिणित की सबसे पहली और अनिवार्य शर्त होगी जनता द्वारा अिहंसा का स्वेच्छापूर्वक पालन। इसके मानी हैं समस्त जातियों के बीच सम्पूर्ण मित्रता और सहयोग; अस्पृश्यता का सम्पूर्ण नाश; नशेबाजों द्वारा अफीम और शराब का स्वेच्छा से त्याग; स्त्रियों की सामाजिक गुलामी से मुक्ति; गाँवों में रहने वाले करोड़ों श्रमजीवियों का उत्तरोत्तर कष्ट-निवारण; नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा – आज-कल की तरह नाममात्र की नहीं बल्कि सच्ची, जैसी कि मैंने बताने का साहस किया है; प्रौढ़ शिक्षा द्वारा ऐसे अंधविश्वासों का क्रमश: निर्मूलन, जो निश्चित रूप से हानिकर सिद्ध हो चुके हैं; माध्यमिक शिक्षा में इस दृष्टि से आमूल परिवर्तन कि वह मुट्ठीभर मध्यम वर्ग की नहीं बल्कि करोड़ों ग्रामवासियों की ज़रूरतों की पूर्ति कर सके; न्याय-विभाग के अंदर भी ऐसा मौलिक परिवर्तन हो कि जिससे कम खर्च में शुद्ध न्याय मिल सके; और जेलों का सुधार-गृहों में परिवर्तन हो और वहाँ सजा के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण शिक्षा पाने के लिए उन आदिमियों को भेजा जाय, जिनको अब तक हम गलती से अपराधी कहते आये हैं, परन्तु दरअसल जिनके दिमाग में तात्कालिक खराबी पैदा हो जाती है।

इस लम्बी-चौड़ी कार्य योजना को देखकर कोई डरे नहीं। अगर हम निश्चय कर लें, तो मेरी बताई हुई इस योजना के हर हिस्से पर बगैर किसी रुकावट के हम आज से ही अमल शुरू कर सकते हैं।

पद-ग्रहण की सलाह देते समय तक मैंने शासन-विधान को ध्यान से पढ़ा नहीं था। लेकिन उसके बाद से अध्यापक के. टी. शाह की लिखी *प्रान्तीय स्वायत्त शासन* पुस्तक का मैं ध्यानपूर्वक अध्ययन कर रहा हूँ। यह पुस्तक नये विधान की एक जोरदार निंदा है, लेकिन कट्टर लोगों की दृष्टी से वह एक सच्चा और न्यायशुद्ध निषेध है। किन्तु काँग्रेस के इन तीन महीने के संयम ने सारे वायुमंडल को बदल दिया है। मुझे ऐसी एक भी बात इस कानून में नज़र नहीं आती, जो मंत्रियों को सुझाये गये मेरे कार्यक्रम का आरंभ करने में बाधक हो। कानून में जिन विशेष अधिकारों और संरक्षणों का उल्लेख है, उन पर अमल करने का मौका तभी आ सकता है जब कि देश में हिंसा या अल्पसंख्यकों और तथाकथित बहुसंख्यक जाति के बीच संघर्ष – जो कि हिंसा का दूसरा नाम है – पैदा हो।

इस कानून की हरएक धारा में मुझे यह दिखाई देता है कि इसके बनाने वालों के मन में हिंदुस्तान की अपना शासन खुद करने की योग्यता में घोर अविश्वास और अंग्रेजी हुकूमत को चिरस्थायी बनाने की इच्छा है। परन्तु साथ ही इसके निर्माताओं ने जनता को अंग्रेजों के पक्ष में लाने के लिए एक साहसपूर्ण प्रयोग किया है और इसमें अगर वे सफल न हुए तो अंग्रेजी सत्ता को खतम करने की जनता की इच्छा के वश होने की तैयारी भी उनकी है। इन लोगों का दिल बदलने की दृष्टि से ही काँग्रेस ने धारासभाओं में जाना स्वीकार किया है; और अगर वह अहिंसा, असहयोग और आत्मशुद्धि की सच्ची भावना से काम करती रही, तो मुझे निश्चय है कि वह ज़रूर सफल होगी। [ह. से., ४-९-'३७, पृ. २३०-३१]

२६. आलोचनाओं का जवाब

ता. १७-७-'३७ के *हरिजन* में छपे मेरे 'काँग्रेसी मंत्रि-मंडल' शीर्षक लेख की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है और उस पर आलोचनायें भी हुई हैं, जिनका उत्तर देना ज़रूरी है।

शराबबन्दी

कहा जाता है कि पूर्ण शराबबन्दी अगर संभव भी हो, तो वह एकदम कैसे की जा सकती है? एकदम से मेरा मतलब यह है कि ऐसी घोषणा तुरंत कर दी जाय कि १४ जुलाई, १९३७ से – अर्थात् काँग्रेस के पहले मंत्रि-मंडल ने जबसे सत्ता हाथ में ली उस दिन से – लेकर तीन साल के अंदर-अंदर शराब वगैरा मादक द्रव्यों की पूर्ण बन्दी हो जाएगी। मेरा तो ख़याल है कि शराबबन्दी दो साल के अंदर ही हो सकती है। किन्तु शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयों की जानकारी न होने से मैंने तीन साल बताये हैं। इस बन्दी के कारण सरकारी आय में जो कमी होगी, उसे मैं जरा भी महत्त्व नहीं देता। प्रथम श्रेणी के राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्न के विषय में काँग्रेस यदि कीमत का ख़याल करेगी, तो शराबबन्दी में सफलता की आशा रखना उसके लिए व्यर्थ होगा।

यह याद रखना चाहिए कि शराब और नशीली चीज़ों से पैदा होने वाली आय एक अत्यंत पातक – नीचे गिराने वाला – कर है। सच्चा कर तो वह है, जो करदाता को आवश्यक सेवा के रूप में दस गुना बदला चुका दे। लेकिन आबकारी की यह आय क्या करती है? वह लोगों को अपने नैतिक, मानसिक और ज्ञारीरिक पतन तथा भ्रष्टता के लिए कर देने को मजबूर करती है। वह कर ऐसे लोगों पर एक पत्थर की तरह भारी बोझ-सा गिरता है, जो उसे सहने की सबसे कम शक्ति रखते हैं। और फिर यह आय उन कारखानों और खेतों में काम करने वाले मजदूरों से होती है, जिनकी प्रतिनिधि होने का काँग्रेस खास तौर पर दावा करती है।

आय की यह हानि भी वास्तविक हानि नहीं है। क्योंकि अगर यह कर हट जाए, तो शराबी यानी करदाता की कमाने और खर्च करने की शक्ति भी बढ़ जाएँगी। इसलिए शराबबन्दी से राष्ट्र को जो भारी लाभ होगा, उसके अलावा आर्थिक लाभ भी काफ़ी होगा।

शराबबन्दी को मैंने सबसे पहला स्थान इसिलए दिया है कि इसका परिणाम भी तत्काल दिखाई देगा। काँग्रेस ने और खास करके बहनों ने इसके लिए अपना खून बहाया है। इस कार्य से राष्ट्र की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ जाएँगी जितनी मेरे ख़याल से किसी भी एक कार्य से नहीं बढ़ सकती। और फिर बहुत संभव है कि इन छह प्रान्तों का अनुकरण बाकी के पाँच प्रान्त भी करें। उन मुस्लिम मंत्रियों को भी, जो काँग्रेसवादी नहीं हैं, हिंदुस्तान से शराब के उठ जाने पर अधिक खुशी होगी, बजाय इसके कि यहाँ शराबखोरी बनी रहे |

कहते हैं कि गैर-कानूनी शराब की भट्टियों को रोकने में भारी खर्च होगा। पर इस पुकार में अगर दंभ नहीं है तो विचार की कमी ज़रूर है। हिंदुस्तान अमेरिका तो है नहीं। अमेरिका का उदाहरण प्रोत्साहन देने के बजाय शायद हमारे मार्ग में रोड़े अटकायेगा। अमेरिका में शराब पीना शरम की बात नहीं है। वहाँ तो यह एक तरह का फैशन है। बेशक, उन अल्पसंख्यक लोगों को धन्य है, जिन्होंने केवल अपने नैतिक बल से शराबबन्दी के कानून को मंजूर करवा लिया, फिर वह कितना ही अल्पजीवी क्यों न रहा हो। मैं उस प्रयोग को असफल नहीं समझता। संभव है, इस अनुभव से लाभ उठाकर अमेरिका किसी दिन और भी अधिक उत्साह से अपने यहाँ शराबबन्दी करने में सफल हो जाए। मैं इस सम्बन्ध में निराश नहीं हुआ हूँ। यह भी संभव है कि अगर हिंदुस्तान में हम शराबबन्दी करने में पहले सफल हो जाएँ, तो अमेरिका का मार्ग अधिक सरल हो जाए और वह इससे ज़ल्दी सफल हो। संसार के किसी भी देश में शराबबन्दी करना इतना आसान नहीं है जितना कि इस देश में है, क्योंकि यहाँ तो शराब पीने वालों की

संख्या बहुत थोड़ी है। शराब पीना यहाँ नीच काम समझा जाता है। और मेरा तो यह ख़याल है कि यहाँ करोड़ों लोग ऐसे हैं, जिन्होंने शराब को कभी छुआ भी न होगा।

पर गैर-कानूनी शराब बनाने के गुनाह को रोकने के लिए अन्य गुनाहों को रोकने पर जो खर्च होता है, उसकी अपेक्षा अधिक खर्च की ज़रुरत ही क्यों होनी चाहिए? गैर-कानूनी शराब बनाने पर मैं तो कड़ी सजा लगा दूँ और बेफिक्र हो जाउँ, क्योंकि चोरी की तरह यह अपराध भी कुछ अंश में तो कल्पांत तक जारी रहेगा ही। मैं इस बात की खोज़ करने के लिए कोई पुलिस-दल तैनात नहीं करूँगा कि कहीं गैर-कानूनी शराब की भट्टियाँ तो नहीं हैं। मैं तो सिर्फ यह घोषित कर दूँगा कि जो भी आदमी शराब पिया हुआ पाया जाएगा उसे सख्त सजा दी जाएगी, चाहे वह कानूनी अर्थ में सड़कों या अन्य सार्वजनिक स्थानों पर नशे में बेहोश और अस्तव्यस्त हालत में न भी पाया जाए। सजा या भारी जुर्माने के रूप में होगी या तब तक के लिए अनिश्चित कैद के रूप में होगी, जब तक अपराधी अपने आपको रिहाई का पात्र सिद्ध न कर दे।

पर यह तो निषेधात्मक उपाय हुआ। इसके सिवा स्वयंसेवकों के दल, जिनमें कि खासकर बहनें होंगी, मज़दूर-बस्तियों में काम करेंगे। जिन्हें शराब की आदत हैं उनके पास वे जाएँगी और इस लत को छोड़ देने के लिए उन्हें समझायेंगी। मज़दूरों से काम लेने वालों से कानून यह अपेक्षा रखेगा कि वे अपने यहाँ काम करने वालों के लिए ऐसी सुविधाएँ कर दें, जिससे मज़दूरों को सस्ती और स्वास्थ्यवर्धक खाने-पीने की चीज़ें मिलें तथा वाचनालय और मनोरंजन के लिए ऐसे कमरे भी मिलें, जहाँ पर मज़दूर थोड़ी देर जाकर आराम, ज्ञान और निर्दोष मनोविनोद के साधन भी पा सकें।

इस प्रकार शराबबन्दी के मानी केवल शराब की दुकानें बन्द कर देना ही नहीं है; उसके मानी हैं राष्ट्र में एक प्रकार के प्रौढ़-शिक्षण का प्रारंभ।

शराबबन्दी का प्रारंभ इसी बात से हो कि नई दुकानों के लिए परवाने जारी करना कतई बन्द कर दिया जाए और साथ ही शराब की ऐसी दुकानें भी बंद कर दी जाएँ, जिनसे जनता को कष्ट और असुविधा होने का भय हो। लेकिन मैं यह ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि दुकानदारों को बगैर भारी मुआवजा दिये यह कहाँ तक संभव है। जो भी हो, जिनके परवाने खतम हो गये हों उन्हें फिर से देना तो

ज़रूर रोक दिया जाय। हर हालत में एक भी नई दुकान न खुलने पाये। जहाँ तक आय के घाटे का सवाल है हमें उसका क्षणभर भी ख़याल किये बिना कानून के अनुसार जितना हम कर सकें उतना तुरंत कर डालना चाहिए।

परन्तु पूर्ण शराबबन्दी का अर्थ और उसकी मर्यादा क्या है? पूर्ण शराबबन्दी का अर्थ है तमाम नशीले पेयों और मादक वस्तुओं की बिक्री पर पूरी रोक। अपवाद सिर्फ यह हो सकता है कि ये चीज़ें सिर्फ उस अधिकृत डॉक्टर, वैद्य अथवा हकीम की सिफ़ारिश पर सरकारी डिपो से मिलें, जो कि इसी काम के लिए खोले जाएँगे। जो यूरोपियन शराब के बिना रह ही नहीं सकते अथवा रहना नहीं चाहते, सिर्फ उन्हींके लिए विदेशी शराबें परिमित मात्रा में मंगाई जा सकती है। पर ये शराबें अधिकृत लोगों द्वारा ही खास स्थानों पर बेची जाएँ। भोजनालयों और उपाहार-गृहों में मादक पेयों की बिक्री कतई रोक दी जाए।

किसान

परन्तु किसानों को राहत देने के बारेमें हम क्या करेंगे? वे तो आज अत्यधिक करों, कष्टदायी महसूल, गैर-कानूनी लागों, निरक्षरता, अंधविश्वास, दिरद्रता से पैदा होने वाले अनेक रोगों और कभी न अदा हो सकने वाले भारी कर्ज के भार के नीचे पिस रहे हैं। निश्चय ही आर्थिक संकट और जनसंख्या की दृष्टि से उनका सवाल सबसे पहले हाथ में लिया जाना चाहिए। पर किसानों को राहत देने का यह कार्यक्रम काफ़ी लम्बा-चौड़ा है और ऐसा है, जिसे हम आज ही एकदम पूरा का पूरा हाथ में नहीं ले सकते। हाँ, उसे लेना ज़रूर होगा। क्योंकि कोई काँग्रेसी मंत्रि-मंडल, जो ऐसे सार्वत्रिक महत्त्व के प्रश्न को हाथ में नहीं लेगा, दस दिन भी टिक नहीं सकेगा। हर काँग्रेसवादी को इसमें और कुछ नहीं तो कम से कम सैद्धांतिक दृष्टि से ही हार्दिक रस है। जब काँग्रेस का जन्म ही इस उद्देश्य से हुआ है तब तो हर काँग्रेसवादी की यह एक विरासत हो गई है। इसलिए यह भय तो हो ही नहीं सकता कि इस प्रश्न की कभी उपेक्षा की जा सकती है। परन्तु मुझे भय है कि शराबबन्दी के विषय में यही बात नहीं कही जा सकती। उसे तो अभी-अभी १९२० में काँग्रेस के कार्यक्रम में शामिल किया गया है। इसलिए मेरा तो यही ख़याल है चूँिक अब काँग्रेस के हाथों में सत्ता आ गई है, इसलिए उसका अधिकार-ग्रहण तभी सार्थक कहा जाएगा जब वह इस महानाशक बुराई के साथ साहस और कठोरता से युद्ध छेड़ देगी।

शिक्षा

त्रिक्षा का सवाल दुर्भाग्यवश शराब के साथ जोड़ दिया गया है। शराब की आय यदि बन्द हो जाय, तो शिक्षा का क्या होगा? निस्संदेह नये कर लगाने के और भी तरीके हो सकते हैं। अध्यापक शाह और खंबाता ने यह दिखाया भी है कि इस ग़रीब देश में भी कुछ नये कर लगाने की गुंजाइश है। संपत्ति पर हमारे यहाँ अभी काफ़ी कर नहीं लगा है। संसार के अन्य देशों में कुछ भी हो, यहाँ तो व्यक्तियों के पास अत्यधिक संपत्ति का होना भारत की मानवता के प्रति एक अपराध ही समझा जाना चाहिए। अत: संपत्ति की एक निश्चित मर्यादा के बाद जितना भी कर उस पर लगाया जाय उतना थोड़ा ही होगा। जहाँ तक मैं जानता हूँ, इंग्लैंड में व्यक्ति की आय एक निश्चित संख्या तक पहुँच जाने के बाद उससे आय का ७० प्रतिशत कर लिया जाता है। कोई कारण नहीं कि हिंदुस्तान में हम इससे भी काफ़ी अधिक कर क्यों न लगायें? मृत्युकर भी क्यों न लगाया जाय? करोड़पतियों के लड़के जब बालिग होने पर भी विरासत में मिली संपत्ति का उपभोग करते हैं, तो इस विरासत के कारण ही उन्हें नुकसान उठाना पड़ता है। इस तरह राष्ट्र की दुगुनी हानि होती है। जो विरासत वास्तव में राष्ट्र की होनी चाहिए वह राष्ट्र को नहीं मिलती; दूसरे, राष्ट्र को इस दृष्टि से भी हानि होती है कि संपत्ति के बोझ के नीचे दब जाने के कारण इन वारिसों के सम्पूर्ण गुणों का विकास नहीं हो पाता। इस बात से मेरे तर्क पर कोई असर नहीं पड़ता कि प्रान्तीय सरकारें नहीं लगा सकतीं।

परन्तु समग्र राष्ट्र की दृष्टि से हम शिक्षा में इतने पिछड़े हुए हैं कि अगर शिक्षा-प्रचार के लिए हम केवल धन पर ही निर्भर रहेंगे, तो एक निश्चित समय के अंदर राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने की आशा हम इस पीढ़ी में तो कर ही नहीं सकते। इसलिए मैंने यह सुझाने का साहस किया है कि शिक्षा को हमें स्वावलम्बी बना देना चाहिए। फिर भले ही लोग मुझे यह कहें कि मेरे भीतर रचनात्मक कार्य की कोई योग्यता नहीं है |

मंत्रि-मंडलों के पक्ष में उनकी योजनाओं को सफल बनाने के लिए सिविल सर्विस की सुसंगठित बुद्धिचातुरी और संगठनशक्ति भी है। सिविल सर्विस के अधिकारियों को तो वह कला याद है जिसकी सहायता से ऐसी ऐसी शासन-नीति को भी वे अमल में ले आते हैं, जो उनके लिए झक्की गवर्नर या वाइसरॉय बनाकर दे देते हैं। मंत्री एक निश्चित और विचारपूर्ण नीति निश्चित कर दें। फिर उस पर अमल

करना सिविल सर्विस का काम रहेगा। उनकी ओर से जो वचन दिये गये हैं, उनका पालन कर के सिविल सर्विस के अधिकारी उन लोगों के प्रति उॠण हों, जिनका वे नमक खा रहे हैं।

जेलें

जेलों को दंडगृहों के बजाय सुधार-गृह बना देने वाली मेरी सलाह पर बहुत टिका-टिप्पणी नहीं हुई है। केवल एक टीका मैंने देखी है। अगर जेलें बेचने योग्य चीजें बनाने लगेंगी, तो वे बाज़ार के साथ अन्यायमूलक प्रतिस्पर्धा में पड़ जाएँगी। परन्तु इस कथन में कोई सार नहीं है। इसकी कल्पना मुझे १९२२ में ही थी, जब मैं यरवडा जेल में कैद था। अपनी इस योजना पर मैंने तत्कालीन होम-मेम्बर, जेलों के तत्कालीन इन्स्पेक्टर जनरल और दो सुपरिन्टेन्डेन्टों के साथ भी, जिनके मातहत उन दिनों क्रमश: यरवडा जेल रही, बातचीत की थी। उनमें से एक ने भी उस योजना में कोई दोष नहीं बताया था। तत्कालीन होम मेम्बर को उसमें विशेष दिलचस्पी हो गई थी। उन्होंने मुझसे अपनी योजना लिखकर देने को भी कहा था। शायद उस पर वे गवर्नर की मंजूरी भी लेना चाहते थे। परन्तु गवर्नर महोदय एक ऐसे कैदी की बात सुनना कैसे गवारा कर सकते थे, जो कि जेल के ही प्रबन्ध के विषय में सूचनायें दे रहा हो? इसलिए मेरी वह योजना यों ही दाखिल-दफ्तर कर दी गई। पर उसके कर्ता को आज भी उसमें उतना ही विश्वास है जितना १९२२ में था, जब कि वह पहले-पहल बनाई गई थी। मेरी योजना नीचे दी जाती है:

जेलों के वे तमाम उद्योग बन्द कर दिये जाएँ, जिनसे आवश्यक आय न होती हो, और तमाम जेलों को हाथ-कताई और हाथ-बुनाई का काम करने वाली संस्थाओं में बदल दिया जाय। जहाँ संभव हो वहाँ कपास की खेती की भी शुरूआत की जा सकती है; और ठेठ उत्तम कपड़े बनाने तक की सब क्रियाएँ उनमें हों। मैं यह सूचित करना चाहता हूँ कि इस कार्य के आवश्यक हर प्रकार का बुद्धि-कौशल जेलों में पहले से ही मौजूद है। केवल योजक बुद्धि और इच्छा की ज़रूरत है। कैदियों को अपराधी समझने के बजाय उन्हें एक प्रकार के अपंग समझा जाय। वार्डर उनके लिए कोई भयंकर जीव के समान न हों। जेल के अधिकारियों को भी कैदियों के मित्र और शिक्षक बन जाना

चाहिए। हाँ, एक शर्त ज़रूर अनिवार्य हो कि जेलों में जो खादी बने उस सबको लागत मूल्य पर राज्य खरीद लें। राज्य की ज़रूरतों के बाद जो खादी बचे उसे कुछ अधिक कीमत पर जनता में बेच दिया जाय, जिससे उसके नफे में से एक बिक्री-भंडार का खर्च निकल जाय। इस सूचना के स्वीकार से जेलों का गाँवों के साथ निकट सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा और वे गाँवों में खादी का संदेश पहुँचाने का काम करेंगी। साथ ही, जेल से रिहा हुए कैदी राज्य के आदर्श नागरिक भी बन सकते हैं।

नमक

मुझे स्मरण दिलाया जा रहा है चूँिक नमक केन्द्रीय सरकार के मातहत का विषय है, इसलिए प्रान्तीय मंत्री इस विषय में कुछ नहीं कर सकते। अगर वे सचमुच कुछ न कर सकें, तो मुझे आश्चर्य के साथ दुःख भी होगा। प्रान्तीय भूभागों पर भी केन्द्रीय सरकार की सत्ता भले ही हो, पर प्रान्तीय सरकारों का यह भी तो कर्तव्य है कि वे अपने प्रजाजनों की अन्याय से रक्षा करें, फिर चाहे वह अन्याय केन्द्रीय सरकार द्वारा ही क्यों न हो रहा हो। इसलिए मंत्रि-मंडल अपने शासित क्षेत्र में प्रान्तीय प्रजा के साथ होने वाले अन्यायों के ख़िलाफ़ जब शिकायत करें, तो गवर्नरों का यह कर्तव्य होगा कि वे अपने मंत्रियों का समर्थन करें। मंत्रि-मंडल सावधानी से काम लें, तो मैं निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि ग़रीब ग्रामीणों के अपने लिए ज़रूरी नमक ले लेने में केन्द्रीय सरकार द्वारा कोई अनुचित रुकावट नहीं डाली जाएगी। कम से कम मुझे तो ऐसे अनुचित हस्तक्षेप का जरा भी भय नहीं है।

अंत में मैं इतना ही जोड़ना चाहता हूँ कि शराबबन्दी, शिक्षा और जेलों के विषय में मैंने जो कुछ कहा है वह इसीलिए कहा है कि काँग्रेस के मंत्रीगण और इस विषय में रस लेने वाले प्रजाजन इस पर विचार करें। जो विचार दीर्घ काल से मेरे मन में बन रहे हैं, उन्हें – भले वे आलोचकों को कितने ही विचित्र, काल्पनिक या अव्यावहारिक क्यों न लगें – जनता से छिपाये रखना उचित नहीं होगा। [ह. से., ३१-७-'३७, पृ. १९०-९३]

२७. काँग्रेसी मंत्रियों की चौहरी ज़िम्मेदारी

काँग्रेसी मंत्रियों की चौहरी ज़िम्मेदारी है। व्यक्तिगत रूप में तो मंत्री असल में अपने मतदाताओं के प्रति ज़िम्मेदार है। अगर उसे यह विश्वास हो जाय कि वह अब उनका विश्वासपात्र नहीं रहा है या जिन विचारों के लिए वह चुना गया था वे उसने बदल दिये हैं, तो वह इस्तीफा दे देगा। सामूहिक रूप से मंत्री धारासभा के सदस्यों के बहुमत के प्रति ज़िम्मेदार हैं, जो चाहें तो अविश्वास के प्रस्ताव या ऐसे ही किसी उपाय से उन्हें पदच्युत कर सकते हैं। लेकिन काँग्रेसी मंत्री अपने पद और ज़िम्मेदारी के लिए काँग्रेस की प्रान्तीय सिमित और महासिमित के प्रति भी ज़िम्मेदार है। जब तक ये सारी की सारी चारों संस्थाएँ मिलकर काम करती रहती हैं, तब तक मंत्रियों को अपने कर्तव्य पालन में आसानी रहती है।

लेकिन महासमिति की हाल की बैठक से मालूम हुआ कि उसके कुछ सदस्य काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों से और खासकर मद्रास के प्रधानमंत्री श्री राजगोपालाचार्य से बिलकुल सहमत नहीं थे। स्वस्थ, पूरी जानकारी से पूर्ण और संतुलित आलोचना सार्वजनिक जीवन का प्राण है। एक सर्वथा प्रजातंत्रवादी मंत्री भी जनता की सतत निगरानी के बिना पथ से विचलित हो सकता है। लेकिन काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों की आलोचना करने वाला महासमिति का प्रस्ताव और उससे भी अधिक उस पर हुए भाषण सीमा से बाहर थे। आलोचकों ने तथ्यों को जानने की परवाह नहीं की। श्री राजगोपालाचार्य का उत्तर उनके सामने नहीं था। वे जानते थे कि श्री राजगोपालाचार्य वहाँ आने और अपने आलोचकों को उत्तर देने के लिए बहुत उत्सुक थे, लेकिन गंभीर बीमारी के कारण वे आ नहीं सके। अपने प्रतिनिधि के प्रति आलोचकों की यह ज़िम्मेदारी थी कि वे इस प्रस्ताव पर विचार करना स्थगित कर देते। इस सम्बन्ध में पं. जवाहरलाल ने अपने विस्तृत वक्तव्य में जो कुछ कहा है, उन्हें चाहिए कि वे उसका अध्ययन करें और उसे हृदयंगम करें। मेरा विश्वास हैं कि आलोचकों ने अपनी आलोचनाओं में सत्य और अहिंसा की सीमा को छोड़ दिया था। अगर उन्होंने महासमिति को अपने पक्ष में कर लिया होता, तो कम से कम मद्रास के मंत्रियों को तो – ज़ाहिरा तौर पर धारासभा के सदस्यों के बहुमत का पूर्ण विश्वास प्राप्त होते हुए भी – इस्तीफा दे देना पड़ता। निश्चय ही यह कोई वांछनीय परिणाम न होता।

मेरी राय में इससे भी कहीं अधिक हानिकर मैसूर वाला प्रस्ताव था और दुःख की बात तो यह है कि किसी के ज़रा भी सत्य प्रकट किये बिना वह पास हो गया। मैं मैसूर की हिमायत नहीं करता। वहाँ बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिनमें मैं चाहता हूँ कि महाराज सुधार करें। लेकिन काँग्रेस की यह नीति है कि अपने विरोधी को भी उचित मौका दिया जाय। मेरी राय में मैसूर वाला प्रस्ताव (देशी राज्यों में) हस्तक्षेप न करने के प्रस्ताव के ख़िलाफ़ था। जहाँ तक मैं जानता हूँ, वह प्रस्ताव कभी रद नहीं हुआ। वस्तुस्थिति के लिहाज से महासमिति के सामने मैसूर का मामला नहीं था। वह एक पूरी रियासत के रूप में उस पर विचार करने नहीं जा रही थी। वह सिर्फ दमन-नीति पर विचार कर रही थी। प्रस्ताव में घटनाओं की सही स्थिति का उल्लेख नहीं था, भाषण गुस्से से भरे हुए थे और उनमें मामले के तथ्यों का विचार नहीं किया गया था। अगर महासमिति का ऐसा ही ख़याल था, तो अपना फैसला सुनाने से पहले उसे तथ्य मालूम करने के लिए ज्यादा नहीं तो कम से कम एक ही आदमी की एक कमेटी नियुक्त करनी चाहिए थी। अगर उसे सत्य और अहिंसा का ज़रा भी ख़याल है, तो ऐसे मामलों में वह कम से कम जो कर सकती है वह यह है कि पहले वह कार्यसमिति को उन पर अपना निर्णय घोषित करने दे और बाद में अगर ज़रूरत हो तो न्यायाधीश के रूप में उसकी जाँच करे। अपनी बात को सिद्ध करने के लिए मैंने जानबूझकर दोनों प्रस्तावों के सम्बन्ध में तफ़सील में जाने से अपन को रोका है। मैं अपनी परिमित शक्ति को बचा रहा हूँ और साथ ही इस मामले को महासमिति के, जिसने कि १९२० से ऐसा अपूर्व महत्त्व प्राप्त किया है और जो पद-ग्रहण के प्रस्ताव के बाद दुगुना हो गया है, सदस्यों की दूरदर्शिता पर छोड़ता हूँ। [ह. से,, १३-११-'३७, ए. ३१०]

२८. शराबबन्दी

शराबबन्दी और सरकारी आय

यों शराबवन्दी की तारीफ़ तो हमेशा होती ही रही है। लेकिन सन् १९२० में उसे काँग्रेस के रचनात्मक कार्य का एक मुख्य अंग बनाया गया। इसलिए देश के किसी भी हिस्से में काँग्रेस के हाथ में सत्ता आते ही वह शराब वगैरा मादक वस्तुओं की पूरी बन्दी नहीं करती तो कैसे काम चलता? काँग्रेसी शासन के छह प्रान्तों में मंत्रियों को क़रीब ग्यारह करोड़ रुपये का घाटा सहने की हिम्मत करनी पड़ी है। परन्तु कार्यसमिति ने अपने वचन की पूर्ति तथा शराब और अन्य नशीली चीज़ों के आदी बने हुए लोगों के नैतिक और भौतिक कल्याण की दृष्टि से यह खतरा भी उठाने का साहस किया है।...

मैं जानता हूँ कि बहुत से लोगों को यह संदेह है कि शराब की पूरी बन्दी कैसे होगी। उनका ख़याल है कि उनके लिए आय के लोभ को रोकना बड़ा कठिन होगा। उनकी दलील यह है कि नशेबाज लोग तो किसी भी प्रकार से शराब या मादक वस्तुएँ प्राप्त कर ही लेंगे; और जब मंत्री लोग देखेंगे कि इस बन्दी के मानी तो केवल सरकारी आय की कुरबानी ही है – इससे मादक वस्तुओं की खपत में, भले ही वह गैरकानूनी हो, कोई उल्लेखनीय कमी नहीं हुई है – तो वे फिर पाप की कमाई करने के मोह में फँस जाएँगे और वह हालत आज से भी बुरी होगी।...

अब सवाल यह है कि शराब से होने वाली आय का घाटा, जो कुछ प्रान्तों में आय का एक-तिहाई हिस्सा है, किस प्रकार पूरा किया जाए? मैंने तो बगैर किसी हिचिकचाहट के यह सुझाया है कि हम शिक्षा पर किए जाने वाले खर्च में कमी कर दें, क्योंकि अकसर इसकी पूर्ति आबकारी की आय से ही की जाती है। में अब भी यह कहता हूँ कि शिक्षा स्वावलम्बी बनाई जा सकती है।... यह ज़रूर है कि यदि हम मान लें कि शिक्षा स्वावलम्बी हो सकती है, तो भी वह एक दिन में नहीं हो जाएगी। मौजूदा भार और ज़िम्मेदारियों को तो निबाहना ही होगा। इसलिए आय के नये साधन ढूँढ़ने होंगे। मृत्यु, तम्बाकू - जिसमें बीड़ी भी शामिल है – आदि पर कर लगाने की बात कुछ लोगों ने सुझाई है। अगर यह तत्काल असंभव हो, या ऐसा समझा जाय, तो फिलहाल खर्च की पूर्ति के लिए थोड़ी मीयाद वाले कर्ज निकाले जा सकते हैं। पर अगर यह भी संभव न हो, तो केन्द्रीय सरकार सें प्रार्थना की जा सकती है कि वह अपने फ़ौजी खर्च में कमी करके उस बचत में से हर प्रान्त को उसके अनुपात में सहायता दे। और केन्द्रीय सरकार इस प्रार्थना को कभी अस्वीकार नहीं कर सकेगी, खास तौर पर जब प्रान्तीय सरकारं यह सिद्ध कर देंगी कि कम से कम उनकी आंतरिक सुरक्षा और शान्ति के लिए उन्हें फ़ौज की ज़रूरत नहीं है। [ह. से., २८-८-'३७, पृ. २२२-२३]

शराबबन्दी और बजट

हम देखते हैं कि मंत्री लोग शराबबन्दी का कार्यक्रम पूरे बिनयेपन की भावना से बना रहे हैं। उससे होने वाले घाटे का उन्हें ध्यान रहता है। मुझे आश्चर्य होता है कि अगर सभी शराबी और अफीमची एकाएक शराब और अफीम का परित्याग कर दें, तो मंत्री क्या करेंगे? शायद यह उत्तर दिया जाय कि उस हालत में कुछ-न-कुछ प्रबन्ध तो वे करेंगे ही। लेकिन स्वेच्छापूर्वक वे ऐसा क्यों नहीं कर डालते? अच्छाई तो निस्संदेह किसी काम को स्वेच्छापूर्वक करने में ही है, मजबूर होकर करने में नहीं। यह याद रखना चाहिए कि भूकम्प के कारण प्रान्त की सालाना आमदनी से अधिक नुकसान हो जाने पर भी बिहार-सरकार का काम ठप नहीं हो गया था। और जब अकालों तथा बाढ़ों से लोगों की तबाही और बरबादी होने के कारण सरकारी आमदनी में कमी पड़ती है, तब हिंदुस्तान भर की सरकारें क्या करती हैं? मैं तो यह मानता हूँ कि काँग्रेसी सरकारें आय के ख़ातिर शराबबन्दी के काम में देरी करके अपनी प्रतिज्ञा का शब्दों में चाहे भंग न कर रही हों, परन्तु उसकी भावना का ज़रूर भंग कर रही हैं।

नये कर लगाकर वे आय प्राप्त कर सकती हैं और इसके लिए उन्हें ईमानदारी के साथ कोशिश भी करनी चाहिए। शराबखोरी शहरों में बहुत ज्यादा है, अतः इन क्षेत्रों में वे नये कर लगा सकती हैं। शराबबन्दी से उन लोगों को प्रत्यक्ष मदद मिलती हैं, जिनके कारखाने होते हैं और उनमें मज़दूर काम करते हैं। ऐसे लोग यानी कारखानों के मालिक निश्चय ही शराबबन्दी से होने वाली आमदनी की कमी पूरी कर सकते हैं। अहमदाबाद में कुछ ही महीने शराबबन्दी का जो काम हुआ है, उससे मालिक-मज़दूर दोनों को आर्थिक लाभ हुआ है। इसलिए कोई वजह नहीं कि इस बहुमूल्य सेवा के लिए मालिकों से पैसा क्यों न वसूल किया जाए? इसी तरह आमदनी के और भी अनेक साधन आसानी से ढूँढ़े जा सकते हैं।

मैंने तो यह सुझाने में भी कोई पसोपेश नहीं किया कि जहाँ अतिरिक्त आय की कोई अमली सूरत न हो, वहाँ भारत सरकार से सहायता या कम से कम बिना ब्याज कर्ज देने की माँग की जाय। [ह. से., २४-१२-'३८, पृ. ३६०]

शराबबन्दी और अर्थमंत्री

बम्बई में शराबबन्दी होने से सरकार की आय बहुत घट जाएँगी। लेकिन अर्थमंत्री को तो अपना आय-व्यय संतुलित करना ही होगा। इसके लिए उन्हें आय के दूसरे ज़िरए खोज़ने पड़ेंगे और नये कर लगाने पड़ेंगे। अतः जिन्हें यह बोझ बरदाश्त करना पड़े, उन्हें इसकी शिकायत नहीं करनी चाहिए। यह सब कोई जानते हैं कि कर कितने ही उचित क्यों न हों, किन्तु कोई उन्हें पसंद नहीं करता। पर मुझे मालूम हुआ है कि अर्थमंत्री ने इस सम्बन्ध की सभी उचित आपत्तियों का निराकरण कर दिया है। अत: जिन लोगों पर यह बोझ पड़े, वे इस महान प्रयोग में भागीदार होने का विशेष अधिकार प्राप्त करने का गर्व अनुभव क्यों न करें? अगर सभी नागरिकों के आनंद के बीच शराबबन्दी की शुरूआत हो, तो निश्चय ही वह दिन बम्बई के लिए बड़े गौरव का होगा। याद रहे कि यह शराबबन्दी दूसरों की लादी हुई नहीं है। इसका आरंभ तो वे सरकारें कर रही हैं, जो जनता के प्रति ज़िम्मेदार हैं। १९२० से ही हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रम का यह एक अंग रहा है। इसलिए २० वर्ष पहले राष्ट्र ने निश्चित रूप से जो इच्छा प्रकट की थी, उसकी ही अवसर मिलने पर यह पूर्ति हो रही है। [ह. से., १-४-'३९, पृ. ४९]

मंत्री और शराबबन्दी

मंत्रियों का कर्तव्य स्पष्ट है। उन्हें अपने कार्यक्रम पर अबाधित रूप से अमल करते चले जाना चाहिए, बशर्ते कि उनकी इसमें श्रद्धा हो। मद्य-निषेध काँग्रेस के कार्यक्रम का एक सबसे बड़ा नैतिक सुधारा है। पहले की सरकारों ने भी इसका मौखिक समर्थन किया था, परन्तु गैरज़िम्मेदार होने के कारण न तो उममें ऐसा करने का साहस था और न उनके भीतर उस पर अमल करने की प्रेरणा ही थी। वे उस आय को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थीं, जिसे वे बिना किसी प्रयास के प्राप्त कर सकती थीं। इसके कलंकित स्रोत की जाँच करने के लिए वे ठहर नहीं सकती थीं।

काँग्रेसी सरकारों के पीछे लोकमत है। कार्यसमिति ने बहुत सोचिवचार के बाद शराबबन्दी के सम्बन्ध में अपना आदेश निकाला है। इस पर अमल करने का तरीका स्वाभाविक तौर पर मंत्रि-मंडलों पर छोड़ दिया गया है। बम्बई के मंत्री साहसपूर्वक पूरी सफलता की आशा से अपने कार्यक्रम को अमल में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी स्थिति बहुत किठन है। किसी न किसी दिन उन्हें बम्बई का प्रश्न हाथ में लेना ही था। तब भी मंत्रियों को उन्हीं निहित स्वार्थों की तरफ से, जिन्हें शराबबन्दी की नीति से सीधी हानि पहुँचने का डर था, होने वाले विरोध का सामना करना पड़ता, जैसा कि आज हो रहा है। कोई भी काँग्रेसजन मंत्रियों को परेशान नहीं कर सकता। [ह. से., १५-७-'३९, पृ. १७५-७६]

२९. खादी

मंत्री और खादी

ऐसा प्रतीत होता है कि खादी का मानो हम मज़ाक कर रहे हैं। १५ अगस्त को किसीने चरखे को याद नहीं किया। मेरा बस चले तो मैं मंत्रियों से शपथविधि कराने के पहले उनसे उसी हॉल में आधा घंटा यज्ञार्थ कताई करवाऊँ और प्रार्थना करवाऊँ। इसके बाद ही शपथविधि पूरी होगी। [बिहार पछी (दिल्ली) (गुजराती), (१९६१), पृ. ४४०]

मैं यह जानता हूँ कि खादी में ऐसी जीवित श्रद्धा काँग्रेसजनों में से बहुत कम को है। मंत्रीगण काँग्रेसी हैं। वे आसपास की परिस्थिति से प्रेरणा लेते हैं। अगर उन्हें खादी में सजीव श्रद्धा हो, तो वे उसे लोकप्रिय बनाने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं।

मैं बताऊँ कि काँग्रेसी मंत्री और वैसे सभी मंत्री इस सम्बन्ध में क्या कर सकते हैं और उन्हें क्या करना चाहिए।

एक मंत्री ऐसा हो सकता है, जिसका एकमात्र काम खादी और ग्रामोद्योगों की देखभाल करना हो। अत: इस काम के लिए एक अलग विभाग होना चाहिए। दूसरे विभाग उसे सहयोग देंगे। उदाहरण के लिए, कृषि-विभाग कपास की पैदावार के विकेन्द्रीकरण की एक योजना बनायेगा, गाँवों के उद्योग के लिए कपास की पैदावार के अनुकूल भूमि की पैमाइश करेगा और पता लगायेगा कि उसके प्रान्त के लिए कितनी कपास की ज़रूरत होगी। वह वितरण के लिए अनुकूल केन्द्रों में कपास जमा करके भी रखेगा। भंडार-विभाग प्रान्त में उपलब्ध खादी खरीदेगा और अपनी ज़रूरत के कपड़े के लिए माँग पेश करेगा। उद्योग-विज्ञान से सम्बन्धित विभाग अपनी बुद्धि का उपयोग करके अधिक अच्छे चरखे और हाथ के उत्पादन के अन्य औजार निकालेगा। ये सारे विभाग चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघ के साथ संपर्क रखेंगे और उन्हें उक्त काम का निष्णात मान कर उनका उपयोग करेंगे।

माल-मंत्री मिल के उत्पादन से खादी की रक्षा करने के साधन खोज़ निकालेगा। [ह., १०-१२-'३८, पृ. ३६८-६९]

एक मंत्री का स्वप्न

अगर आप प्रान्तीय सरकारों और लोगों को इस आशय का संदेशा या सूचना दे सकें कि तमाम स्कूलों में लड़कों और लड़कियों के लिए कताई और बुनाई लाज़िमी कर देनी चाहिए, तो मेरा विश्वास है कि थोड़े ही समय में स्कूलों के बच्चे खुद अपना बनाया हुआ कपड़ा पहनने लग जाएँगे। यह पहला कदम होगा। आपके आदर्शों के विषय में मेरी आज भी वैसी ही श्रद्धा है और मैं वह दिन देखने की आशा करता हूँ, जब हरएक घर अपनी ज़रूरत का कपड़ा खुद बना लेगा और हरएक गाँव भी अपनी ग्रामोद्योग तथा शिक्षा की योजनाओं के अनुसार केवल कपड़े में ही नहीं, बल्कि हरएक ज़रूरी चीज़ के सम्बन्ध में स्वावलम्बी बन जाएगा। आपकी तरह मैं भी यह मानता हूँ कि इस देश में सच्चा स्वराज्य तभी स्थापित हो सकता है, जब कि प्रान्तीय सरकार अथवा भारत सरकार का बजट – जिसके पासे मिलाने के लिए चालांकियाँ और करामातें करनी पड़ती हैं – ग्रामवासी जनता के बजट से मेल खा जाएगा।

उपर्युक्त पत्र एक काँग्रेसी मंत्री ने लिखा है। मेरे पास यदि निरंकुश सत्ता हो, तो मैं कम से कम प्राइमरी स्कूलों में तो कर्ताई को अवश्य लाज़िमी कर दूँ। जिस मंत्री में श्रद्धा हो उसे ऐसा करना चाहिए। हमारे स्कूलों में कितनी ही बेकार चीज़ों को लाज़िमी बना दिया जाता है, तब इस अति उपयोगी कला को लाज़िमी क्यों न बना दिया जाए? लेकिन लोकतंत्र में हम किसी चीज़ को, यदि वह विस्तृत रूप में लोकप्रिय न हो, लाज़िमी नहीं बना सकते। इस तरह लोकतंत्र में अनिवार्यता नाम की ही होती है। वह आलस्य को तो उड़ा देती है, पर लोगों की इच्छा पर जोर-ज़बरदस्ती नहीं करती। इस प्रकार की अनिवार्यता शिक्षण की एक क्रिया है। मैं इससे एक हलका रास्ता सुझाता हूँ। सबसे अच्छे कातने वाले लड़के या लड़की को इनाम दिलाना चाहिए। इस प्रतिस्पर्धा से सब नहीं तो अधिकांश इसमें भाग लेने के लिए प्रेरित होंगे। किसी भी योजना में यदि शिक्षकों को खुद श्रद्धा न हो, तो वह सफल होने की नहीं। प्रान्तीय सरकारें अगर बुनियादी तालीम को स्वीकार कर लें, तो कताई आदि शिक्षाक्रम के केवल अंग ही नहीं, बल्कि शिक्षा के वाहन बन जाएँगे। बुनियादी तालीम अगर जड़ पकड़ ले, तो हमारी इस पीड़ित भूमि में खादी अवश्य सार्वत्रिक और अपेक्षाकृत सस्ती हो सकती है। [ह. से., २१-१०-'३९, पृ. २८४-८५]

मंत्रियों का कर्तव्य

यह प्रश्न उचित ही है कि अब जब सत्ता काँग्रेसी मंत्रियों के हाथ में आ गई है, तो वे खादी और अन्य देहाती उद्योगों के लिए क्या करेंगे। मैं प्रश्न को व्यापक बना कर भारत की सारी प्रान्तीय सरकारों पर लागू करना चाहूँगा। दिरद्रता सभी प्रान्तों में एक सी है और जनसाधारण की दृष्टि से कष्ट-निवारण के उपाय भी एक से है। चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघ दोनों का यही अनुभव है। यह सुझाव दिया गया है कि इस काम के लिए एक अलग मंत्री होना चाहिए, क्योंकि इसका भलीभाँति संगठन करने के लिए एक मंत्री का उसमें सारा समय लग जाएगा। मुझे यह सुझाव देते हुए डर लगता है, क्योंकि हमने अंग्रेजी पैमाने पर खर्च करना अभी तक नहीं छोड़ा है । मंत्री अलग से नियुक्त किया जाय या न किया जाय, पर एक अलग विभाग अवश्य ही इस काम के लिए ज़रूरी है। भोजन और वस्त्र की कमी के इस काल में यह विभाग बड़ी से बड़ी सहायता कर सकता है। चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघ के मारफत मंत्रियों को विशेषज्ञ तो उपलब्ध हो ही जायेंगे। इस समय कम से कम पूँजी और समय लगा कर भारत को खादी का कपड़ा पहना देना संभव है। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को अपने ग्रामवासियों से यह कहना होगा कि उन्हें अपने उपयोग के लिए आपनी खादी आप तैयार करनी है । इसमें स्थानीय उत्पत्ति और वितरण की बात अपने आप आ जाती है। और कम से कम कुछ माल निःसंदेह शहरों के लिए बच रहेगा, जिससे स्थानीय मिलों पर भी दबाव घट जाएँगा। फिर तो हमारी मिलें संसार के दूसरे भागों में कपड़े की कमी पूरी करने में भाग ले सकेंगी।

यह परिणाम कैसे लाया जा सकता है?

सरकार को ग्रामवासियों को सूचना देनी चाहिए कि उनसे एक निश्चित तारीख के भीतर अपने गाँवों की ज़रूरत का खद्दर तैयार कर लेने की आशा रखी जाएँगी। उस तारीख के बाद उन्हें कपड़ा मुहैया नहीं किया जाएगा। सरकार अपनी तरफ से ग्रामवासयों को जहाँ जरूरत होगी लागत कीमत पर कपास या कपास का बीज देगी और माल तैयार करने के औजार भी लागत कीमत पर देगी, जो पाँच या अधिक वर्षों में आसान किस्तों में वसूल की जा सकती हैं। जहाँ आवश्यकता होगी, सरकार उन्हें शिक्षक देगी और खादी का बचा हुआ माल खरीद लेने का वचन देगी। शर्त यह होगी कि सम्बन्धित ग्रामवासी अपनी कपड़े की ज़रूरत अपने ही तैयार किये हुए माल से पूरी करें। इससे कपड़े की कमी शोरगुल मचाये बिना और बहुत थोड़े व्यवस्था-खर्च में दूर हो जाएँगी।

गाँवों की जाँच-पड़ताल की जाएगी और ऐसी चीज़ों की एक सूची तैयार की जाएगी, जो किसी मदद के बिना या बहुत थोड़ी मदद से गाँवों में तैयार हो सकती है और जिनकी ज़रूरत गाँवों में बरतने के लिए या बाहर बेचने के लिए हो। जैसे, घानी का तेल, घानी की खली, घानी से निकला हुआ जलाने का तेल, हाथ का कुटा हुआ चावल, ताड़ का गुड़, शहद, खिलोने, मिठाइयाँ, चटाइयाँ, हाथ से बना हुआ काग़ज़, गाँव का साबुन आदि। अगर इस तरह काफ़ी ध्यान दिया जाए, तो उन गाँवों में – जिनमें से ज्यादातर उजड़ चुके हैं या उजड़ रहे हैं – जीवन की चहल-पहल पैदा हो जाय और उनमें अपनी और हिंदुस्तान के शहरों और कस्बों की बहुत ज्यादा ज़रूरतों को पूरा करने की जो ज्यादा से ज्यादा शक्ति है वह दिखाई पड़ने लगे।

फिर हिंदुस्तान में अनिगनत पशु-धन है, जिसकी तरफ हमने ध्यान न देकर बड़ा अपराध किया है। गोसेवा-संघ को अभी तक ठीक अनुभव नहीं है, फिर भी वह इस कार्य में कीमती मदद दे सकता है।

बुनियादी शिक्षा के बिना गाँव वाले विद्या से खाली ही रहे हैं। यह ज़रूरी बात हिंदुस्तानी तालीमी संघ पूरी कर सकता है। यह प्रयोग पहले ही काँग्रेसी सरकारों ने आरंभ किया था, पर काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों के इस्तीफा देने से इस काम में गड़बड़ी हो गई थी। अब वह तार फिर आसानी से जोड़ा जा सकता है। [ह. से., २८-४-'४६, पृ. १०४]

अगर मैं मंत्री होता

ता. २९ से ३१ जुलाई (१९४६) तक पूना में ग्रामोद्योगों और नई तालीम से सम्बन्ध रखने वाले मंत्रियों के साथ हुई बातचीत के कारण बहुत सा पत्र-व्यवहार और निजी वाद-विवाद चल पड़ा है। यह बहुत कुछ तो एक खादी को लेकर खड़ा हुआ है। इसलिए मैं इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रान्तीय सरकारों और खादी के प्रश्न में दिलचस्पी लेने वाले दूसरे लोगों के मार्गदर्शन के लिए नीचे देता हूँ।

२८ अप्रैल, १९४६ के *हरिजन* में मैंने 'मंत्रियों का कर्तव्य' नामक एक लेख लिखा था। उसमें मैंने जो विचार प्रगट किये थे, उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। एक बात से कुछ गलतफहमी पैदा हुई है। कुछ भाइयों को उसमें ज़बरदस्ती दिखाई दी है। मुझे इस अस्पष्टता के लिए खेद है। उसमें मैंने इस प्रश्न का उत्तर दिया था कि आम लोगों की प्रतिनिधि-सरकारें यदि चाहें तो क्या-क्या कर सकती हैं। मैंने मान लिया था – आशा है मेरी वह मान्यता क्षम्य थी – कि इन सरकारों की नोटिसों को भी कोई जोर-

ज़बरदस्ती नहीं मानेगा। कारण, किसी सच्ची प्रतिनिधि-सरकार के प्रत्येक कार्य में जिन निर्वाचकों की वह प्रतिनिधि हैं उनकी अनुमित मान ली जाएगी। निर्वाचकों का अर्थ होगा सारी जनता, चाहे उसका नाम निर्वाचकसूची में हो या न हो। इस पृष्ठभूमि को ख़याल में रखकर मैंने लिखा था कि सरकार ग्रामवासियों को ऐसी सूचना दे-दे कि एक निश्चित तारीख के बाद ग्रामवासियों को मिल का कपड़ा नहीं दिया जाएगा, ताकि वे अपनी ही तैयार की हुई खादी पहन सकें।

मेरे पिछले लेख का (२८-४-'४६) कुछ भी अर्थ हो, मैं इतना कह देना चाहता हूँ कि सम्बन्धित लोगों के स्वेच्छापूर्ण सहयोग के बिना खादीसम्बन्धी कोई भी अपनाई हुई योजना व्यर्थ सिद्ध होगी और वह उस खादी को मार डालेगी जिसे हम स्वराज्य प्राप्त करने का साधन बनाना चाहते हैं। फिर तो खादी के बारेमें लोगों का यह ताना सही होगा कि खादी हमें मध्यकालीन गुलामी और अज्ञान की ओर ले जाती है। परन्तु मेरा विचार इसके विपरीत रहा है। जहाँ जबरन पैदा की जाने वाली या पहनी जाने वाली खादी हमारी गुलामी की निज्ञानी थी, वहाँ सोच-समझकर और स्वेच्छा से तैयार की जाने वाली खादी, जो मुख्यतः अपने ही उपयोग के लिए हो, हमारी आज़ादी की निज्ञानी है। स्वतंत्रता अगर सर्वागीण स्वावलम्बन का विकास न करे, तो उसका कोई अर्थ नहीं है। अगर खादी स्वतंत्र मनुष्य के अपने अधिकार और कर्तव्य की निज्ञानी न हो, तो कम से कम मुझे उसमें कोई दिलचस्पी न रहेगी।

मित्रभाव से टीका करने वाले एक भाई पूछते हैं कि इस योजना के अनुसार तैयार की गई खादी क्या बेची भी जा सकती है? मेरा उत्तर यह है कि यदि बिक्री उसका गौण उद्देश्य हो, तो ऐसा किया जा सकता है; लेकिन अगर बिक्री ही उसका एकमात्र या मुख्य लक्ष्य हो, तो वह हरगिज़ नहीं बेची जा सकती। हमने बिक्री के लिए खादी उत्पन्न करके अपना काम शुरू किया, उसका कारण यह था कि उसके बारेमें तब हम दूर तक सोच नहीं पाये थे और यह भी था कि उस समय हमें उसकी ज़रूरत थी। अनुभव एक महान शिक्षक है। उसने हमें अनेक बातें सिखाई हैं। उनमें से एक बड़ी बात यह है कि खादी का मुख्य उपयोग स्वयं अपने लिए उसका व्यवहार करना है। परन्तु यह भी उसका अंतिम उपयोग नहीं है। खैर, मुझे कल्पना के मनोहर क्षेत्र को छोड़कर शीर्षक में पूछे गये प्रश्न का निश्चित उत्तर देना चाहिए।

सम्पूर्ण शासन-कार्य के केन्द्र के रूप में गाँवों के पुनरुद्धार की ज़िम्मेदारी सँभालने वाले मंत्री की हैसियत से मेरा पहला काम यह होगा कि स्थायी राज्य-कर्मचारियों में से इस काम के लिए मैं ईमानदार और निष्ठावान आदमी ढूँढ़ निकालूँ। मैं उनमें से उत्तम लोगों का चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघ से, जो काँग्रेस के बनाये हुए हैं, संपर्क कराकर गाँवों के हाथउद्योगों को अधिक से अधिक प्रोत्साहन देने के लिए एक योजना प्रस्तुत करूँगा। मैं यह शर्त रखूँगा कि ग्रामवासियों पर कोई ज़बरदस्ती नहीं की जाएगी। उन्हें दूसरों की बेगार करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा। और उन्हें अपनी मदद आप करना तथा भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन के लिए अपनी ही मेहनत और कुशलता पर भरोसा करना सिखाया जाएगा। इस प्रकार की योजना को व्यापक बनाना होगा। इसलिए मैं अपने पहले आदमी को यह आदेश दूँगा कि वह हिंदुस्तानी तालीमी संघ का काम देखे, उसके अधिकारियों से मिले और समझे कि इस विषय में उनका क्या कहना है।

मैं मान लेता हूँ कि इस प्रकार तैयार की हुई योजना में एक धारा यह होगी: ग्रामवासी स्वयं यह घोषणा करें कि उन्हें एक निश्चित तारीख से एक वर्ष के बाद मिल के कपड़े की ज़रूरत नहीं होगी, और यह कि अपना कपड़ा तैयार करने के लिए उन्हें रुई, ऊन और आवश्यक औजार तथा शिक्षा की ज़रूरत है। ये चीज़ें वे दान के रूप में नहीं लेंगे, बल्कि आसान किस्तों में उनकी कीमत चुकाने की शर्त पर लेंगे। इस योजना में यह बात भी होगी कि वह किसी पूरे प्रान्त पर एकदम लागू नहीं होगी, परन्तु शुरू में उसके एक हिस्से पर ही लागू होगी। योजना में यह भी कहा जाएगा कि चरखा-संघ इस योजना को अमल में लाने के लिए पथ-प्रदर्शन करेगा और आवश्यक सहायता देगा।

इस योजना के लाभप्रद होने का विश्वास हो जाने पर मैं कानून विभाग की सलाह से उसे कानूनी रूप दूँगा और एक विज्ञप्ति निकालूँगा, जिसमें योजना की बुनियादी बातों का पूरा वर्णन होगा। ग्रामवासी, मिलमालिक और अन्य लोग इसमें शरीक रहेंगे। विज्ञप्ति में साफ बताया जाएगा कि यह जनता का काम है, भले ही उस पर सरकार की मुहर लगी हो। सरकारी पैसा ग़रीब से ग़रीब ग्रामवासियों के कल्याण के लिए खर्च किया जाएगा, ताकि सम्बन्धित लोगों को उसका अधिक से अधिक लाभ पहुँचे। इसलिए वह शायद पूँजी का सबसे लाभप्रद नियोजन होगा, जिसमें विशेषज्ञों की सहायता स्वेच्छापूर्ण होगी और व्यवस्था-खर्च कम से कम होगा। विज्ञप्ति में देश पर पड़ने वाले सारे खर्च और लोगों को मिलने वाले लाभ का पूरा ब्योरा दिया जाएगा।

मंत्री के नाते मेरे लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि चरखा-संघ में वह दृढ़ विश्वास और क्षमता है या नहीं, जिससे संघ खादी की एक योजना तैयार करके उसे सफलता तक पहुँचा देने का भार उठा सके । अगर उसमें यह दृढ़ विश्वास और क्षमता है, तो मैं पूरे विश्वास के साथ अपनी छोटी नैया को समद्र में उतार दूँगा। [ह., १-९-'४६, पृ. २८८]

सरकारी मालिकी बनाम सरकारी कंट्रोल

८, ९ और १० अक्तूबर (१९४६) को हरिजन कॉलोनी, किंग्सवे, नई दिल्ली में अ. भा. चरखा-संघ की वार्षिक बैठक हुई। उसमें क़रीब ८० सदस्य हाजिर थे। चर्चाओं के फलस्वरूप एक बात यह सामने आई कि आज तक जिन बातों की चर्चा केवल सैद्धांतिक दृष्टि से की जाती थी, वे अब हमारी सरकारों के आने से व्यावहारिक रूप ले रही हैं। चर्चा का एक विषय यह था कि मिल का कपड़ा खादी के साथ स्पर्धा न करे। इसलिए कुछ चुने हुए स्थानों पर मिल का कपड़ा न जाने दिया जाए और वहाँ कपड़े कि नई मिलें खड़ी न की जाएँ, क्योंकि मिल की स्पर्धा में खादी जिन्दा नहीं रह सकती। गांधीजी ने सुझाया कि जहाँ लोग वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रयोग करने को तैयार हो वहाँ सरकार मिल का कपड़ा न जाने दे। इसी तरह आगर प्रान्तीय सरकारें नई मिलें खड़ी करने में करोड़ों रुपये खर्च करेंगी, तो ग्रामवासी खादी के बारेमें उनकी बात नहीं सुनेंगे। वे समझ जाएँगे कि असली चीज़ तो मिल ही है। इसलिए यदि सरकारें सचमुच ही खादी को बढ़ाना चाहती हैं, तो उन्हें अपने प्रान्त में नई मिलें न खड़ी करने का फैसला करना ही होगा।

एक सदस्य ने यह भी सुझाव रखा कि कपड़े की नई मिलों पर सरकार का अधिकार हो और यथासंभव ज़ल्दी से ज़ल्दी सरकार पुरानी मिलों पर भी अधिकार कर ले, तािक उनका मुनाफा पूँजीपितयों की जेब में जाने के बजाय देश की जेब में जाये और मिलों की नीित पर भी जनता का नियंत्रण रहे। इस पर गांधीजी ने समझाया कि जब एक ओर हम सरकार से यह कहते हैं कि खादी का प्रचार करना हो तो कपड़े की नई मिलें खड़ी ही न करनी चािहए, तब दूसरी ओर उससे नई और पुरानी मीलों का राष्ट्रीयकरण करने की बात कहना ठीक नहीं। मद्रास के प्रधानमंत्री श्री टी. प्रकाशम् ने यह

घोषणा भी कर दी है कि उनके प्रान्त में कपडे की कोई नई मिलें खडी नहीं की जाएगी। अब रही बात पुरानी मिलों पर सरकारी अधिकार की। तो मुझे तो मिलों पर अधिकार करने के बजाय सरकार की कड़ी देखरेख में मिलों का चलना ही अधिक अच्छा लगता हैं। आज मिलों पर अधिकार करने के लिए सरकारों के पास पर्याप्त साधन नहीं है। हम तो सब काम शान्ति से करना चाहते हैं। अगर हम मिल-मालिकों को अपने ट्रस्टी बना लें, तो वे और उनके कर्मचारी अपने आप समाज के नियंत्रण में आ जाएँगे। मिल-मालिक मिल चलाएँगे, लेकिन मुनाफे का उतना ही हिस्सा उनकी जेब में जाएगा जो उनकी मेहनत के बदले में लोग उन्हें देना उचित समझेंगे। सच्चे मालिक मिलों में मज़दूर बनेंगे। मैंने सुना है कि श्री टाटा की एक मिल में मज़दूरों को मुनाफे में साझा मिला है। श्री जे. आर. डी. टाटा ने मुनाफा बाँटने के मौके पर जो भाषण दिया, वह पढ़ने लायक है। इससे अधिक मिल पर और क्या अधिकार किया जा सकता है? इससे आगे जाने की बात मेरे दिमाग में नहीं आती। अनेक मिल-मालिकों ने मुझसे कहा है कि अगर हम ऐसी योजना बनायें, तो वे हमारे साथ सहयोग करेंगे तथा अपनी मिलों के अधिक विस्तार को रोक देंगे। मिलों पर सरकार, चरखा-संघ और मिल-मालिकों का संयुक्त नियंत्रण होने की बात मेरे गले नहीं उतरती । "हमारा काम चरखा चलाना है, मिल चलाना नहीं। जो चीज़ हमारे कार्यक्षेत्र की नहीं है, उसकी चर्चा में हम इतना समय क्यों दें? अगर आज सारी मिलें जल कर राख हो जाएँ, तो मुझे ज़रा भी दुःख नहीं होगा। उसके बाद तो खादी को बढ़ना ही है। लेकिन अगर मिलें बढ़ेंगी, तो खादी को मरना ही होगा। ग़रीबों की अन्नपूर्णा के नाते थोड़ी-बहुत खादी तब भी चल सकती है। पर उसके लिए चरखा-संघ जैसी बडी संस्था की ज़रुरत नहीं रहेगी।" मेरे लिए तो इतना ही काफ़ी है कि प्रान्तों की सरकारें मिलों के बारेमें अपनी नीति निश्चित करते समय हमारी सलाह ले लिया करें। [ह. से., २०-१०-'४६, पृ. ३६२]

हाथकता बनाम मिल का कपड़ा

मद्रास की चैम्बर ऑफ कॉमर्स जैसी पूँजीपितयों को लाभ पहुँचाने वाली बड़ी संस्थाएँ और वहाँ के कुछ काँग्रेसी भी प्रान्त के प्रधानमंत्री के ख़िलाफ़ हो गये हैं। मद्रास के अख़बारों की कई कतरनें मेरे पास भेजी गई हैं। मुझे यह कहते दुःख होता है कि यह टीका मुझे स्वार्थ और अज्ञान से भरी मालूम होती है। इस झगड़े में मेरा नाम भी घसीटा गया है। चूँिक मैं प्रकाशम्जी की योजना का समर्थक हूँ, इसलिए इस सीधे-सादे प्रश्न की निष्पक्ष चर्चा पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिए।

सादा-सा प्रश्न केवल यह है : अगर मद्रास सरकार नई मिलों के खुलने में बढ़ावा दे, या पुरानी मिलों को अपनी मशीनें बढ़ाकर ढुगुना माल पैदा करने में मदद दे, तो क्या खादी सामान्य जनता में फैल सकेगी? क्या गाँव वालों को इतना भोला समझ लिया गया है कि एक खास लम्बाई का कपड़ा बुनने के लिए जितनी कीमत की कपास की ज़रूरत होती है, उससे भी कम कीमत पर उन्हें मिल का कपड़ा बेचा जाए, तो वे इतनी सी बात भी नहीं समझेंगे कि यह खादी के साथ केवल खिलवाड़ किया जा रहा है? जब जापान ने अपना कपड़ा भारत में भेजा था तब ऐसा ही हुआ था।

इसमें कोई शक नहीं कि मद्रास वाली योजना इसी गरज़ से बनाई गई है कि किसान अपने खाली समय में कताई करके अपने पहनने लायक कपड़ा खुद तैयार कर लिया करें। लोग अपने खाली समय को उपयोगी, राष्ट्रीय और प्रामाणिक श्रम में खर्च करें, इसके लिए उन्हें समझाना क्या निरा शेखचिल्लीपन है?

जब बेकारों के लिए कोई उपयोगी और ज्यादा लाभप्रद काम की अमली योजना सामने आएगी, उस समय मद्रास सरकार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना उचित होगा। जो लोग सचाई के साथ देश की सेवा कर रहे हैं, उन्हें आदर्शवादी, स्वप्नदर्शी, पागल या धुनी कहकर उनकी बात पर ध्यान देने से इनकार करना मनोरंजन का कोई अच्छा साधन नहीं है।

पूँजीपतियों को और समाज में अपनी जगह बनाकर बैठे हुए लोगों को चाहिए कि वे ग़रीब ग्रामवासियों के ख़िलाफ़ खड़े न हों और उन्हें इज्जत के साथ मेहनत करके अपनी दुर्दशा को सुधारने से न रोकें।

मद्रास वाली योजना में नई मिलों के बारेमें जो एक भारी दोष रह गया था, उसे मैंने पकड़ लिया है। जब टेक्सटाइल कमिश्नर को दोनों चीज़ें (चरखा और मिल) एक साथ चलाने की गलती समझ में आ गई और चरखा-संघ की तैयार की हुई योजना की व्यावहारिकता उन्होंने समझ ली, तो उन्होंने सरकार से उसकी सिफ़ारिश की। अगर यह योजना व्यावहारिक या उपयोगी सिद्ध न हुई, तो उससे टेक्सटाइल कमिश्नर की नेकनामी को धक्का लगेगा – टीका करने वालों को नहीं।

यह एक लोकतांत्रिक सरकार द्वारा आम जनता की भलाई के लिए उठाया गया कदम है।

इसलिए जहाँ यह योजना अमल में लाई जाए कम से कम वहाँ के लोगों को तो इसे ज़रूर अपनाना चाहिए।

यह एक आदमी की योजना नहीं, परन्तु पूरी सरकार की योजना होनी चाहिए । उसके पीछे धारासभा का पूरा समर्थन होना चाहिए।

उसमें ज़बरदस्ती की बू भी नहीं आनी चाहिए।

वह वास्तव में अमल में आने लायक और आम जनता के लिए लाभकारी होनी चाहिए।

योजना की सफलता की ये सब शर्तें लिखित रूप में रखी गई हैं। मैं समझता हूँ कि विशेषज्ञों से और आपस में पूरी चर्चा करने के बाद ही मद्रास सरकार ने इन सबको ज्यों का त्यों मान लिया है।

याद रहे कि मद्रास की वर्तमान मीलों को अभी छुआ नहीं जाएगा । अगर एक दिन यह योजना जंगल की आग की तरह फैली – और मुझे आशा है कि ऐसी चीज एक दिन ज़रूर सब जगह फैल जाएगी – तो इसमें कोई शंका नहीं कि समूचे मिल-उद्योग पर उसका असर होगा। अगर ऐसा दिन कभी आये तो बड़े से बड़े पूँजीपति को भी उसके न आने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

तब सोचने योग्य प्रश्न केवल यही रह जाता है कि मद्रास सरकार ईमानदारी और योग्य है या नहीं। अगर वह ऐसी नहीं है, तो सारी योजना गड़बड़ में पड़ जाएगी। और अगर सरकार ईमानदार और योग्य होगी, तो इसे सबके आशीर्वाद मिलेंगे और यह योजना ज़रूर सफल होगी। [ह. से., २७-१०-'४६, पृ. ३६८]

३०. काँग्रेस सरकारें और ग्राम-सुधार

अब की काँग्रेस के मंत्रियों ने प्रान्तों के शासन की बागडोर जो अपने हाथ में ली है, वह कोई वैधानिक प्रयोग नहीं है। वह राष्ट्र को खड़ा करने की एक कोशिश है। उनका काम तो यह है कि जनता के लिए जिस आज़ादी की कल्पना काँग्रेस ने की है उसको वे अमली रूप दें। ३१ जुलाई (१९४६) को जब अलग-अलग प्रान्तों के उद्योग-विभाग के मंत्री पूना के कौंसिल हॉल में मिले, तो उनके सामने ये प्रश्न थे : आर्थिक नीति का अंत क्या होना चाहिए? जो समाज-रचना हम करना चाहते हैं उसका स्वरूप क्या होना चाहिए? और आज कल के आर्थिक और प्रशासनिक संगठन में ऐसी क्या-क्या बातें हैं, जो ग्रामसुधार के मार्ग में रुकावट डालती हैं?

गांधीजी ३० मिनट बोले। उन्होंने ग्रामोद्योगों के बारेमें अपनी दृष्टि समझाई। उन्होंने कहा, नई तालीम और ग्रामोद्योगों के कार्यक्रम – जिसमें खादी भी शामिल है – के पीछे जो कल्पना है, उसकी जड़ एक ही है। अर्थात् बड़े शहरों के मुकाबले में गाँवों की और यंत्र के मुकाबलें में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और दरजे की चिन्ता। इस बातने इस चिन्ता को और भी बढ़ा दिया है कि हिंदुस्तान थोड़े से बड़े शहरों में नहीं बसता, परन्तु अपने सात लाख गाँवों में बसता है। समस्या गाँवों और शहरों के सम्बन्धों में फिर से न्याय स्थापित करने की है। आज कल गाँवों के मुकाबले शहरों का पलड़ा बहुत भारी है, जो गाँवों को नुकसान पहुँचाने वाला है।

यंत्रों का युग

गांधीजी ने कहा : "हमारे युग को यंत्रयुग कहा गया है, क्योंकि हमारे आर्थिक जीवन पर यंत्र का शासन चलता है। कोई पूछ सकता है – 'यंत्र क्या है?' एक अर्थ में मनुष्य एक उत्तम यंत्र है। न उसकी कोई मिसाल हो सकती है, न नकल हो सकती है।" लेकिन गांधीजी ने यंत्र शब्द का उपयोग उसके व्यापक अर्थ में नहीं किया। उनका मतलब तो केवल ऐसे साधन से था, जो मनुष्य और पशु की शक्ति की किमयों को पूरा करने या केवल उसे अधिक उपयोगी बनाने के बजाय उसकी जगह ही ले लेता है। यह यंत्र की पहली विशेषता है। यंत्र की दूसरी विशेषता यह है कि इसकी शक्ति की वृद्धि या विकास की कोई हद ही नहीं है। आदमी की मेहनत के बारेमें यह नहीं कहा जा सकता। उसकी कुछ मर्यादा होती है, जिसके आगे उसकी शक्ति या यांत्रिक कार्यक्षमता नहीं जा सकती। इसमें से यंत्र की तीसरी विशेषता पैदा हुई है। ऐसा मालूम होता है, मानों यंत्र का अपना कोई निश्चय-बल या अपनी आत्मा हो। यंत्र मानव के श्रम का शत्रु है। वह ज्यादा से ज्यादा आदिमयों की जगह ले लेता है, क्योंकि एक यंत्र अगर हज़ार नहीं तो सौ आदिमयों का काम तो करता ही है। नतीजा यह होता है कि बेकारों और अर्ध-बेकारों की फ़ौज

बढ़ती ही जाती है। इसलिए नहीं कि यह वांच्छनीय है, बल्कि इसलिए कि यह यंत्र का नियम है। अमेरिका में तो शायद यह चीज़ चरम सीमा तक पहुँच गई है। गांधीजी ने कहा कि मैं आज से नहीं परन्तु १९०८ के भी पहले से यंत्र के ख़िलाफ़ रहा हूँ। तब मैं दक्षिण अफ्रीका में था और मेरे चारों तरफ यंत्र ही यंत्र थे। लेकिन यंत्रों की प्रगति ने मुझ पर कोई असर नहीं डाला, बल्कि यंत्रों के प्रति मेरे मन में घृणा ही पैदा की। "तब मैंने यह जाना कि यंत्र करोड़ों को दबाने और लूटने का एक उत्तम साधन है। अगर समाज के घटकों के नाते सब मनुष्यों को समान होना है, तो मानव की अर्थ रचना में यंत्र का कोई स्थान नहीं हो सकता। मैं कहता हूँ कि यंत्र ने मनुष्य को ज़रा भी ऊँचा नहीं उठाया है। और अगर यंत्र को उसके उचित स्थान पर नहीं बैठाया गया, तो वह लाभ पहुँचाने के बजाय मनुष्य को बिलकुल तबाह कर देगा। उसके बाद डरबन जाते हुए रेल में मैंने रिक्किन की अन्दु दिस लास्ट (सर्वोदय) नामक पुस्तक पढ़ी। और उसने तत्काल मुझे अपने वश्च में कर लिया। मैंने स्पष्ट समझ लिया कि अगर मानव-जाति को प्रगति करनी है और अगर उसका यह आदर्श हो कि सब मानव समान हों, सब मानव भाई-भाई की तरह रहें, तो उसे गूंगों और लूले-लंगड़ों को भी अपने साथ लेकर चलना होगा। कया युधिष्ठिर ने, जो सत्य के देवता थे, अपने वफ़ादार कुत्ते को छोड़कर स्वर्ग जाने से इनकार नहीं कर दिया था?"

मंत्रि-मंडल और ग्रामोद्योग-संघ

यंत्र युग में इन लंगड़े-लूलों के लिए कोई स्थान नहीं है। इसमें तो सबसे बलवान ही टिकता है, और वह भी निर्बलों को छोड़कर और उनकी गर्दन पर सवार होकर। गांधीजी ने कहा : "आज़ादी की मेरी यह कल्पना नहीं है। उसमें तो निर्बल से निर्बल के लिए भी जगह है। इसके लिए यह ज़रूरी है कि जितने मनुष्य हैं उनकी मेहनत का हम पहले पूरा-पूरा उपयोग कर लें और फिर ज़रूरत हो तो यंत्रशक्ति का उपयोग करें।"

इसी पृष्ठभूमि को सामने रखकर मैंने तालीमी संघ और अ. भा. ग्रामोद्योग-संघ की नींव डाली थी। इनका उद्देश्य है: काँग्रेस को मज़बूत बनाना, जो वास्तव में आम जनता की संस्था है। काँग्रेस ने इन स्वायत्त संस्थाओं की रचना की है। काँग्रेसी मंत्रि-मंडल हमेशा और बिना किसी संकोच के इन संस्थाओं की सेवा माँग सकते हैं। उनका अस्तित्व ग्रामवासियों के लिए है और उन्हीं की सेवा के लिए वे परिश्रम करती हैं। ग्रामवासी ही काँग्रेस के मुख्य आधार है। काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों पर किसी तरह का दबाव नहीं है। अगर वे इन संस्थाओं के सिद्धांतों में विश्वास नहीं रखते, तो उन्हें काँग्रेस कार्य-सिमित के द्वारा ऐसा स्पष्ट कह देना चाहिए। अगर किसी काम में दिन न लगे, तो उसके साथ खिलवाड़ करना सबसे बूरी बात होगी। इस कार्य को उन्हें तभी हाथ में लेना चाहिए जब वे मेरे साथ यह मानते हों कि इसी में देश की आर्थिक और राजनीतिक भलाई समाई हुई है। उन्हें खुद को या दूसरों को धोखा नहीं देना चाहिए।

धरती माता

खेती ग्रामोद्योगों का आधार और उनकी बुनियादी है। "कई साल हुए मैंने एक कविता पढ़ी थी, जिसमें किसान को दुनिया का पिता कहा गया है। अगर ईश्वर दाता है, तो किसान उसका हाथ है। हम पर उसका जो ऋण है, उसे चुकाने के लिए हम क्या करने वाले हैं? अभी तक तो हम उसकी गाढ़े पसीने की कमाई ही खाते रहे हैं। हमें खेती से अपना काम शुरू करना चाहिए था, लेकिन हम ऐसा कर न सके। इस दोष में अंशतः मेरा भी हाथ है।"

गांधीजी ने कहा कि कई लोग यह कहते हैं कि जब तक राजनीतिक सत्ता हमारे हाथ में न आ जाएँ, तब तक खेती में कोई बुनियादी सुधार नहीं हो सकता। इन लोगों का स्वप्न यह है कि भाप और बिजली का व्यापक पैमाने पर उपयोग करके यंत्र की शक्ति से खेती की जाए। मेरी इन लोगों को यह चेतावनी है कि अगर वे ज़ल्दी-ज़ल्दी उत्पादन लेने के प्रलोभन में पड़ कर ज़मीन के उपजाऊपन का सौदा करेंगे, तो यह विनाशक और अल्पदृष्टि की नीति होगी। इसका परिणाम यह होगा कि ज़मीन का उपजाऊपन कम होता जाएगा। अच्छी ज़मीन से अन्न पैदा करने के लिए पसीना बहाना पड़ता है।

लोग शायद इस दृष्टि की टीका करें और यह कहें कि इससे काम धीमा होगा और प्रगित के मार्ग पर ले जाने वाला नहीं होगा; और न इससे ज़ल्दी कोई बहुत बड़ा नतीजा निकलने की आशा रखी जा सकती है। फिर भी मैं कहता हूँ कि ज़मीन और उस पर रहने वाले मनुष्यों की खुशहाली की कुँजी इसी दृष्टि में हैं। स्वास्थ्य और शक्ति देने वाला भोजन ग्राम्य अर्थ-व्यवस्था का क-ख-ग है। "किसान की आय का ज्यादा भाग उसके और उसके परिवार के भोजन पर ही खर्च होता है। बाकी सब बातें उसके बाद आती हैं। खेती करने वाले कों अच्छा भोजन मिलना चाहिए। उसे ताजे और शुद्ध घी, दूध और तेल काफ़ी मात्रा में मिलने चाहिए। और अगर वह माँस खाता हो, तो उसे मछली, अंडे और माँस भी मिलने चाहिए। अगर उसे पेटभर अच्छा पोषक भोजन न मिले, तो उसके पास अच्छे कपड़े होने का क्या अर्थ है?" इसके बाद पीने का पानी मुहैया करने का प्रश्न और दूसरे प्रश्न आयेंगे। इन प्रश्नों का विचार करते हुए स्वभावत: ऐसे प्रश्न भी निकल आयेंगे कि ट्रैक्टर से ज़मीन में हल चलाने और यंत्र से ज़मीन को पानी देने की तुलना में कृषि के अर्थशास्त्र में बैल का क्या स्थान है। इस तरह एक-एक करके ग्राम्य व्यवस्था की पूरी तसवीर हमारे सामने उभर आयेगी। इस तसवीर में शहरों का भी उचित स्थान होगा और वे आज की तरह राज्यसंस्था पर उठे हुए फोड़ों की तरह या अस्वाभाविक घने धब्बों की तरह नहीं दिखाई देंगे। अंत में गांधीजी ने कहा: "आज इस बात का खतरा पैदा हो गया है कि कहीं हम हाथों का उपयोग करना ही न भूल जाएँ। मिट्टी खोदना और ज़मीन की देखभाल करना भूलने का अर्थ होगा स्वयं को भूल जाना। अगर आप यह समझें कि केवल शहरों की सेवा करके आपने मंत्रीपद का कर्तव्य पूरा कर दिया, तो आप इस बात को भूल जाते हैं कि हिंदुस्तान असल में अपने सात लाख गाँवों में बसा हुआ है। अगर किसी आदमी ने सारी दुनिया पा ली, लेकिन इस सौदे में अपनी आत्मा खो दी, तो उसे क्या लाभ हआ?"

इसके बाद गांधीजी से प्रश्न पूछे गये।

उपाय

प्र。 - आपने शहरों को राज्यसंस्था के फोड़े कहा है। इन फोड़ों का क्या किया जाए?

उ॰ – अगर आप किसी डाक्टर से पूछेंगे, तो वह आपको यह इलाज बतायेगा कि फोड़े को चीरकर या पलस्तर और पुलिटस बाँधकर अच्छा करना होगा। एडवर्ड कारपेन्टर ने सभ्यता को ऐसा रोग कहा है, जिसका इलाज किया जाना चाहिए। बड़े-बड़े शहरों की बढ़ती इस रोग का ही चिह्न है। कुदरती उपचार में विश्वास रखने वाला होने के कारण मैं तो इसी बात के पक्ष में हूँ कि सम्पूर्ण व्यवस्था की सामान्य शुद्धि की जाएँ और कुदरती मार्ग से इस रोग का भी इलाज किया जाय। अगर शहर वालों के हृदय गाँवों में रम गये और वे वास्तव में ग्राम्य मानस वाले बन गये, तो बाकी सब बातें अपने आप हो जाएँगी और फोड़ा ज़ल्दी ही भरकर अच्छा हो जाएगा।

प्र。 – आजकी परिस्थितियों में ग्रामोद्योगों को विदेशी और देशी कारखानों के माल के आक्रमण से बचाने के लिए क्या-क्या व्यावहारिक कदम उठाये जा सकते हैं?

उ॰ – मैं सिर्फ मोटी-मोटी बातें बता सकता हूँ। अगर आपको अपने हृदय में ऐसा लगा हो कि आपने शासन की बागडोर इसलिए हाथ में ली है कि आप आम जनता के हित का प्रतिनिधित्व और रक्षा करें, तो आप जो कुछ भी करेंगे – चाहे कानून बनायें, आदेश निकालें, हिदायतें दें – उसमें गाँव वालों की चिन्ता ही नज़र आयेगी। उनके हितों की रक्षा करने के लिए आपको वाइसरॉय की स्वीकृति कि ज़रुरत नहीं है। मान लीजिए कि आप कतवैयों और बुनकरों को मिलों की स्पर्धा से बचाना चाहते हैं और आप लोगों की कपड़े की तंगी की समस्या हल करना चाहते हैं, तो आप लाल फीताशाही को अलग हटाकर मिल मालिकों को बुलायेंगे और समझायेंगे कि अगर वे यह नहीं चाहते कि आप शासन की बागडोर छोड़ दें, तो उन्हें उत्पादन की अपनी नीति का मेल जनता की ज़रूरतों के साथ बैठाना होगा। आप जनता के रक्षक और प्रतिनिधि हैं। आप मिल-मालिकों से कहेंगे कि वे ऐसे क्षेत्रों में मिल का कपड़ा न भेजें, जहाँ हाथ से कपड़ा तैयार किया जाता है; या उनसे कहेंगे कि वे उन खास अंकों के बीच का सूत और कपड़ा न बनायें, जो हाथ-करघे के बुनकरों के क्षेत्र में आता है। अगर आप यह बात उनसे सच्चे मनसे कहेंगे, तो उन पर आपके कहने का प्रभाव पड़ेगा और वे आपके साथ सहयोग करेंगे – जैसे उन्होंने कुछ समय पहले किया था, जब भारत को अकाल से बचाने के लिए उन्होंने अतिरिक्त चावल के बदले में इन्डोनेशिया को भेजने के लिए कपड़ा दिया था। परन्तु पहले आपका यह विश्वास पक्का होना चाहिए; फिर तो सभी बातें ठीक हो जाएँगी। [ह. से., २५-८-'४६, पृ. २८१-८२]

३१. काँग्रेसी मंत्रि-मंडल और नई तालीम

सन् १९४० में जब सात प्रान्तों के काँग्रेसी मंत्रि मंडलों ने इस्तीफा दिया, तो वहाँ १९३५ के भारतीय शासन विधान की ९३वीं धारा का गवर्नरी राज्य कायम हुआ। उन राज्यों में काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों द्वारा शुरू की गई नई तालीम की योजनाओं और शराबबन्दी, ग्राम-सुधार तथा देहात के बुनियादी उद्योगों को फिरसे जिलाने के कार्यक्रम को सबसे बड़ा धक्का पहुँचा। काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने जब फिर से शासन की बागडोर अपने हाथ में ली, तो कुदरती तौर पर सबसे पहले उन्होंने अपने प्रयोगों की बची-कुची निशानियों को बरबादी से बचाने के लिए १९४० में छोड़े हुए कामों को फिर से हाथ में लेने की तरफ ध्यान दिया।

श्री बालासाहब खेर का न्यौता पाकर काँग्रेसी प्रान्तों से आये हुए शिक्षा-विभाग के मंत्रियों की एक कान्फरेन्स श्री खेर की अध्यक्षता में पूना के कौंसिल हॉल में २९ और ३० जुलाई, १९४६ को हुई। न्योता तो सभी प्रान्तों के मंत्रियों को दिया गया था, लेकिन उममें से दो प्रान्त के मंत्री कान्फरेन्स में शरीक न हो सके। २९ जुलाई को तीसरे पहर गांधीजी एक घंटे से भी ज्यादा कान्फरेन्स में बैठे थे। सरकारी और उनसे जुड़ी हुई संस्थाओं में नई तालीम के प्रयोग को ज़रूर धक्का लगा था। लेकिन तालीमी संघ में, जो गांधीजी की दूरंदेशी से हर मुसीबत का सामना करने के लिए पूरी तरह तैयार था, वह प्रयोग उसी तरह चलता रहा। पहले सात साल पूरे हो जाने से नई तालीम की उमर पुख्ता हो चुकी है। नज़रबन्दी से छूटने के बाद सन् १९४४ में जब गांधीजी तालीमी संघ के सदस्यों से पहले-पहल मिले, तो उन्होंने समझाया कि अब आपका प्रयोग इस हद तक पहुँच गया है जब कि नई तालीम का क्षेत्र बढाया जाना चाहिए। अब आपको अपने क्षेत्र में पोस्ट-बेसिक यानी नई तालीम के बाद की और प्री-बेसिक यानी नई तालीम के पहले की ट्रेनिंग भी शामिल करनी चाहिए। नई तालीम को सच्चे अर्थ में जीवन की तालीम बन जाना चाहिए। इसी दलील को आगे बढ़ाते हुए गांधीजी ने कान्फरेन्स के लोगों को यह समझाया कि किस लाइन पर नई तालीम का क्षेत्र बढ़ाना चाहिए और मंत्रियों का इस बारेमें कया कर्तव्य है। गांधीजी डॉ. जाकिर हुसैन के प्रश्न के उत्तर में बोल रहे थे। डॉक्टर साहब को यह डर था कि ज़रुरत से ज्यादा जोश में आकर कोई ऐसी ज़िम्मेदारी सिर पर न ले ली जाय, जिसे पूरा न किया जा सके। ऐसा जोशभरा कार्यक्रम, जिसे अमली रूप देने के साधन हमारे पास न हों, हमें झंझटों में फँसाने वाला और खतरनाक साबित होगा।

'अगर में मंत्री होता'

गांधीजी ने कहा : "हमें क्या करना चाहिए, यह तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ; लेकिन यह किस तरह किया जाय, यह में ठीक-ठीक नहीं जानता। अभी तक जो रास्ता आपने तय किया है, उसकी सही जानकारी आपको थी। लेकिन अब आपको ऐसे रास्ते पर आगे बढ़ना है, जिस पर कभी कोई चला नहीं। मैं आपकी मुक्किलों को खूब समझता हूँ। जो लोग (ज्ञिक्षा की) पुरानी परंपरा में पले हैं, उनके

लिए उसे एकबारगी ठुकरा देना आसान काम नहीं है। अगर मैं मंत्री होता तो मैं इस तरह की खास सूचनाएँ जारी करता कि आगे से शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाला सरकार का समूचा काम नई तालीम की लाइन पर चलेगा। कई प्रान्तों में प्रौढ़ शिक्षा का आंदोलन शुरू किया गया था। अगर मेरी चले तो मैं उसे भी किसी बुनियादी हाथ-उद्योग के ज़िरए ही चलाऊँ। मेरे ख़याल से कताई और उससे जुड़े हुए काम इसके लिए सबसे अच्छे हाथ-उद्योग हैं। लेकिन किस जगह कौन से हाथ-उद्योग के ज़िरए तालीम दी जाय, यह बात मैं काम करने वालों पर ही छोड़ दूँगा। क्योंकि मेरा यह पूरा विश्वास है कि जिसके भीतर ज़रूरी खूबियाँ होंगी, वही हाथ-उद्योग आख़िर में जिन्दा रहेगा। इन्स्पेक्टरों और शिक्षा-विभाग के दूसरे अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे लोगों और स्कूलों के शिक्षकों के पास जाएँ और प्रेम से दलीलें दे-देकर सरकार के शिक्षा-विभाग की नई नीति की कीमत और उससे होने वाले लाभ उन्हें समझायें। ऐसा करने में ज़बरदस्ती कभी न की जाय। अगर इस नीति में उनकी श्रद्धा नहीं है, या वे ईमानदारी से इस पर अमल करना नहीं चाहते, तो मैं उन्हें इस्तीफा देकर चले जाने की छूट दूँगा। लेकिन अगर मंत्री अपना कर्तव्य समझ लें और इस नीति को अमली रूप देने कि कोशिश करें, तो यह नौबत ही न आये। सिर्फ आदेश निकाल देने से काम नहीं चलेगा।"

युनिवर्सिटी-शिक्षा की कायापलट

"प्रौढ़-शिक्षा के बारे में मैंने जो कहा, वह युनिवर्सिटी-शिक्षा पर भी उसी तरह लागू होता है। उसका हिंदुस्तान की ज़रूरतों के साथ पूरा-पूरा मेल बैठना चाहिए। इसलिए युनिवर्सिटी की शिक्षा नई तालीम के सिलिसले में जारी रहने वाला उसका विस्तृत रूप ही होना चाहिए। यही मेरी बात का असल मुद्दा है। अगर इस बारेमें आप मुझ से पूरी तरह एकमत नहीं हैं, तो मुझे डर है कि मेरी सलाह से आपको कोई लाभ नहीं होगा। लेकिन अगर मेरे साथ आप भी इस बात को मानते हैं कि आज की युनिवर्सिटी-शिक्षा ने, हमें आज़ादी का रास्ता दिखाने के बजाय गुलाम ही बनाया है, तो मेरी तरह आप भी उसे पूरी तरह बदल डालने और देश की ज़रूरतों के अनुसार नया रूप देने के लिए उतावले हो उठेंगे।

"आज युनिवर्सिटी में ज्ञिक्षा पाये हुए हमारे नौजवान या तो सरकारी नौकरियों के पीछे मारे-मारे फिरते हैं या उसमें असफल होकर लोगों को लूट-पाट के लिए भड़काकर अपनी कुढ़न मिटाते हैं। लोगों से भीख माँगने या उनके टुकड़ों के मोहताज बनने में भी वे ज्ञर्म महसूस नहीं करते। उनकी दुर्दज्ञा की

भी कोई हद है! आज युनिवर्सिटियों को चाहिए कि वे देश की आज़ादी के लिए जीने और मरने वाले जनता के सेवक तैयार करें। इसलिए मेरी राय है कि तालीमी संघ के शिक्षकों की मदद से युनिवर्सिटी-शिक्षा को नई तालीम के साथ जोड़कर उसकी लाइन में ले आना चाहिए।

"आपने लोगों के प्रतिनिधियों के नाते शासन की बागडोर सँभाली है। इसलिए अगर आप लोगों को अपने साथ नहीं ले सके, तो आपके आदेश कौंसिल हॉल की चहारदीवारी के आगे नहीं बढ़ पायेंगे। आज बम्बई और अहमदाबाद में जो कुछ हो रहा है उससे अगर यह ज़ाहिर होता है कि लोगों पर से काँग्रेस का प्रभाव उठ गया है, तो वह बुरा शकुन ही कहा जाएगा। नई तालीम आज भी एक कमजोर पौधा ही है, फिर भी वह भविष्य में बड़े भारी वृक्ष का रूप लेगी। लेकिन अगर जनता उसे पसंद न करे, तो मंत्रियों के आदेशों के सहारे वह पनप नहीं सकती। इसलिए अगर आप जनता को अपनी राय की नहीं बना सकते, तो मैं आपको सलाह दूँगा कि आप इस्तीफा दे दें। आपको अराजकता से डरना नहीं चाहिए। आप लोग अपनी बुद्धि के कहे अनुसार अपना कर्तव्य पूरा करें और बाकी सब भगवान के भरोसे छोड़ दें। उस अनुभव से भी लोग सच्ची आज़ादी का सबक सीखेंगे।"

इसके बाद गांधीजी ने लोगों से प्रश्न पूछने के लिए कहा। पहला प्रश्न था: "क्या स्वावलम्बन के सिद्धांत के बिना भी नई तालीम दी जा सकती है?"

गांधीजी ने उत्तर दिया: "आप बेशक इसकी कोशिश कर सकते हैं। लेकिन अगर आप मेरी सलाह पूछेंगे, तो मैं यही कहूँगा कि वैसी हालत में आपका नई तालीम को पूरी तरह भूल जाना ही बेहतर होगा। स्वावलम्बन मेरे लिए नई तालीम की पहली शर्त नहीं, बल्कि उसकी सच्ची कसौटी है। इसका मतलब यह नहीं कि नई तालीम शुरू से ही स्वावलम्बन बन जाएगी। नई तालीम की योजना के अनुसार सात साल के पूरे अरसे में आय और खर्च का हिसाब बराबर बैठना चाहिए। नहीं तो विद्यार्थियों की ट्रेनिंग पूरी होने के बाद यही साबित होगा कि नई तालीम उन्हें जीवन की तालीम नहीं दे सकती। स्वावलम्बन के बिना नई तालीम वैसी ही मानी जाएगी, जैसे बिना प्राण का शरीर।"

इसके बाद और भी प्रश्नोत्तर हुआ।

प्र。 – हमने बुनियादी हाथ-उद्योग के जिरये शिक्षा देने के सिद्धांत को मान लिया है। लेकिन मुसलमान किसी वजह से चरखे के ख़िलाफ़ हैं। जिन जगहों में कपास पैदा होती है, वहाँ तो आपका कताई पर जोर देना ठीक मालूम होता है। लेकिन क्या आप इस बात को नहीं मानते कि जहाँ कपास पैदा नहीं होती, वहाँ चरखे और कताई के लिए कोई जगह नहीं है? कया ऐसी जगहों में कताई के बजाय कोई दूसरा हाथ-उद्योग नहीं लिया जा सकता? उदाहरण के लिए खेती।

उ॰ – यह बहुत पुराना प्रश्न है। कोई भी बुनियादी हाथ-उद्योग, जिसके जिरये शिक्षा दी जाय, सब जगह के लिए उपयुक्त होना चाहिए। सन् १९०८ में ही मैं इस नतीजे पर पहुँच गया था कि हिंदुस्तान को आज़ाद करने और उसको अपने पाँव पर खड़ा होने लायक बनाने के लिए उसके हर घर में चरखा चलना चाहिए। कपास की एक डोंड़ी भी पैदा न करके अगर इंग्लैंड सारी दुनिया को और हिंदुस्तान को कपड़ा भेज सकता है, तो सिर्फ पड़ोस के प्रान्त या ज़िले से कपास मँगाकर भी क्या हम अपने घरों में कताई शुरू नहीं कर सकते? सच पूछा जाय तो पुराने जमाने में हिंदुस्तान का एक भी ऐसा हिस्सा नहीं था, जहाँ कपास न पैदा की जाती हो। सिर्फ 'कपास पैदा कर सकने वाली धरती' में ही कपास पैदा की जाय, यह हानिकारक बात तो हाल ही सूती माल तैयार करने वाले निहित स्वार्थों ने हिंदुस्तान पर जबरन् लादी है। ऐसा करने में उन्होंने ग़रीब टैक्स देने वालों और सूत कातने वालों के हित की ज़रा भी परवाह नहीं की। आज भी पेड़ की कपास हिंदुस्तान में हर जगह मिलती हैं। ऐसी लचर दलीलें यह साबित करती हैं कि कोई कठिन काम हाथ में लेने की और मौका आने पर नये-नये साधन खोज़ निकालने की हम में योग्यता नहीं है। अगर कच्चे माल को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के काम को दूर न की जा सकने वाली अड़चन मान लिया जाय, तो सारे कारखाने बन्द हो जाएँ।

इसके अलावा, किसी आदमी को उसकी कोशिशों से अपना तन ढंकने लायक बना देना - जब कि ऐसा न किये जाने पर उसे नंगा रहना होगा - अपने आप में एक शिक्षा है। और कताई से सम्बन्ध रखने वाले अलग-अलग कामों की बुद्धिपूर्वक छान-बीन की जाए, तो उससे कई बातें सीखी जा सकती हैं। सच पूछा जाय तो कताई में मनुष्य की सारी शिक्षा समाई हुई है, जो दूसरे किसी हाथ-उद्योग में नहीं मिलेगी। हो सकता है कि आज हम मुसलमानों का शक दूर न कर सकें, क्योंकि उसकी जड़ में उनका भ्रम है। और जब तक मनुष्य पर भ्रम का जादू बना रहता है, तब तक भ्रम ही उसे सच्चा मालूम होता

है। लेकिन अगर हमारी श्रद्धा शुद्ध और दृढ़ है और हम अपनी इस पद्धित की सफलता उन्हें दिखा सकें, तो मुसलमान खुश होकर हमारे पास आयेंगे और हमारी सफलता का रहस्य हमसे जानना चाहेंगे। अभी तक उन्होंने यह महसूस नहीं किया है कि मुस्लिम लीग या दूसरी मुस्लिम संस्थाओं के बिनस्बत चरखे ने ही ग़रीब से ग़रीब मुसलमानों की अधिक सच्ची सेवा की है, मुसीबत में उन्हें ज्यादा से ज्यादा राहत पहुँचाई है। बंगाल के सबसे ज्यादा कतवैये और कित्तनें मुसलमान ही हैं। मुसलमानों को यह भी नहीं भूलना चाहिए कि ढाका की शबनम की प्रसिद्धि को सारी दुनिया में फैलाने वाले कुशल मुसलमान जुलाहे ही थे और सफाई के साथ बारीक से बारीक सूत कातने वाली मुसलमान कित्तनें ही थीं।

यही बात महाराष्ट्र पर भी लागू होती है। इस भ्रम का सबसे अच्छा इलाज यह है कि हम अपना कर्तव्य पूरा करने का ही ध्यान रखें। अकेली सचाई ही कायम रहेगी, बाकी सब समय के बहाव में बह जाएगा। सारी दुनिया मुझे छोड़ दे, तो भी मुझे अकेले ही अपनी सच्ची बात पर डटे रहना चाहिए। हो सकता है कि आज मेरी आवाज़ कोई न सुने। लेकिन अगर वह सच्ची है, तो दूसरी आवाजों के शान्त हो जाने पर लोग उसे ज़रूर सुनेंगे।

बुराइयों का घेरा

अविनाशिलंगम् चेट्टियर ने अंग्रेजी में पूछा : "नई तालीम के लिए योग्य शिक्षक तैयार करने में समय लगेगा। इस बीच स्कूलों की शिक्षा में प्रगति करने के लिए क्या किया जाना चाहिए?" गांधीजी ने उन्हें अंग्रेजी में प्रश्न करने के लिए चिढ़ाते हुए हंसी के फव्वारों के बीच सुझाया : "अगर आप हिंदुस्तानी में नहीं बोल सकते थे, तो आपको अपने पड़ोसी के कान में धीरे से यह बात कह देनी थी और वे मुझे हिंदुस्तानी में उसे कह सुनाते !"

गांधीजी ने आगे चलकर कहा : "अगर आप यह महसूस करते हैं कि आज की शिक्षा हिंदुस्तान को आज़ाद बनाने के बजाय उसकी गुलामी को और ज्यादा बढ़ाती है, तो आप उसे प्रोत्साहन देने से इनकार कर दें, भले ही उसकी जगह कोई दूसरी शिक्षा ले या न लें। आप नई तालीम की चहारदीवारी के भीतर जितना कर सकें उतना करें और उससे संतोष मानें। अगर लोग इस शर्त पर मंत्रियों को उनकी जगह रखना नहीं चाहते, तो वे इस्तीफा दे दें। वे लोगों को जीवन देने वाला खाना नहीं दे सकते या लोग ऐसा खाना पसंद नहीं करते, इस कारण से लोगों को ज़हर खिलाने में तो वे कभी हाथ नहीं बँटायेंगे।"

प्र。 – आप कहते हैं कि नई तालीम के लिए हमें पैसे की नहीं, बल्कि आदिमयों की ज़रूरत है। लेकिन लोगों को सिखाने के लिए हमें संस्थाओं की ज़रूरत होगी और संस्थाओं के लिए पैसे की भी। हम बुराइयों के इस घेरे से कैसे बाहर निकलें?

उ॰ – इसका इलाज आपके ही हाथों में है। अपने-आपसे यह काम शुरू कीजिए। अंग्रेजी की एक अच्छी कहावत है : 'दान घर से शुरू होता है।' लेकिन आप खुद साहब बनकर आराम-कुर्सी पर बैठें और दूसरे 'कम योग्यता वालों' से आशा करें कि वे इस काम के लिए तैयार हों, तो आपको सफलता नहीं मिल सकती। काम करने का मेरा ढंग इससे अलग है। बचपन से मेरी यह आदत रही है कि मैंने अपने-आपसे और आसपास के लोगों से ही किसी काम की शुरूआत की है – फिर वह कितने ही छोटे रूप में क्यों न हो। इस बारेमें हम ब्रिटिश लोगों से सीख लें। पहले-पहल सिर्फ सुट्टीभर अंग्रेज हिंदुस्तान में आकर बसे और धीरे-धीरे उन्होंने अपना एक साम्राज्य खड़ा कर लिया। यह साम्राज्य राजनीतिक दृष्टि से उतना डरावना नहीं है जितना कि सांस्कृतिक दृष्टि से। उसने हम पर ऐसा जादू डाला है कि हम अपनी मातृभाषा को भी भूल गये हैं और अंग्रेजी के वश में होकर उससे वैसे ही चिपटे रहते हैं, जैसे एक गुलाम अपनी बेड़ियों से चिपटा रहता है। लेकिन इस साम्राज्य-निर्माण के पीछे कितनी श्रद्धा, कितनी भक्ति, कितनी कुरबानी और कितनी मेहनत छिपी हुई है ! यह इस बात का प्रमाण है कि इच्छा होने पर रास्ता भी निकल ही आता है। इसलिए हम उठें और दृढ़ निश्चय के साथ अपने काम में लग जाएँ। यदि रास्ते में आने वाले बड़े से बड़े खतरों की भी हम परवाह न करें, तो हमारी सारी मुश्किलें दूर हो जाएँगी।

अंग्रेजी का स्थान

प्र。 – इस कार्यक्रम में अंग्रेजी का क्या स्थान रहेगा? क्या उसे अनिवार्य बनाया जाना चाहिए या दूसरी भाषा की तरह पढ़ाया जाना चाहिए?

उ॰ – मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा जैसे अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवन देने वाला दूध दे सकती हैं। मैं अंग्रेजी को उसकी जगह प्यार करता हूँ। लेकिन अगर वह उस जगह को हड़पना चाहती है, जिसकी वह अधिकारिणी नहीं है, तो मैं उसका कड़ा विरोध करूँगा। यह बात मानी हुई है कि अंग्रेजी आज सारी दुनिया की भाषा बन गई है। इसलिए मैं उसे दूसरी भाषा के रूप में स्थान दूँगा - लेकिन युनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में, स्कूलों में नहीं। वह कुछ लोगों के सीखने की चीज़ हो सकती है, लाखों–करोड़ों की नहीं। आज जब हमारे पास प्राथमिक शिक्षा को भी देश में अनिवार्य बनाने के साधन नहीं हैं, तो हम अंग्रेजी सिखाने के साधन कहाँ से जुटा सकते हैं? रूसने बिना अंग्रेजी के ही विज्ञान में इतनी प्रगति की है। आज अपनी मानसिक गुलामी की वजह से ही हम यह मानने लगे हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता। मैं इस बात को नहीं मानता। [ह. से., २५-८-'४६, पृ. २८६-८८]

३२. विदेशी माध्यम

विदेशी माध्यम से हमारे विद्यार्थी दिमागी थकावट के शिकार हुए हैं, उनके ज्ञानतंतुओं पर अनुचित भार पड़ा है, वे रट्टू और नकलची बन गये हैं, मौलिक कार्य और विचार के लिए वे अयोग्य हो गये हैं और अपनी विद्या को परिवार अथवा जन-साधारण तक पहुँचाने में असमर्थ हो गये हैं। विदेशी माध्यम ने हमारे बालकों को अपने ही देश में लगभग विदेशी बना डाला है। वर्तमान पद्धित का यह सबसे बड़ा दु:खद परिणाम है। विदेशी माध्यम ने हमारी देशी भाषाओं के विकास को रोक दिया है। अगर मेरे पास एक निरंकुश शासक की सत्ता हो, तो मैं विदेशी माध्यम के द्वारा हमारे लड़कों और लड़कियों की पढ़ाई आज ही रोक दूँ और तमाम शिक्षकों और अध्यापकों से कह दूँ कि अगर बरख़ास्त नहीं होना है तो इसे फौरन ही बदल दें। मैं पाठ्य-पुस्तकों के तैयार होने की प्रतीक्षा नहीं करूँगा। वे इस परिवर्तन के बाद तैयार हो जाएँगी। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका इलाज एकदम हो जाना चाहिए। [यं. ईं., १-९-'२१, पृ. २७७]

विदेशी भाषा के माध्यम ने, जिसके ज़िरए भारत में उच्च शिक्षा दी जाती है, हमारे राष्ट्र को हद से ज्यादा बौद्धिक और नैतिक हानि पहुँचाई है। अभी हम अपने इस जमाने के इतने नज़दीक हैं कि इस हानि का निर्णय नहीं कर सकते। और, फिर ऐसी शिक्षा पाने वाले हमीं लोगों को इसका शिकार और न्यायाधीश दोनों बनना है, जो कि लगभग असंभव काम है।...

इस झूठी और हमें अभारतीय बनाने वाली शिक्षा द्वारा हमारे करोड़ों लोगों के साथ लगातार और दिन-दिन बढ़ता हुआ जो अन्याय हो रहा है, उसका प्रमाण मुझे रोज-रोज मिलता है। जो ग्रेजुएट मेरे कीमती साथी है वे खुद अटक जाते हैं, जब उन्हें अपने आंतरिक विचार प्रगट करने होते हैं। वे अपने ही घरों में अजनबी हैं। मातृभाषा के शब्दों का उनका ज्ञान इतना सीमित है कि वे अंग्रेजी शब्दों और वाक्यों तक का आश्रय लिए बिना अपनी बात हमेशा पूरी नहीं कर सकते। न वे अंग्रेजी पुस्तकों के बिना रह सकते हैं। वे बहुधा एक-दूसरे को अंग्रेजी में पत्र लिखते हैं। अपने साथियों की बात मैं यह दिखाने को कह रहा हूँ कि यह बुराई कितनी गहरी पैठ गई है, क्योंकि हमने तो सुधार करने की जान-बूझकर कोशिश की है।

यह बुराई इतनी गहरी बैठी हुई है कि कोई साहसपूर्ण उपाय ग्रहण किए बिना काम नहीं चल सकता। हाँ, काँग्रेसी मंत्री चाहें तो इस बुराई को कम तो कर ही सकते हैं, भले वे इसे दूर न करे सकें।

विश्वविद्यालयों को स्वावलम्बी ज़रूर बनाना चाहिए। राज्य को तो साधारणत: उन्हींको शिक्षा देनी चाहिए, जिनकी सेवाओं की उसे आवश्यकता हो। अन्य सब दिशाओं के अध्ययन के लिए उसे खानगी प्रयत्न को प्रोत्साहन देना चाहिए। शिक्षा का माध्यम तुरंत और किसी भी कीमत पर बदला जाना चाहिए और प्रान्तीय भाषाओं को उनका उचित स्थान मिलना चाहिए। जो दंडनीय बरबादी नित्य बढ़ती जा रही है, उसके बजाय मैं यह ज्यादा पसंद करूँगा कि थोड़े अरसे के लिए उच्च शिक्षा में अव्यवस्था फैल जाय।

प्रान्तीय भाषाओं का दर्जा और व्यावहारिक मूल्य बढ़ाने के लिए मैं चाहूँगा कि अदालतों की भाषा उस प्रान्त की भाषा हों जहाँ अदालतें स्थित हों। प्रान्तीय विधानसभा की कार्रवाई प्रान्त की भाषा में होनी चाहिए; और यदि इसी प्रान्त की सीमा के भीतर अनेक भाषायें हों, तो उन सारी भाषाओं में हो चाहिए। विधानसभाओं के सदस्यों से मेरा कहना है कि वे काफ़ी मेहनत करें, तो एक मास के भीतर अपने प्रान्तों की भाषायें समझ सकते हैं। एक तामील निवासी के लिए ऐसी कोई रुकावट नहीं है कि वह तामिल भाषा से सम्बन्धित तेलगु, मलयालम और कन्नड़ भाषाओं का मामूली व्याकरण और कुछ सौ शब्द आसानी से न सीख सके। केन्द्र में हिंदुस्तानी का ही राज्य होना चाहिए। [ह. से., ९-७-'३८, पृ. १६१-६३]

अब जब कि शिक्षा-पद्धित में सुधार करने का समय आ गया है, तो काँग्रेसजनों को अधीर हो जाना चाहिए। यदि शिक्षा का माध्यम धीरे-धीरे बदलने के बजाय एकदम बदल दिया जाय, तो बहुत ही शीघ्र हम देख सकेंगे कि आवश्यकता को पूरा करने के लिए पाठ्य-पुस्तकें भी प्राप्त हो रहे हैं और अध्यापक भी। और यदि हम प्रामाणिकता और सच्ची लगन से काम करना चाहते हैं, तो एक ही साल में हमें यह मालूम हो जाएगा कि हमें विदेशी माध्यम द्वारा सभ्यता का पाठ पढ़ने के प्रयत्न में राष्ट्र का समय और शक्ति नष्ट करने की ज़रूरत नहीं है। सफलता की शर्त यही है कि सरकारी दफ्तरों में और अगर प्रान्तीय सरकारों का अपनी अदालतों पर अधिकार हो तो उन अदालतों में भी प्रान्तीय भाषायें तुरंत जारी कर दी जायें। यदि सुधार की आवश्यकता में हमारा विश्वास हो, तो हम उसमें तुरंत सफल हो सकते हैं। [ह. से., ३०-७-'३८, पृ. १८९]

३३. शालाओं में संगीत

गांधर्व महाविद्यालय के पंडित नारायणशास्त्री खरे ने लड़के-लड़िकयाँ में शुद्ध संगीत का प्रचार करने के काम में जीवन अर्पण किया है। खास तौर पर अहमदाबाद में और आम तौर पर गुजरात में इस दिशा में जो बड़ी प्रगति हो रही है उसका हाल उन्होंने भेजा है, और इस बारेमें अपना दुःख प्रकट किया है कि संगीत को पढ़ाई में शामिल करने की बात शिक्षा-विभाग के अधिकारी नहीं सुनते। यह पंडितजी की अनुभव के आधार पर कायम की हुई राय है कि प्रारंभिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में संगीत को जगह मिलनी ही चाहिए। मैं इस सूचना का हृदय से समर्थन करता हूँ। बच्चे के हाथ को शिक्षा देने की जितनी ज़रूरत है, उतनी ही ज़रूरत उसके गले को शिक्षा देने की है। लड़के-लड़िकयाँ के भीतर जो अच्छाइयाँ भरी रहती हैं, उन्हें बाहर लाने और पढ़ाई में भी उनकी सच्ची दिलचस्पी पैदा करने के लिए कवायद, उद्योग, चित्रकारी और संगीत साथ-साथ सिखाने चाहिए।

यह बात मैं मानता हूँ कि इसका अर्थ शिक्षा की पद्धित में क्रांति करने के बराबर है। राष्ट्र के भावी नागरिकों के जीवन-कार्य की पक्की बुनियादी डालनी हो, तो उपरोक्त चार चीजें ज़रूरी हैं। किसी भी प्राथमिक शाला में जाकर देख लीजिए, तो वहाँ लड़के मैले होंगे, व्यवस्था का नाम न होगा और कई बेसुरी आवाजें निकलती होंगी। इसलिए मुझे तो कोई शंका नहीं कि जब कई प्रान्तों के शिक्षामंत्री शिक्षा-पद्धित की नये सिरे से रचना करेंगे और उसे देश की ज़रूरत के मुताबिक बनायेंगे, तब जिन ज़रूरी

बातों की तरफ मैंने ऊपर ध्यान खींचा है उन्हें वे छोड़ नहीं देंगे। मेरी प्राथमिक शिक्षा की योजना में ये चीज़ें शामिल ही हैं। जिस समय बच्चों के सिर से एक किठन विदेशी भाषा सीखने का बोझ उतार दिया जाएँगा, उसी समय ये चीजें आसान हो जाएँगी। [ह., ११-९-'३७, पृ. २५०]

३४. साहित्य में गंदगी

लाहौर के 'यूथ्स वेल्फेयर एसोसियेशन' के अवैतनिक मंत्री का मुझे एक पत्र मिला है। इस पत्र में अश्लीलता और कामुकता से भरे काफ़ी नमूने पाठ्य-पुस्तकों से उद्धृत किये गये हैं, जिन्हें विभिन्न विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रमों में रखा है। ये ऐसे गंदे अवतरण हैं कि पढ़ने में घिन मालूम होती है। हालाँकि ये पाठ्यक्रम की पुस्तकों में से लिये गये हैं, फिर भी इन्हें उद्धृत करके मैं हिरजन के पृष्ठों को गंदा नहीं करूँगा। मैंने जितना भी साहित्य पढ़ा है, उसमें इतनी गंदगी कभी मेरी नज़र से नहीं गुजरी है। इन अवतरणों को निष्पक्ष रीति से संस्कृत, फारसी और हिंदी के किवयों की रचनाओं में से लिया गया है।. . . लेकिन यह एक ऐसा प्रसंग है, जो विद्यार्थियों द्वारा की गई हड़ताल को न सिर्फ उचित ही ठहराता है, बल्कि मेरी राय में उनका यह फर्ज हो जाता है कि ऐसा साहित्य अगर उनके ऊपर जबरन् लादा जाय, तो उसके ख़िलाफ़ वे विद्रोह भी करें।

किसीको चाहे जो पढ़ने की स्वतंत्रता देने का बचाव करना, यह एक बात है। लेकिन बिलकुल जुदी बात है कि नौजवान लड़कों-लड़िकयाँ को ऐसे साहित्य का परिचय कराया जाय, जिससे निश्चय ही उनके काम-विकारों को उत्तेजन मिलता हो और ऐसी चीज़ों के बारेमें वाहियात कुतूहल मन में पैदा हो जिनका ज्ञान आगे चलकर उचित समय पर जोर ज़रूरी हद तक उन्हें ज़रूर हो जायेगा। बुरा साहित्य तब कहीं अधिक हानि पहुँचता है जब कि वह निर्दोष साहित्य के रूप में हमारे सामने आता है और उस पर बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के प्रकाशन की छाप लगी होती है।

उक्त एसोसियेशन ने मुझे लिखा है कि मैं काँग्रेसी मंत्रियों से यह अपील करूँ कि वे पाठ्यक्रम में से ऐसी पुस्तकों या उन अंशों को, जो कि आपत्तिजनक है, हटवा देने के लिए जो भी उपाय संभव हो वह करें। मैं इस लेख द्वारा सहर्ष ऐसी अपील न केवल काँग्रेसी मंत्रियों से बल्कि सभी प्रान्तों के शिक्षामंत्रियों से करता हूँ। निश्चय ही, विद्यार्थियों की बुद्धि के स्वस्थ विकास में तो सभी एकसी दिलचस्पी रखते हैं। [ह. से., १५-१०-'३८, पृ. २२७-७८]

३५. जुआ, वेश्यागृह और घुड़दौड़

जिन प्रान्तों में काँग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ है, वहाँ के लोगों में तरह-तरह की आशाएँ पैदा हुई हैं। उनमें से कुछ बेशक उचित हैं और उन्हें निश्चित रूप से पूरा किया जायेगा। कुछ आशायें पूरी नहीं की जा सकतीं। उदाहरण के लिए, जो लोग जुआ खेलते हैं – दुर्भाग्य से बम्बई प्रदेश में यह बुराई बढ़ती जा रही है – वे मानते हैं कि जुए को कानूनी मान्यता मिल जाएगी और बम्बई जो जगह-जगह चोरी-छिपे जुआघर चलते हैं उनकी अब ज़रूरत नहीं रह जाएगी। आज जहाँ-जहाँ जुआ चलता है वहाँ सबको उसे चलाने की कानूनी मंजूरी – आज जिस प्रकार मर्यादित रूप में है उसी प्रकार – दे दी जाय, तब भी चोरीछिपे चलने वाले गैर-कानूनी जुआघर नहीं रहेंगे, इसका मुझे पूरा विश्वास नहीं है। एक सुझाव यह दिया गया है कि टर्फ क्लब को, जिसके पास आज रेसकोर्स का जुए का ठेका है, एक अतिरिक्त दरवाज़ा खोलने की छूट दी जानी चाहिए, ताकि ग़रीब लोगों को जुआ खेलने की अधिक सुविधा हो जाये। इसके लिए अतिरिक्त आय का लालच बतलाया जाता है।

इसी प्रकार का दूसरा सुझाव यह है कि वेश्यागृहों पर नियंत्रण लगाना चाहिए और उसके लिए परवाने दिये जाने चाहिए। ऐसे सब मामलों में, जैसा कि अकसर होता है, दलील यह की जाती है कि इस दुराचार को कानूनी मान्यता दी जाये या न दी जाय, लेकिन जब वह चलने ही वाला है, तो उसे कानूनी मान्यता देना और वेश्यागृहों में जाने वाले सुरक्षित रहें इस बात की व्यवस्था करना अधिक अच्छा है। मुझे आशा है कि काँग्रेसी मंत्री इस जाल में नहीं फंसेंगे। वेश्यागृहों से निबटने का मार्ग यह है कि स्त्रियाँ दुगुना प्रचार-कार्य करें: (१) एक तो पेट भरने के लिए अपना शील बेचने वाली स्त्रियों के पास जाकर उन्हें समझाना; और (२) जो पुरुष अज्ञान या उद्धततापूर्वक स्त्रियों को 'अबला' कहते हैं , उन्हें शरमाकर बहनों के प्रति अधिक अच्छा व्यवहार करने के लिए समझाना। मुझे याद है कि वर्षों पहले मुक्तिसेना के बहादुर आदमी अपनी जानकी बाजी लगाकर वेश्याओं के मुहल्लों की गलियों के नुक्कड़ पर खड़े रहकर पहरा देते थे। ऐसी कोई चीज बड़े पैमाने पर क्यों नहीं की जानी चाहिए?

रेसकोर्स के जुए के बारेमें तो मैं यही कहूँगा कि जहाँ तक मैं जानता हूँ यह और बहुत सी दूसरी चीजों की तरह पश्चिम से ही यहाँ आई है। और मेरा बस चले तो रेसकोर्स के जुए को आजकल जो कानूनी रक्षण मिला हुआ है उसे भी मैं वापस ले लूँ। १९२० के प्रस्ताव में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि काँग्रेस का कार्यक्रम आत्मशुद्धि का है, इसलिए काँग्रेस किसी भी प्रकार के दुराचार से आय प्राप्त करने का विचार कर ही नहीं सकती। इसलिए मंत्रियों को जो सत्ता प्राप्त हुई है उसका उपयोग वे लोकमत को सही दिशा में मोड़ने और प्रतिष्ठित वर्ग में चल रहे जुए को रोकने के लिए करेंगे। यह उम्मीद करना व्यर्थ है कि भोले अनजान लोग प्रतिष्ठित माने जाने वाले लोगों का अनुकरण नहीं करेंगे। मैंने यह दलील सुनी है कि अच्छे नस्ल के घोड़े की औलाद तैयार करने के लिए घुड़दौड़ ज़रूरी है। शायद इसमें सत्य हो सकता है। लेकिन क्या घुड़दौड़ जुए के बिना संभव नहीं है? या जुआ भी घोड़े की नस्ल सुधारने में मददगार हैं? [ह., ४-९-'३७, पृ. २३३-३४]

घुड़दौड़ में होने वाली लोगों की और पैसे की बरबादी के बारेमें पहले मैं लिख चुका हूँ। लेकिन एक मित्र कड़ा पत्र लिखते हुए कहते हैं कि घुड़दौड़ में खेला जाने वाला जुआ शराबखोरी से कम बुरा नहीं है। इसीलिए इस बारेमें मुझे फिर लिखना पड़ रहा है। वे मित्र आगे लिखते हैं:

"घुड़दौड़ के लिए खास ट्रेनें चलती हैं। वे गांधी टोपी पहनने वाले लोगों से भरी रहती हैं, जो अपने को काँग्रेसी कहते हैं। वे घुड़दौड़ में पैसा बरबाद करते हैं। यह पैसा कहाँ से आता है? आज प्रान्तों में जनता के मंत्रि-मंडल शासन चला रहे हैं; लेकिन वे भी चुपचाप इस बुराई को सहन कर रहे हैं।"

हालाँकि मैं घुड़दौड़ को शराबखोरी जैसा बुरा नहीं मानता, फिर भी बुरी चीज़ों में तुलना क्यों की जाय? कम बुरा होने से जुआ अच्छी चीज़ तो नहीं बन जाता? घुड़दौड़ के सारे रहस्यों को मैं नहीं जानता। मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि अगर जनता की सरकारें इस बुराई को बन्द कर सकती हों, तो इन्हें इसे मिटाना ही चाहिए। [ह. से., २५-८-'४६, पृ. २७४]

३६. कानून-सम्पत व्यभिचार

डॉ. मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने एक और प्रमाण इस बात का पेश किया है कि काँग्रेसी मंत्रि-मंडल से लोग कैसी बड़ी-बड़ी आशाएँ रखते हैं। लोगों को ऐसी आशाएँ करने का अधिकार है। काँग्रेस के विरोधियों तक को यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस जाँच में काँग्रेसी मंत्रि-मंडल खरे उतर रहे हैं। वास्तव में लोकिहतकारी कामों के प्रारंभ में मानों वे एक-दूसरे से होड़ लगा रहे हैं, जिससे उनका शासन-प्रबन्ध देश की सच्ची ज़रूरतों की पूर्ति कर सके। डाँ. मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने मद्रास के मंत्रि-मंडल के नाम एक खुली अपील प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने मंत्रियों से एक ऐसे कानून का मसविदा स्वीकार करने के लिए अनुरोध किया है, जिसके ज़िरए देवदासियों को पतित जीवन के लिए अर्पित कर देना बन्द हो जाएगा। इस कानून के मसविदे को तो मैं अभी ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ पाया हूँ। लेकिन उसकी मूलभूत कल्पना इतनी निर्दोष और आवश्यक है कि यही आश्चर्य होता है कि इस दक्षिणी प्रान्त के कानून की पुस्तक में अब तक उसे कैसे स्थान नहीं मिला। डाँ. मुथुलक्ष्मी से मैं इस विषय में पूर्ण सहमत हूँ कि यह सुधार भी उतना ही ज़रूरी है जितना शराबबन्दी। उन्होंने इस बात की भी याद दिलाई है कि वर्तमान प्रधानमंत्री ने बरसों पहले इस बुराई की बड़े-बड़े शब्दों में निंदा की थी। मैं जानता हूँ कि इस बुराई को दूर करने की कुछ सत्ता उनके हाथों में आने पर प्रधानमंत्री की यह उत्सुकता ज़रा भी कम नहीं हुई है। डाँ. मुथुलक्ष्मी के साथ-साथ मैं भी यह आशा कर रहा हूँ कि चन्द महीनों में ही इस बुराई का कानूनी पृष्ठबल हट जाएगा। [ह. से., २५-९-'३७, प. २५५]

३७. मंत्रि-मंडल और हरिजनों की समस्याएँ भुसावल तालुके में हरिजन-कार्य

श्री ठक्करबापा लिखते हैं :

भुसावल तालुके में बड़े पैमाने पर सुंदर हरिजन-कार्य करने का निश्चय किया गया है। इसके लिए पिछली १४ मई को दो सभाएँ रखी गई थीं। श्री बैकुंठभाई मेहता, श्री गणपतराव तपासे, श्री बर्वे, श्री दास्ताने और मैं – इतने लोग उन सभाओं में उपस्थित थे। आज्ञा है कि गाँवों में हरिजनों के लिए कुएँ खुल जाएँगे। ग्रामवासियों ने अच्छा उत्साह दिखाया है। इससे सफलता की आशा रखी जाती है। लक्षण अच्छे मालूम होते हैं।

यह अच्छी बात है। अच्छे लक्षणों में सबसे पहला तो शायद काँग्रेसी मंत्रि-मंडल का होना ही है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अब ज़बरदस्ती से काम लिया जाएगा। ऐसे कामों में ज़बरदस्ती की कम से कम गुंजाइश होती है। जो बात लोगों की रग-रग में घुस गई है और जिसने धर्म का बाना पहन रखा है, उसे ज़बरदस्ती से नहीं निकाला जा सकता। परन्तु जब राज्य विदेशी होता है, तो उसकी शक्ति दबे हुए लोगों को अधिक दबाने में खर्च होती है; और अगर दबी हुई प्रजा की मदद भी की जाती है, तो वह भी या तो शक्ति के जोर पर की जाती है या अपना स्वार्थ साधने के लिए की जाती है। ऐसी सरकार जो कुछ करती है, वह ज़बरदस्ती से ही करती है। काँग्रेस ने गद्दी जोर आजमा कर नहीं पाई है। उसकी बुनियाद लोकमत पर टिकी हुई है। इसलिए हम आशा रखें कि काँग्रेसी मंत्री लोगों को समझा-बुझा कर उनकी मदद से ही यह काम आगे बढ़ायेंगे। इसका नतीजा यह होना चाहिए कि उनके क्षेत्र में हरिजन-सेवा और ऐसे अन्य काम ज्यादा जोर से चलें और उनमें रुकावट डालने वाली ताक़तें अपने आप शान्त हो जायें। भुसावल जैसे छोटे से तालुके में भी काम स्थिर रूप में चले, तो उसका फल अधिक अच्छा निकलेगा। सारे देश में एक ही साथ सब जगह काम हाथ में नहीं लिया जा सकता। जहाँ कार्यकर्ता अधिक बुद्धिमान और प्रभावशाली होंगे, वहाँ यह काम अधिक तेज़ी से चलेगा। इस छोटे से क्षेत्र में भी खूब अच्छा काम हो सके, तो दूसरे भी उसकी नकल करने लग जाएँगे और सफलता ज़ल्दी मिलेगी। हम आशा रखें कि भुसावल तालुके में ऐसा ही होगा। [ह. से., २३-६-४६, पृ. १९८]

हरिजन और कुएँ

श्री हरदेव सहाय लिखते हैं:

कल ज्ञाम के (४-९-'४६) अपने प्रवचन में हरिजनों के कष्टों की ओर ध्यान दिलाते हुए आपने यह कहा था कि उनको कुओं से पानी नहीं भरने दिया जाता। पिछले २५ वर्षों की सतत कोज्ञिज्ञों के बावजूद हरिजनों का यह कष्ट अभी तक दूर नहीं हो सका है। हरिजनों के कष्टों को आपसे अधिक जानने वाला दूसरा कोई नहीं है।

सेवक की तुच्छ राय में अब काँग्रेसी सरकारों को हरिजनों के सम्बन्ध में अपनी नीति शीघ्र ही घोषित करके इस तरह के कष्टों को कानूनन् दूर करना चाहिए। सेवक आपका ध्यान इस सम्बन्ध में पंजाब के हरिजनों की ओर दिलाना चाहता है। वहाँ कुओं से पानी भरना तो दूर रहा, कुएँ बनाने के लिए ज़मीन भी नहीं मिलती। इसलिए आपसे निवेदन है कि पंजाब सरकार द्वारा हरिजनों को यह अधिकार मिलना चाहिए कि जहाँ उनको सार्वजनिक कुओं से पानी भरने की मनाही हो – जैसी कि है – वहाँ सरकार अपने खर्च से हरिजनों की आबादी के ख़याल से कुएँ बनवा दे, या कम से कम हरिजनों को अपने कुएँ बनाने के लिए ज़मीन दिलाने या देने का नियम बनाए। बहुतेरे गाँव ऐसे हैं जहाँ चाहते हुए भी हरिजन अपने खर्च से कुएँ नहीं बना सकते।

कहीं कहीं सरकार ने कुएँ बनाने शुरू भी किये हैं, पर वे बहुत कम हैं। हरएक प्रान्तीय सरकार का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह अपने सारे नागरिकों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था अवश्य करे।

इन भाई ने जो लिखा है वह ठीक ही है। हरिजनों के लिए पानी की व्यवस्था सरकार की तरफ से होनी ही चाहिए। इसके लिए सिर्फ कुएँ खोदने की जगह देना ही काफ़ी नहीं है, उसमें कुएँ खुदवा देना भी ज़रूरी है। [ह. से., १५-९-'४६, पृ. ३११]

एक बुद्धिमानी का काम

पिछड़ी हुई जातियों के मंत्री श्री जी. डी. तपासे (बम्बई) ने बम्बई की धारासभा द्वारा हाल में ही पास किये गये बम्बई हरिजन (रिमूवल ऑफ सोशियल डिसएबिलिटीज़) एक्ट की एक प्रति मेरे पास भेजी है। उसमें से अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग मैं नीचे देता हूँ:

- इसके विरुद्ध किसी पुराने कायदे-कानून, रीति-रिवाज अथवा परंपरा के होते हुए भी किसी हरिजन को सिर्फ हरिजन होने के कारण –
 - अ. किसी भी कानून के मातहत किसी सरकारी नौकरी में जगह पाने से वंचित नहीं रखा जाएगा; अथवा

- आ. १. ऐसे किसी नदी-नाले, झरने, कुएँ, तालाब, हौज, नल या पानी लेने की अथवा नहाने की दूसरी जगह, मरघट या कब्रस्तान, पाखानों जैसे सार्वजनिक उपयोग के साधन, सड़क या पगदंडी तक जाने या उसका उपयोग करने से रोका नहीं जायगा, जिन पर पहुँचने या जिनका उपयोग करने का अधिकार दूसरी हिंदू जातियों और वर्गों को प्राप्त है।
 - प्रान्तीय सरकार या किसी स्थानीय सत्ता से परवाना पाकर किराये पर चलने वाली सार्वजनिक सवारी तक पहुँचने से या उस पर चढ़ने से रोका नहीं जाएगा;
 - 3. प्रान्त की आय से या स्थानीय सत्ता के फंड से पूरी या आंशिक सहायता देकर बनाये गये मकान, कुएँ, हौज या आम लोगों के उपयोग के पार्क वगैरा स्थानों तक पहुँचने या उनका उपयोग करने से रोका नहीं जाएगा;
 - अाम लोगों के मनबहलाव या खेल-कूद वगैरा के लिए बनाए गए स्थानों पर जाने से रोका नहीं जाएगा;
 - ५. ऐसी किसी दुकान पर जाने से रोका नहीं जाएगा, जहाँ दूसरी हिंदू जातियों को जाने का अधिकार है;
 - ६. ऐसे किसी स्थान पर जाने से या उसके उपयोग से रोका नहीं जाएगा, जो हिंदुओं के किसी खास वर्ग या समूह के लिए नहीं बल्कि सारे हिंदुओं के लिए अलग कर दिया गया है या अलग रखा गया है;
 - किसी खास वर्ग या समूह के लिए नहीं बल्कि आम हिंदू जनता के भले के लिए
 स्थापित किये गए धर्मादा ट्रस्ट का लाभ उठाने से रोका नहीं जाएगा।
- 3. अ. तीसरे विभाग की उपधारा १, ३, ४, ५, ६ में बताये गये स्थानों में काम करने वाला कोई व्यक्ति, या उपधारा-२ में बताई गई कोई सवारी रखने वाला कोई व्यक्ति, या विभाग-३ की धारा-ब में बताये गये स्थानों में काम करने वाला कोई व्यक्ति किसी हरिजन पर कोई प्रतिबंध

- नहीं लगा सकता अथवा ऐसा कोई काम नहीं कर सकता, जिससे यह मालूम हो कि हरिजनों के ख़िलाफ़ कोई भेदभाव किया जा रहा है।
- ४. किसी बात पर निर्णय देने या किसी आदेश पर अमल करने में कोई अदालत किसी हरिजन के विरुद्ध, सिर्फ उसके हरिजन होने के कारण, ऐसी किसी प्रथा या चलन को नहीं मान सकती, जो उस पर किसी तरह की सामाजिक अयोग्यता लादता हो।
- ५. किसी कानून के मातहत अपना कामकाज या फर्ज अदा करने वाली कोई स्थानीय सत्ता विभाग-४ में कहे गये किसी रीति-रिवाज को नहीं मानेगी।
- ६. जो भी कोई -
 - क. हरिजन होने के नाते किसी आदमी को तीसरे विभाग की (आ) धारा की दूसरी उपधारा में बताई गई सवारी अथवा पहली, तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी उपधाराओं में बताये गये किसी स्थान पर जाने से या उसका उपयोग करने से रोकता है अथवा उसी विभाग की (आ) धारा की सातवीं उपधारा में बताये गये किसी धर्मादा ट्रस्ट का लाभ उठाने से रोकता है, या रोकने के लिए किसीको उकसाता है; अथवा
 - ख. किसी हरिजन पर किसी प्रकार की कोई रोक लगाता है, और उसके ख़िलाफ़ कोई भेदभाव प्रकट करने वाला कोई काम करता है, या किसी व्यक्ति को ऐसा प्रतिबंध लगाने के लिए उकसाता है, या इसी तरह का और कोई काम करता है, तो उसे अपराध सिद्ध हो जाने पर तीन माह की कैद की सजा दी जाएगी, या उस पर २०० रु. जुर्माना किया जाएगा, या दोनों सजायें दी जाएँगी।
- ७. अगर ऐसा कोई आदमी, जिसे इस एक्ट के मातहत एक बार अपराध करने पर सजा मिल चुकी है, , दुबारा वही अपराध करेगा, तो अपराध सिद्ध होने पर उसे ६ महिने की कैद की सजा या ५०० रु. जुर्माने की सजा या दोनों सजायें दी जाएगी। और अगर वही आदमी तीसरी बार या इससे अधिक बार अपराधी सिद्ध होगा, तो उसे १ साल की कैद की सजा दी जाएगी या उससे १००० रु. जुर्माने के वसूल किये जाएँगे।"

इस बिल को तैयार करने वाले मित्र ने कृपा करके अपने इस भाषण की एक प्रति भी मेरे पास भेजी है, जो उन्होंने धारासभा में बिल पेश करते समय दिया था। उसके कुछ अत्यधिक दर्दभरे हिस्से मैं नीचे देता हूँ:

यह छुआछूत एक प्रकार का घोर अज्ञान है। जैसे ही एक हरिजन उत्पन्न होता है, वह अछूत मान लिया जाता है।... वह अछूत पैदा होता है, जीवन भर अछूत बना रहता है और अंत में अछूत के रूप में ही मर जाता है।... वह चाहे कितना ही साफ-सुथरा हो, कितना ही बुद्धिमान हो, दूसरों से कितना ही श्रेष्ठ हो, लेकिन नामधारी कट्टर हिंदुओं के लिए वह कभी श्रेष्ठ नहीं होता। सबसे बूरी बात तो यह है कि मर जाने पर भी हरिजन की मिट्टी और राख को दूसरों की मिट्टी और राख से मिलने नहीं दिया जाता। अछूतों के कष्ट इस बात से और ज्यादा बढ़ गये हैं कि सिर्फ सवर्ण हिंदू ही नहीं, ईसाई, मुसलमान और दूसरे लोग भी उनसे अछूतों जैसा ही व्यवहार करते हैं।... मेरे मन यह बिल हरिजनों को कुछ बुनियादी, सामाजिक और नागरिक अधिकारों के उपयोग के लिए एक सनद या अधिकार-पत्र देता है।

यह ध्यान देने की बात है कि उपरोक्त बिल हिंदुओं की ओर से बिना किसी विरोध के पास हो गया। कानून को सफलता से अमल में लाने के लिए यह एक शुभ आरंभ है। परन्तु उसके बारेमें बहुत बड़ी आशा बना लेना भी ठीक नहीं होगा। हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम जोरों से ताली बजाकर प्रस्ताव पास कर देते हैं और फिर उन्हें रद्दी की टोकनी में फेंक देते हैं। इस कानून को पूरी तरह अमल में लाने के लिए सरकार और सुधारकों को ज्यादा से ज्यादा सावधानी रखनी होगी।

इस सचाई की ओर से आँख मूंद लेने में कोई लाभ नहीं कि जिस घोर अज्ञान की ओर बिल बनाने वाले मित्र ने इज्ञारा किया है, उसका आज भी हिंदुस्तान में बोलबाला है। सिर्फ अछूतपन के मामले में ही नहीं, परन्तु दूसरी बातों में भी यही स्थिति है। सुधारकों को चाहिए कि वे इस भूत पर नज़र रखें और जिन पर वह सवार है उनके साथ सावधानी, सज्जनता और चतुराई से काम लें। [ह. से., ३-११-'४६, पृ. ३७६-७७]

३८. आरोग्य के नियम

श्री व्रजलाल नेहरू मेरे जैसे ही खब्ती हैं। उन्होंने दैनिक अखबारों में एक पत्र लिखा है, जिसमें आरोग्य-मंत्री राजकुमारी अमृतकुंवर के इस कथन की तारीफ़ की है कि हमारी वीमारियाँ अपने अज्ञान और लापरवाही से पैदा होती है। उन्होंने यह सूचना की है कि आज तक आरोग्य-विभाग का ध्यान अस्पताल वगैरा खोलने पर ही रहा है। उसके बदले राजकुमारी ने जिस अज्ञान का उल्लेख किया है, उसे दूर करने की ओर इस विभाग को ध्यान देना चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाया है कि इसके लिए नया विभाग खोलना चाहिए। विदेशी सत्ता की यह एक बुरी आदत थी कि उसे जो सुधार करना होता उसके लिए वह एक नया विभाग और नया खर्च खड़ा कर देती थी। लेकिन हम क्यों बुरी आदत की नकल करें? बीमारियों का इलाज करने के लिए अस्पताल भले रहें, लेकिन उन पर इतना वजन क्यों दिया जाय? घर बैठे आरोग्य की रक्षा कैसे की जा सकती है, इसकी तालीम लोगों को देना आरोग्य-विभाग का पहला काम होना चाहिए। इसलिए आरोग्य-मंत्री को यह समझना चाहिए कि उनके अधीन जो डॉक्टर और कर्मचारी काम करते हैं, उनका पहला कर्तव्य है जनता के आरोग्य की रक्षा और उसकी सँभाल करना।

श्री व्रजलाल नेहरू की एक सूचना ध्यान देने योग्य है। वे लिखते हैं कि बीमारियों के इलाज के बारेमें ढेरों पुस्तकें देखने में आती हैं, लेकिन कुदरती इलाज करने वालों के सिवा डिग्रीधारी डॉक्टरों ने आरोग्य के नियमों के बारेमें कोई पुस्तक लिखी हो ऐसा कभी सुना नहीं गया। इसलिए श्री नेहरू यह सूचना करते हैं कि आरेग्य-मंत्री प्रसिद्ध डॉक्टरों से ऐसी पुस्तकें लिखवायें। ये पुस्तकें लोगों की समझ में आने लायक भाषा में लिखी जाएँ, तो ज़रूर उपयोगी सिद्ध होगी। शर्त यही है कि ऐसी पुस्तकों में तरह तरह के टीके लगाने की बातें नहीं होनी चाहिए। आरोग्य के नियम ऐसे होने चाहिए जिनका पालन डॉक्टरों और वैद्यों की मदद के बिना घर बैठे हो सके। अगर ऐसा न हो तो कुएँ में से निकल कर खाई में गिरने जैसी बात होना संभव है। [ह. से., २८-१२-'४७, पृ. ४१६]

३९. लाल फीताशाही

मंत्री दफ्तरी घिसघिस में इस तरह जकड़े हुए हैं कि उन्हें सोचने विचारने का समय ही नहीं मिलता। उन्हें तो इतनी भी फुरसत नहीं कि वे मुझसे मुलाकात और विचार-विनिमय करें कि क्या अच्छा है और कया बुरा। उनकी स्थिति जानते हुए मुझे भी यह हिम्मत नहीं होती कि उन्हें पत्र ही लिख दूँ। *हरिजन* के स्तंभों द्वारा तो मुझे उनसे बात ही नहीं करनी चाहिए।. . .

अगर मंत्री अपनी नई ज़िम्मेदारियों से निबटना चाहते हैं, तो उन्हें दफ्तरी तरीकों - लाल फीताशाही - को खतम करने की कला खोज़नी चाहिए। पुरानी शासन-व्यवस्था लाल फीताशाही के द्वारा और उस पर ही जीवित रह सकती थी। लेकिन वह नई व्यवस्था का गला घोंट देगी। मंत्रियों को लोगों से ज़रूर मिलना चाहिए, जिनकी सद्भावना से ही वे इन पदों पर आसीन रह सकते हैं। उन्हें छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी शिकायतें ज़रूर सुननी चाहिए। लेकिन उनके पास जितनी शिकायतें और चिट्ठियाँ आती हैं, उन सबका और अपने फैसलों का रिकार्ड उन्हें ज़रुरत नहीं। उन्हें अपने पास केवल उतने ही काग़ज़ात रखने चाहिए, जिनसे उनकी याददास्त ताजी रहे और काम का सिलसिला बना रहे। विभागीय पत्रव्यवहार बहुत कम हो जाना चाहिए। . . वे अपने उन लाखों मालिकों के प्रति जवाबदार हैं, जो न तो यह जानते हैं कि दफ्तरी कार्रवाई का ढंग क्या है और न जिन्हें उसके जानने की चिन्ता है। उनमें से कितने ही लोग तो लिख और पढ़ भी नहीं सकते। पर वे चाहते हैं कि उनकी प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी हों। काँग्रेसजनों ने उन्हें यह सोचना सिखा दिया है कि शासन-सूत्र काँग्रेस के हाथ में आते ही हिंदुस्तान भर में न तो कोई भूखा रहेगा और न तन ढंकने की इच्छा रखने वाला कोई नंगा रहेगा। यदि मंत्री उस विश्वास के साथ न्याय करना चाहते हैं, जिसका उन्होंने अपने ऊपर भार लिया है, तो उन्हें इस प्रकार की समस्याएँ सुलझाने के लिए सोचने-विचारने में समय देना चाहिए।

अगर वे तथाकथित गांधीवाद को मानते हों, तो उन्हें जानना चाहिए कि वह वाद क्या है; इसका पता उन्हें मुझसे नहीं बल्कि आत्म-निरीक्षण करके लगाना चाहिए। शायद मैं भी हमेशा यह नहीं जान सकता कि वह क्या है। लेकिन मैं इतना ज़रूर मानता हूँ कि अगर उसकी उचित रूप में खोज़ की जाय और उसका अनुसरण किया जाय, तो वह इतना मौलिक और क्रांतिकारी है कि भारत की सभी वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है।

काँग्रेस एक क्रांतिकारी संस्था है। लेकिन उसकी क्रांति संसार की उन सभी राजनीतिक क्रांतियों से अलग है, जिनका हाल इतिहास में लेखबद्ध है। जहाँ पहली क्रांतियों का आधार हिंसा थी, वहाँ काँग्रेस की क्रांति का आधार जान-बूझकर अहिंसात्मक रखा गया है। अगर यह भी हिंसात्मक होती, तो शायद क्रांति का पुराना रूप और रिवाज बहुत-कुछ उसी तरह कायम रह जाता। लेकिन काँग्रेस ने बहुत से पुराने तरीकों को निषिद्ध मान लिया है। सबसे बड़ा परिवर्तन पुलिस और सेना का है। मैंने यह स्वीकार किया है कि जब तक काँग्रेसजन पदासीन हैं और वे व्यवस्था की सुरक्षा के लिए शान्तिपूर्ण उपाय नहीं खोज़ लेते, तब तक इन दोनों का प्रयोग उन्हें करना ही होगा। लेकिन मंत्रियों के सामने सदा ही यह प्रश्न रहना चाहिए कि क्या इन दोनों चीजों के प्रयोग का परित्याग नहीं किया जा सकता? अगर नहीं तो क्यों? यदि जाँच करने पर भी – यह जाँच पुराने तरीकों से नहीं की जानी चाहिए, जो कि खींच ले और प्राय: व्यर्थ सिद्ध होते हैं, बल्कि बिना खर्च के और साथ ही पूर्ण तथा परिणामकारी ढंग से होनी चाहिए – उन्हें पता चले कि पुलिस और सेना का प्रयोग किये बिना वे राजकाज नहीं चला सकते, तो अहिंसा का यह तक़ाज़ा है कि काँग्रेस को मंत्रीपद त्याग देना चाहिए और पुन वनवास में उस दुर्लभ 'अमृत' की खोज़ करनी चाहिए। [ह. से., १७-१२-'३८, पृ. ३५२-५३]

विभाग- ८: मंत्रियों के वेतन

४०. व्यक्तिगत लाभ की आशा न रखें

काँग्रेस सरकार में जो भी पद ग्रहण किया जाय, सेवा की भावना से ही ग्रहण किया जाय; व्यक्तिगत लाभ की उसमें ज़रा भी आशा नहीं रखनी चाहिए। अगर कोई २५ रु. मासिक लेकर साधारण जीवन-यापन में संतुष्ट है, तो मंत्री बनकर या कोई भी सरकारी पद पाकर २५० रु. पाने की आशा रखने का उसे कोई अधिकार नहीं। और ऐसे बहुत से काँग्रेसजन हैं, जो सेवा संस्थाओं में सिर्फ २५ रु. मासिक ले रहे हैं और वे किसी भी मंत्रीपद की ज़िम्मेदारी बड़ी योग्यता के साथ उठा सकते हैं। बंगाल और महाराष्ट्र में ऐसे योग्य आदमी बहुत मिलेंगे, जिन्होंने सार्वजनिक सेवा के लिए अपने आपको अर्पण कर दिया है। सिर्फ गुजारे भर के लिए लेकर ये लोग देश की सेवा कर रहे हैं। उन्हें कहीं भी रखा जाय, वे अपने को हर जगह सुयोग्य साबित कर सकते हैं। लेकिन उन्होंने अपने लिए जो सेवाक्षेत्र चुन लिए हैं, उनका त्याग करने के लिए उन्हें प्रलोभन नहीं दिया जाएगा और उन्हें स्वेच्छा से चुने हुए अपने अमूल्य अज्ञातवास से घसीट कर बाहर लाना गलत होगा। यह सारे संसार के लिए सत्य है, और इस देश के लिए शायद और भी ज्यादा सत्य है, कि आम तौर पर अच्छे से अच्छे और सबसे उत्तम दिमाग के आदमी मंत्री नहीं बनते, न वे सरकारी पद ही स्वीकार करते हैं।

हो सकता है कि अच्छे से अच्छे और सबसे ऊँचे दिमाग के आदमी काँग्रेसी सरकारें चलाने के लिए हमेशा न मिलें; परन्तु मंत्री और दूसरे पदों पर आसीन काँग्रेसजन स्वार्थरहित, योग्य और निर्दोष चित्र के न होंगे, तो स्वराज्य हमारे लिए बहुत दूर का स्वप्न हो जाएगा। अगर काँग्रेस कमेटियाँ नौकरियाँ प्राप्त करने के अखाड़े बन जाएँ, जिनमें सबसे अधिक हिंसक आदमी ही बाजी मार सकें, तब तो ऐसे व्यक्तियों के मिलने की संभावना कम ही रहेगी। [ह. से., ३-९-'३८, पृ. २२८-२९]

४१. वेतनों का स्तर

प्रान्तीय धारासभाओं के सदस्य और मंत्री सच्चे लोकसेवकों की तरह अपनी-अपनी जगह काम करने पहुँच गये हैं। अंग्रेज सरकार ने अब तक इन जगहों के लिए जो वेतन दिए हैं, वैसे ही वेतन वे लोग नहीं ले सकते। अगर उन्होंने लिये तो इसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ेगी। यह भी कोई ज़रूर नहीं कि अमुक

वेतन उन्हें देना तय किया गया है, इसलिए उनमें से हर कोई वेतन ले ही। वेतन का जो पैमाना निश्चित होता है, उससे तो वेतन की मर्यादा ही बँधती है – यानी उससे अधिक वेतन कोई नहीं ले सकता। लेकिन पैसेदार लोगों के लिए तो यह एक हँसी की बात होगी कि वे पूरा या थोड़ा भी वेतन लें। वेतन तो उन्हीं लोगों के लिए है, जो बिना कुछ लिये आसानी के साथ अर्थात् सेवाभाव से काम नहीं कर सकते। वे दुनिया के ग़रीब से ग़रीब लोगों के प्रतिनिधि हैं। उन्हें मिलने वाली पाई-पाई ग़रीबों की कमाई से आती है। वे इस महत्त्व की बात को ध्यान में रखें और उसके अनुसार रहें और व्यवहार करें। [ह. से., १४-४- '४६, पृ. ८९]

४२. मंत्रियों का वेतन

प्रം – इस बार काँग्रेस के बहुमत वाले प्रान्तों में मंत्रियों की वेतनवृद्धि किन सिद्धांतों पर की जा रही है? क्या कराची वाला काँग्रेस प्रस्ताव आज की परिस्थिति में लागू नहीं होता? यदि महँगाई के प्रभाव में आकर ऐसा किया गया है, तो क्या प्रान्तों के बजट में ऐसी गुंजाइश है कि प्रत्येक सरकारी नौकर का वेतन तिगुना किया जा सके? यदि नहीं, तो क्या यह उचित है कि मंत्री ५०० रुपये से १५०० कर लें और एक अध्यापक और चपरासी को यह उपदेश दिया जाये कि वह अपना निर्वाह १२ और १५ रुपये माहवार में करे और शासन-प्रबन्ध में कोई अस्थिरता इसलिए उत्पन्न न करे कि काँग्रेस शासन चला रही है?

उ॰ – प्रश्न बिलकुल ठीक है कि मंत्रियों को ५०० रुपये क्यों और चपरासी या शिक्षकों को १५ रुपये क्यों? लेकिन प्रश्न उठाने से ही वह हल नहीं हो जाता। ऐसे अंतर का सिलसिला सनातन जेसा है। हाथी को मन क्यों और चींटी को कण क्यों? इस प्रश्न में ही इसका उत्तर समाया हुआ है। जितनी जिसकी ज़रुरत है, ईश्वर उसे अतना दे देता है। मनुष्य की ज़रुरत हाथी और चींटी की तरह स्पष्ट हो सके, तो कोई शंका ही न उठे। अनुभव तो हमें यही बताता है कि सब मनुष्यों की आवश्यकता एक सी नहीं हो सकती, जैसे सब चींटियों की या सब हाथियों की एक सी होती हैं। भिन्न-भिन्न लोगों और भिन्न-भिन्न जातियों की आवश्यकताएँ अलग-अलग रहती हैं। इसलिए आज तो जो अंतर है उसे कम से कम करने का शान्ति से आंदोलन करें, लोकमत बनावें और एक आदर्श सामने रखकर उसकी ओर कूच करें। ज़बरदस्ती से या सत्याग्रह के नाम पर दुराग्रह करके हम परिवर्तन नहीं करा सकेंगे। मंत्रीगण हम लोगों में से हैं। मंत्री बनने से पहले भी उनकी आवश्यकताएँ चपरासियों जैसी नहीं थीं। मैं चाहुँगा कि चपरासी

मंत्रीपद के लायक बनें और तब भी अपनी आवश्यकताएँ चपरासी जितनी ही रखें। इतना समझ लें कि कोई मंत्री निश्चित मर्यादा तक वेतन लेने के लिए बँधा हुआ नहीं है।

प्रश्नकार की एक बात सोचने लायक ज़रूर है। क्या चपरासी १५ रुपये में बिना रिश्वत लिये अपना और कुटुंब का निर्वाह कर सकता है? यदि नहीं, तो उसको काफ़ी मिलना ही चाहिए। इलाज यह है कि यथासंभव हम सब अपने-अपने चपरासी बनें और इतने पर भी जो चपरासी आवश्यक हों उन्हें उनकी ज़रूरत के अनुसार वेतन दें और इस तरह मंत्री और चपरासी के जीवन में जो बड़ा अंतर है उसे मिटायें।

मंत्रियों का वेतन ५०० से १५०० रुपये क्यों हुआ, यह भिन्न प्रश्न है। लेकिन मूल प्रश्न की तुलना में यह छोटा है। मूल प्रश्न यदि हल हो सके, तो छोटा प्रश्न अपने आप हल हो जायेगा। [ह. से., २१-४- '४६, पृ. ९६]

४३. मंत्रियों के वेतन में वृद्धि

थोड़े दिन हुए मैंने हिरजन में दबी कलम से एक पैरा मंत्रियों की वेतन-वृद्धि के बारेमें लिखा था। उसका मुझे बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा है। बहुत लम्बे-लम्बे पत्र मुझे पढ़ने पड़ते हैं, जिनमें मेरी सावधानी पर दुःख प्रकट किया जाता है, और मुझे समझाया जाता है कि मैं अपनी राय बदल दूँ। मंत्रियों के वेतन पहले से ही बहुत ज्यादा हैं। इनको और भी बढ़ाना कहाँ तक उचित है, जब कि ग़रीब चपरासियों और क्लकों को सिर्फ इतनी तरक्की मिली है, जिसमें उनका गुजारा भी नहीं हो पाता। मैंने अपनी टिप्पणी को फिर पढ़ा है और मेरा दावा है कि जो कुछ पत्रलेखक चाहते हैं वह सब उस छोटी-सी टिप्पणी में आ गया है। पर कोई गलतफहमी न हो, इसलिए उसका अर्थ मैं और स्पष्ट कर देता हूँ।

मुझे ताना मिला है कि मैंने कराची वाले प्रस्ताव के बारेमें सोचा ही नहीं। मंत्रियों को जो कम वेतन लेने चाहिए वह सिर्फ इसलिए नहीं कि काँग्रेस ने एक प्रस्ताव पास करके ऐसा आदेश दिया है, बल्कि उसके लिए इससे बहुत ऊँचा कारण है। खैर, कुछ भी हो, जहाँ तक मैं जानता हूँ, काँग्रेस ने उस प्रस्ताव को कभी बदला नहीं, और वह आज भी उतना ही लागू होता है जितना कि पास होने के समय लागू होता था।

मैं यह नहीं कहता कि वेतनों में की गई वृद्धि ठीक है। लेकिन मैं मंत्रियों की बात सुने बिना इसको बुरा-भला नहीं कह सकता। टीका करने वालों को यह समझ लेना चाहिए कि मेरा उन पर या अपने सिवा किसी पर भी कोई अधिकार नहीं है। न ही मैं कार्यसमिति की सारी बेठकों में हाजिर होता हूँ। जब सभापित चाहते हैं तभी मैं वहाँ जाता हूँ। मैं तो सिर्फ अपनी राय दे सकता हूँ, फिर उसकी कीमत जो कुछ भी हो। और उसकी कीमत तभी हो सकती है जब सोच-विचार कर हकीकतों पर आधार रखकर राय दी जाय।

अमीर और ग़रीब में, ऊँची नौकरियों और छोटी नौकरियों में भयानक अंतर का प्रश्न एक अलग विषय है। इसके लिए बहुत सोच-विचार की ज़रूरत है और परिवर्तन जड़ से करना पड़ेगा। थोड़े मंत्रियों और उनके सचिवों के वेतन के सिलसिले में लगे हाथ इसका निपटारा नहीं हो सकता। दोनों बातों का अपने अपने महत्त्व के अनुसार निर्णय होना चाहिए। मंत्रियों के वेतन का प्रश्न तो मंत्री आप ही हल कर सकते हैं। दूसरा प्रश्न इससे कहीं अधिक व्यापक है और उसमें बहुत बारीकी से जाँच-पड़ताल करने की ज़रूरत होगी। मैं तो हमेशा यह मानने को तैयार हूँ कि मंत्रियों को फौरन ही अपने-अपने प्रान्त में इस काम को अपने हाथ में लेना चाहिए और सबसे पहले नीची नोकरी वालों के वेतनों पर विचार करके, जहाँ ज़रूरी हो, वेतन बढ़ा देने चाहिए। [ह. से. ९-६-'४६, पृ. १७६]

४४. हम ब्रिटिश हुकूमत की नकल न करें

१५ अगस्त का दिन आया और चला गया। सारे हिंदुस्तान के लोगों ने बड़ी धूमधाम से और अनोखे उत्साह से स्वतंत्रता-दिवस मनाया। उनका यह सोचना ठीक ही था कि साम्राज्यवादी हुकूमत के नीचे उन्हें जितने भी भयंकर कष्ट और यातनायें सहनी पड़ीं, वे सब अब पुराने जमाने की निशानियाँ बन जाएँगी। जीवन में पहली बार गाँव के ग़रीब से ग़रीब किसानों की निराशापूर्ण आँखें खुशी से चमक उठीं। इस मौके पर शहर के मजदूरों के उदास दिल भी खुशी से उछलने लगे। इस विशाल देश के हरएक दबे और कुचले हुए पुरुष और स्त्रीने हार्दिक उत्साह और उमंग के साथ स्वतंत्रता-दिवस मनाया, क्योंकि बरसों के दुःख-दर्द और कुरबानियों के बाद आख़िर हिंदुस्तान के पराधीन मानव को आशा की झलक दिखाई दी – उसे अधिक अच्छे दिनों की और अपना बोझ हलका होने की भनक सुनाई पड़ी।

लेकिन स्वतंत्रता-दिवस की खुशियों के बाद ही नई दिल्ली से एक सरकारी सूचना निकली, जिसमें प्रान्तों के गवर्नरों के निश्चित किये हुए वेतनों और भत्तों की घोषणा की गई है। भोलीभाली जनता ने यह आशा लगा रखी थी कि साम्राज्यवादी हुकूमत के साथ ही ऊँचे अधिकारियों के बड़े-बड़े वेतनों के भार से दबा हुआ शासन-तंत्र भी ख़तम हो जाएँगा, जो गुलाम हिंदुस्तान को साम्राज्यवाद के फंदे में फँसाए रखने के लिए ही पैदा किया गया था। आज से पहले देश के प्रत्येक राजनीतिक नेता ने, प्रत्येक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ने वाइसरॉय, केन्द्रीय मंत्रियों और प्रान्तीय गवर्नरों आदि सरकारी अधिकारियों को दिये जाने वाले बड़े-बड़े वेतनों और उनके भत्तों की स्पष्ट शब्दों में कड़ी निंदा की थी। इस बारेमें काँग्रेस ने कई प्रस्ताव पास किये थे। कराची-काँग्रेस के प्रसिद्ध प्रस्ताव में सरकार के ऊँचे से ऊँचे अधिकारी का वेतन ५०० रु. माहवार निश्चित किया गया था। लेकिन आज शायद वह सब भुला दिया गया है और गवर्नरों का वेतन ५००० रु. माहवार निश्चित किया गया है।

सबसे पहले हम यह देखें कि दूसरे देशों में ऐसे ऊँचे अधिकारियों को क्या वेतन दिया जाता है। दुनिया के सबसे धनी राष्ट्र के सबसे धनी राज्य न्यूयार्क में गवर्नर को १० हज़ार डालर वार्षिक दिये जाते हैं, जो हमारे हिसाब से तीन हज़ार रुपये माहवार से भी कम होते हैं। अमेरिका के आइड़ाहो नामक राज्य के गवर्नर का वेतन १५०० रु. माहवार से भी कम होता है। अमेरिका का एक दूसरा राज्य मैरीलैण्ड अपने गवर्नर को १००० रु. माहवार से कुछ ही ज्यादा वेतन देता है। इलिनोइस का, जिसकी आबादी उड़ीसा या आसाम के बराबर है, गवर्नर ३ हज़ार रुपये से कुछ ही ज्यादा पाता है। दक्षिण अफ्रिका के यूनियन में प्रान्तों के शासकों को, जो हमारे हिंदुस्तानी गवर्नरों के दरजे के होते हैं, हर माह २२०० से २७०० रु. के बीच वेतन दिया जाता है। आस्ट्रेलिया में क्वीन्सलैण्ड के गवर्नर को ३ हज़ार रुपये माहवार से कुछ ही ऊपर वेतन मिलता है। इसे सब कोई जानते हैं कि स्टेलिन को ३५० रु. माहवार वेतन दिया जाता था। ग्रेट ब्रिटेन के मंत्रि-मंडल के मंत्रियों के वेतन की तुलना हमारे गवर्नरों के वेतनों से नहीं की जा सकती, क्योंकि वे लोग अपने पूरे देश पर शासन करते हैं। फिर भी उनका वेतन हिंदुस्तानी गवर्नर के वेतन से ज्यादा नहीं होता। यह ध्यान में रखना चाहिए कि ऊपर बताये देशों के इन अधिकारियों को अपने वेतनों में से इनकम टैक्स भी देने होते हैं। इसलिए बिना किसी विरोध के यह कहा जा सकता है कि हिंदुस्तानी गवर्नर का वेतन दुनिया में सबसे ऊँचा है।

अब हम इन बातों पर दूसरे पहलू से विचार करें। हिंदुस्तान का गवर्नर अपने प्रान्त का प्रथम श्रेणी का सेवक है। इसलिए हम इस सेवक की आय की उसकी स्वामिनी (जनता) की आय से तुलना करें। दूसरे विश्वयुद्ध से पहले प्रत्येक हिंदुस्तानी की औसत सालाना आय ६५ रु. कूती गई थी। अगर हम एक सामान्य किसान या मज़दूर की औसत सालाना आय का हिसाब लगायें, तो वह इससे बहुत कम होगी। प्रो. कुमारप्पा के हिसाब से यह आय केवल १२ रु. थी और प्रिन्सिपाल अग्रवाल ने यह सालाना रकम १८ रु. निश्चित की है। इन सारे औसतों का हिसाब लगाने पर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि एक हिंदुस्तानी गवर्नर की आय अपने स्वामियों की आय से हज़ार गुना ज्यादा होती है। और अगर हम नीचे से नीचे वर्ग के लोगों की, जिनकी हिंदुस्तान में बहुत ही बड़ी संख्या है, सालाना आय को लें, तो सेवक और स्वामियों की आय के बीच का यह भेद ४ हज़ार गुना तक पहुँच जाता है। अमेरिका में भी, जिसे सबसे बड़ा पूँजीवादी देश कहा जाता है और जहाँ सबसे अधिक आर्थिक असमानता पाई जाती है, एक गवर्नर की आय किसी अमेरिकन नागरिक की औसत आय से केवल २० गुना ज्यादा होती है।

दूसरे प्रकार की तुलना इस समस्या पर और अधिक प्रकाश डालेगी। प्रान्तों के शासन-प्रबन्ध में चपरासियों का नंबर सरकारी दफ्तरों में सबसे नीचा होता है। मध्यप्रान्त में एक चपरासी का मासिक वेतन ११ रु. है। दूसरे प्रान्तों में वह कुछ कम या ज्यादा हो सकता है। जब एक गवर्नर और चपरासी के वेतन में इतना बड़ा फर्क हो, तब प्रान्त का पूरा शासनतंत्र आम जनता के भले के लिए सामाजिक कल्याण और उन्नत व्यवस्था स्थापित करने में उत्साह से एक व्यक्ति की तरह कैसे काम कर सकता है? थोड़े में, हम चाहे अपनी नीची से नीची राष्ट्रीय आय को लें, नीचे से नीचे चपरासी के वेतन को लें या चोटी पर खड़े गवर्नर के वेतन को लें, हमें दुनिया में हिंदुस्तान की मिसाल कहीं नहीं मिलेगी।

जब प्रान्त के गवर्नरों को इतनी बड़ी-बड़ी रकमें दी जाती हैं तब हम दूसरे ऊँचे वेतन पाने वाले सरकारी अधिकारियों के वेतन घटाने के बारेमें कैसे सोच सकते हैं? अगर ऊँचे वेतन घटाये नहीं जा सकते और नीचे वेतन बढ़ाये नहीं जा सकते, तो प्रान्तों के अर्थमंत्री सारी प्रजा को शिक्षा देने या डॉक्टरी सुविधायें देने वगैरा की योजनाओं को अमल में लाने के लिए पैसे कहाँ से लायें? हम इस भ्रम में न रहें कि आज़ादी के आते ही कल की भयंकर ग़रीबी वाला राष्ट्र थोड़े ही समय में धनी और उन्नत राष्ट्र बन जाएगा, तािक वह अपने गवर्नरों और दूसरे ऊँचे अधिकारियों को ऊँचे-ऊँचे वेतन दे सके। सोिवयट

यूनियन को अपनी राष्ट्रीय आय बढ़ाने के लिए तीन पंचवर्षीय योजनायें बनाने की ज़रूरत पड़ी। बम्बई-योजना बनाने वाले लोगों ने भी १०० अरब रुपये की पूँजी लगाने पर १५ वर्ष के अंत में हर हिंदुस्तानी की औसत सालाना आय १३० रुपये ही कूती है। इसलिए एक ही दिन में हिंदुस्तान के धनी बन जाने के सुनहले सपने जितनी जल्दी छोड़ दिये जाएँ उतना ही हम सबके लिए अच्छा होगा। सत्य बड़ा कठोर है और हमें ईमानदारी के साथ उसका पूरा सामना करना चाहिए। हम अपने शासकों और अधिकारियों को इतनी बड़ी-बड़ी रकमें नहीं दे सकते।

टी. के. बंग

[यद्यपि मैं प्रो. बंग द्वारा दिये हुए आंकड़ों के बारेमें निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता; फिर भी उन्होंने हिंदुस्तान के गवर्नरों और दूसरे ऊँचे अधिकारियों के बड़े-बड़े वेतनों के बारेमें और हमारी सरकारों द्वारा अपने नौकरों को दिये जाने वाले ऊँचे से ऊँचे और नीचे से नीचे वेतनों की भयंकर विषयता के बारेमें जो कुछ लिखा है; उसका समर्थन करने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है।

- **मो. क. गांधी]** [ह. से., ९-११-'४७, पृ. ३३७-३३८]

विभाग- ९: मंत्रियों के लिए आचार-संहिता

४५. स्वतंत्र भारत के मंत्रियों से

[ता. १५-८-'४७ के दिन बंगाल के मंत्रीगण गांधीजी को प्रणाय करने आये थे। उनसे गांधीजी ने कहा:]

आप सब आज से काँटों का ताज सिर पर रखते हैं। सत्ता का पद बूरी चीज है। इसलिए आप शासन में विवेकपूर्ण व्यवहार करना। आप सबको ज्यादा से ज्यादा सत्य-परायण, अहिंसा-परायण, नम्न और सहनशील होना चाहिए। अंग्रेजों की हुकूमत चलती थी, तब भी आपकी कसौटी हुई थी; फिर भी वह इतनी कड़ी नहीं थी। परन्तु अब तो लगातार आपकी कसौटी ही कसौटी है। वैभव के जाल में न फँसना। ईश्वर आपकी मदद करे ! आपको गाँवों और गरीबों का उद्धार करना है। [कलकत्ते का चमत्कार, (१९५६), पृ. ४२]

४६. मंत्रियों तथा गवर्नरों के लिए विधि-निषेध

स्वतंत्र भारत में मंत्रियों और गवर्नरों को कैसे रहना चाहिए, इस पर गांधीजी ने कुछ बातें कहीं :

- १. मंत्रियों को अथवा गवर्नरों को जहाँ तक हो सके वहाँ तक अपने देश में उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ ही काम में लेनी चाहिए, करोड़ों गरीबों को रोटी मिले इसके लिए उन्हें तथा उनके कुटुंब को खादी ही पहननी चाहिए और अहिंसा के प्रतीक चरखे को हमेशा घूमता हुआ रखना चाहिए।
- उन्हें दोनों लिपियाँ (नागरी और उर्दू) सीख लेनी चाहिए। जहाँ तक हो सके आपस की बातचीत में भी उन्हें अंग्रेजी का व्यवहार नहीं करना चाहिए। सार्वजनिक रूप में तो उन्हें हिंदुस्तानी ही बोलनी चाहिए और अपने प्रान्त की भाषा का खुलकर उपयोग करना चाहिए। आफिस में भी जहाँ तक हो सके हिंदुस्तानी में ही पत्र-व्यवहार होना चाहिए; आदेश या सर्क्युलर भी हिंदुस्तानी में ही निकाले जाने चाहिए। ऐसा होने से लोगों में व्यापक रूप से हिंदुस्तानी सीखने का उत्साह बढ़ेगा और धीरे-धीरे हिंदुस्तानी भाषा अपने-आप देश की राष्ट्रभाषा बन जाएगी।

- उनके दिल में अस्पृश्यता, जाति-पाँति या मेरे-तेरे के भेदभाव नहीं होने चाहिए। किसी का थोड़ा भी असर कहीं चलना नहीं चाहिए। सत्ताधारी की दृष्टि में अपना सगा बेटा, सगा भाई या एक सामान्य माना जाने वाला नागरिक, कारीगर या मजदूर सभी एक से होने चाहिए।
- ४. इसी तरह उनका व्यक्तिगत जीवन भी इतना सादा होना चाहिए कि लोगों पर उसका प्रभाव पड़े। उन्हें हर रोज देश के लिए एक घंटा शारीरिक श्रम करना ही चाहिए। भले वे चरखा कातें या अपने घर के आसपास अन्न, फल या सागभाजी उगाकर देश के खाद्य उत्पादन को बढ़ायें।
- ५. मोटर और बंगला तो होना ही नहीं चाहिए। आवश्यक हो वैसा और उतना बड़ा साधारण मकान उन्हें काम में लेना चाहिए। हाँ, अगर दूर जाना हो या किसी खास काम से जाना हो, तो वे ज़रूर मोटर का उपयोग कर सकते हैं। लेकिन मोटर का उपयोग मर्यादित होना चाहिए। मोटर की थोड़ी बहुत ज़रूरत तो कभी-कभी रहेगी ही।
- ६. मेरी तो यह इच्छा है कि मंत्रियों और गवर्नर के मकान पास पास हों, जिससे वे एक-दूसरे के विचारों में, कुटुंबों में और कामकाज में ओतप्रोत हो सकें।
- घर के दूसरे सदस्य और बच्चे घर में हाथ से ही काम करें। नौकरों का उपयोग कम से कम होना चाहिए।
- ८. आज जब देश के करोड़ों मनुष्यों को बैठने के लिए शतरंजी तो कया पहनने के लिए कपड़े भी नहीं मिलते, तब विदेशी महँगा फर्नीचर – सोफासेट, आलमारियाँ या चमकीली कुर्सियाँ बैठने के लिए नहीं रखी जानी चाहिए।
- ९. अंत में, मंत्रियों और गवर्नरों को किसी प्रकार का व्यसन तो होना ही नहीं चाहिए। [बिहार की कौमी आम में, (१९५९), पृ. २१०-१२]

४७. दो शब्द मंत्रियों से

[ता. २५-९-'४७ के 'हरिजनसेवक' में छपे 'उड़ीसा का संकट' नामक लेख में गांधीजी ने मंत्रियों से भी सलाह के दो शब्द कहे थे, जो नीचे दिये जाते हैं।]

दो शब्द मंत्रियों से भी। उन्हें जो कुछ भी आर्थिक दान मिलेगा, उससे तो संकट का आंशिक निवारण ही होगा। इसलिए उन्हें दो बातें करनी चाहिए। पहली बात तो यह है कि जो भी आदमी संकटग्रस्त दिखाई दे, उसके लिए यह कोशिश की जाय कि वह किसी उत्पादक काम में लगकर अपनी सहायता खुद करना सीखे। बिहार में कताई बगैरा का काम अपनाया गया था। उड़ीसा में अगर लोग चरखे के काम को न चाहते हों, तो वे और कोई उद्योग ले सकते हैं। असल बात है श्रमधर्म का गौरव सीख लेने की। खुद मंत्री भी थोड़ी देर के लिए अपना कुर्ता उतार कर रख दें और साधारण मज़दूरों की तरह काम करें। इससे उन लोगों को प्रोत्साहन मिलेगा, जिन्हें काम और उससे प्राप्त होने वाली मज़दूरी की ज़रुरत है। दूसरे, मंत्री कुशल इंजीनियरों की तलाश करके उनके कौशल को इस प्रकार काम में लायें, जिससे वर्षा के मौसम में नदियों के प्रलयकारी प्रवाह को ऐसा मार्ग दिया जा सके कि वह उपयोगी बन जाय। [ह. से., २५-९-'३७, पृ. २५१]

४८. मंत्रियों को मानपत्र और उनका सत्कार

एक सज्जन की बातचीत का, जो मुझसे मुलाकात करने आये थे, संक्षेप में यह निचोड़ है :

आपको शायद यह पता न हो कि मंत्रियों की आज क्या दशा हो रही है। काँग्रेसजन सत्रह साल तक सरकारी पदों से अलग रहे हैं। अब वे देखते हैं कि जिस सत्ता का उन्होंने पहले अपनी इच्छा से परित्याग कर दिया था, वह सत्ता उनके चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में आ गई है। उन्हें यह नहीं समझ में आता कि अपने इन प्रतिनिधियों के साथ किस तरह बरताव करना चाहिए। वे उनका मानपत्रों और स्वागत-सत्कारों से नाक में दम कर देते हैं; और चाहते हैं कि वे उनसे मुलाकात करें, क्योंकि यह उनका हक है। उनके सामने वे तरह-तरह के सुझाव रखते हैं और कभी-कभी छोटी मोटी मेहरबानियाँ भी उनसे कराना चाहते हैं।

मंत्रियों को देश की सेवा करने के लिए अशक्त बना देने का यह सबसे अच्छा तरीका है। इन मंत्रियों के लिए यह काम अभी नया-नया है। शुद्ध न्यायबुद्धि से काम करने वाले मंत्री के पास मानपत्र तथा स्वागत-सत्कार ग्रहण करने अथवा अतिशयोकक्तिपूर्ण या उचित प्रशंसात्मक भाषण देने के लिए समय ही नहीं होता; न ऐसे मुलाकातियों के साथ बैठकर बातें करने का ही उनके पास समय होता है, जिन्हें उन्होंने मिलने के लिए बुलाया न हो या जिनसे उन्हें अपने काम में कोई मदद मिलती मालूम न होती हो। सिद्धांत की दृष्टि से देखते हुए तो प्रजातंत्र का नेता हमेशा प्रजा के बुलाने पर उससे मिलने या चाहे जहाँ जाने के लिए तैयार रहेगा। वे अगर ऐसा करें, तो उचित ही है। किन्तु प्रजा ने उनको जो कर्तव्य सौंप रखा है, उसे क्षति पहुँचाकर वे ऐसा करने की धृष्टता नहीं करेंगे। मंत्रियों को जो काम सौंपा गया है उसमें अगर वे पारंगत नहीं होते या प्रजा उन्हें पारंगत नहीं होने देती, तो मंत्रियों की फजीहत ही होने वाली है। शिक्षामंत्री को अगर ऐसी नीति ढूँढ़ निकालनी है, जो देश की आवश्यकताओं को पूरा कर सके, तो उसे अपना सारा बुद्धिबल इस काम में लगा देना पड़ेगा। आबकारी-विभाग का मंत्री यदि मद्य-निषेध के रचनात्मक अंग के प्रति ध्यान न देगा, तो वह अपने कर्तव्य-पालन में बिलकुल असफल रहेगा। यही बात अर्थमंत्री के बारेमें है। विधान ने जो अड़चनें पैदा कर रखी हैं उनके बावजूद तथा सरकार ने खुद अपनी इच्छा से शराब की आमदनी त्याग देने का जो निश्चय किया है उसके होते हुए भी अगर वह आय-व्यय की दोनों बाजुओं का मेल ठीक-ठीक नहीं बिठा सकता, तो उसे असफलता ही मिलेगी। इस काम को करने के लिए तो आंकड़ों के जादूगर की ज़रूरत है। ये तो केवल उदाहरण हैं। जिन तीन विभागों के मंत्रियों का मैंने उल्लेख किया है, उनके जितनी ही जागृति, सावधानी और अध्ययन परायणता की हरएक मंत्री को ज़रुरत है।

स्थायी अधिकारी मंत्रियों के आगे जो काग़ज़-पत्र रख दें उन्हें पढ़कर उन पर दस्तखत कर देने का ही काम अगर इन मंत्रियों के पास होता, तो यह आसान काम था। पर हरएक काग़ज़-पत्र का अध्ययन करना और सोच सोचकर नई-नई कार्य-प्रणालियाँ निकालना और उन पर अमल कराना कोई आसान काम नहीं। मंत्रियों ने जो सादगी अख्तियार की वह प्रारंभिक रूप में आवश्यक थी। परन्तु यदि सादगी के साथ वे आवश्यक उद्योगशीलता, योग्यता, प्रामाणिकता, निष्पक्षता और एक एक ब्योरे पर अधिकार रखने की अगाध शक्ति का परिचय नहीं देंगे, तो उनकी इस कोरी सादगी से उन्हें कुछ मिलने का नहीं।

इसलिए अगर हमारे लोग आपने मंत्रियों को मानपत्र देने, उनसे मुलाकातें माँगने या उन्हें लम्बे-लम्बे पत्र लिखने में संयम से काम लेंगे, तो इससे मंत्रियों को लाभ ही होगा। [ह. से., १६-१०-'३७, पृ. २७७]

४९. ग्रानपत्र और फूलों के हार

प्र• – एक भाई शिकायत करते हैं : "बहुत से प्रान्तों में काँग्रेसी मंत्रि-मंडल स्थापित हो गये हैं और आम जनता को इस पर गर्व है। इसलिए जब कोई मंत्री किसी जगह जाता है तो वहाँ की स्थानीय कमेटियाँ या दूसरी संस्थाएँ उसे कीमती मानपत्र देकर उसके प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करती हैं। क़रीब-क़रीब सभी मामलों में इस तरह दी जाने वाली चीज़ें मंत्री की अपनी संपत्ति बन जाती हैं। मेरी राय में यह प्रथा ठीक नहीं है। या तो इस तरह मानपत्र लेने का यह सिलसिला बन्द किया जाना चाहिए या इस तरह दी गई चीज़ें स्थानीय काँग्रेस कमेटी को मिलनी चाहिए। मंत्रियों या काँग्रेस के नेताओं को फूलों के हार बगैरा पहनाने के बारेमें कोई निश्चित नीति होनी चाहिए। मैंने कई जगह यह देखा है कि मंत्रियों का स्वागत करते समय उन्हें ऐसे हार पहनाये जाते हैं, जिनकी कीमत ३००-४०० रुपये से कम नहीं होती। यह पैसे की निरी बरबादी है।"

उ॰ – यह एक उचित शिकायत है। आम जनता की सेवा कररने वाले किसी भी सेवक को अपने काम के लिए न तो कीमती मानपत्र लेने चाहिए और न बहुमूल्य फूलों के हार बगैरा लेने चाहिए। यह बहुत बुरी बात भाले न हो, मगर एक दु:खदायक बात तो बन ही गई है। इसके बचाव में अकसर यह दलील दी जाती है कि मानपत्र की कीमती चौखटों और फूलों के बहुमूल्य हारों व गुलदस्तों की बदौलत इन चीजों के बनाने वाले कारीगरों को पैसा मिलता है। लेकिन ये कारीगर तो मंत्रियों और उनके जैसे दूसरों की मदद के बिना भी अपना काम अच्छी तरह चला सकते हैं। मंत्री बगैरा अपने मौजशौक के लिए दौरा नहीं करते। उनके दौरे काम के सिलसिले में होते हैं और उनके पीछे अकसर यह ख़याल रहता है कि वे लोगों से प्रत्यक्ष मिलकर उनकी बातें सुन सकें। उन्हें दिये जाने वाले मानपत्रों में उनके गुणों की प्रशंसा करना ज़रूरी नहीं, क्योंकि गुण तो स्वयं ही अपने पारितोषिक हैं। मानपत्रों में तो स्थानीय ज़रूरतों और शिकायतों का, यदि वैसी कोई शिकायतें हों, उल्लेख किया जाना चाहिए। मंत्रियों और उनके सचिवों के सामने बड़े-बड़े काम पड़े हैं। लोगों की खुशामदभरी तारीफ़ों से मंत्रियों के काम में मदद पहुँचने के बदले रुकावटें पैदा होगीं। [ह. से., ९-६-'४६, पृ. १७०-७१]



५०. मंत्रियों को चेतावनी

मेरे पास आकर कई लोगों ने यह कहा है कि जनता के मंत्री पुराने अंग्रेज अधिकारियों की तरह ही मनमाने ढंग से काम करते हैं। इस पर प्रकाश डालने वाले कुछ काग़ज़ात भी वे लोग मेरे पास छोड गये हैं। इस सम्बन्ध में मैंने मंत्रियों से बातचीत नहीं की। लेकिन इस मामले में मेरी यह स्पष्ट राय है कि जिन बातों के लिए हम अंग्रेज सरकार की आलोचना करते रहे हैं, उनमें से कोई भी बात ज़िम्मेदार मंत्रियों के शासन में नहीं होनी चाहिए। अंग्रेजी शासन के दिनों में वाइसरॉय कानून बनाने और उन पर अमल कराने के लिए आर्डिनेन्स निकाल सकते थे। तब न्याय और शासन के काम एक ही व्यक्ति के हाथ में रखने का काफ़ी विरोध किया गया था। तबसे आज तक ऐसी कोई बात नहीं हुई, जिससे इस विषय में राय बदलने की ज़रूरत हो। देश में आर्डिनेन्स का शासन बिलकुल नहीं होना चाहिए। कानून बनाने का अधिकार सिर्फ आपकी धारासभाओं को रहे। मंत्रियों को जब जनता चाहे तब उनके पदों से हटाया जा सकता है। उनके कामों की जाँच करने का अधिकार आपकी अदालतों को रहे। उन्हें न्याय को सस्ता, सरल और निर्दोष बनाने की भरसक कोशिश करनी चाहिए। इस ध्येय को पूरा करने के लिए 'पंचायत राज' का सुझाव रखा गया है। उच्च न्यायालय के लिए यह संभव नहीं कि वह लाखों लोगों के झगड़े निपटा सके। सिर्फ असाधारण परिस्थितियों में ही आकस्मिक कानून बनाने की ज़रूरत पडती है। कानून बनाने में कुछ ज्यादा देर भले लगे, लेकिन व्यवस्थापिका सभा (एक्जिक्यूटिव) को धारासभा पर हावी नहीं होने दिया जाय। इस समय कोई उदाहरण तो मेरे दिमाग में नहीं है। लेकिन अलग-अलग प्रान्तों में मेरे पास जो पत्र आये हैं, उनके ही आधार पर मैंने ये बातें कही हैं। इसलिए जब मैं जनता से यह अपील करता हूँ कि वह कानून को अपने हाथ में न ले, तब जनता के मंत्रियों से भी मैं अपील करता हूँ कि जिन पुराने तरीकों की उन्होंने निंदा की है, उन्हीं को खुद अपनाने के बारेमें सावधानी रखें। [ह. से., १९-१०-'४७, पृ. ३१७-१८]

५१. ग़रीबी लज्जा की बात नहीं

लोग कहते हैं कि पहले काँग्रेस को १ लाख रुपये जमा करने में भी मुसीबत होती थी। लोग देते तो थे, मगर हम भिखारी थे। आज करोड़ों रुपये हमारे हाथ में आ गये हैं। करोड़ों लेने की ताकत भले आई, पर खर्च तो हमारा वही अंग्रेजी जमाने वाला है। कुछ लोग यह मानते हैं कि जितना रुपया उड़ाना है उड़ावें। शान से रहें तब उसका असर देश से बाहर भी पड़ेगा। लेकिन उन्हें समझना चाहिए कि पैसा शौक के लिए खर्च करना चाहिए या देश के काम के लिए? यह बात ठीक है कि हम इंग्लैंड के साथ मुकाबला करें तो कर सकते हैं। पर वहाँ एक आदमी की जो आमदनी है उससे यहाँ बहुत कम है। ऐसा ग़रीब देश दूसरे देशों के साथ पैसे का मुकाबला करे तो वह मर जाएगा। दूसरे देशों में हमारे प्रतिनिधि भी यह बात समझें। अमेरिका का मुकाबला रहने दो। खाने में, पीने में और पार्टियाँ देने में वे जो दावा करते थे कि हमारी हुकूमत आयेगी तो हमारा भी रंग-ढंग बदल जाएगा, वह उन्हें झुठला देना चाहिए। हमारे त्यागी काँग्रेस वाले भी ऐसी गलती करें, तो वह सोचने की बात है।

फिर लोग कहते हैं कि मंत्री लोग इतने पैसे लेते हैं, तब हम सरकार की नौकरी करें तो हमें भी ज्यादा पैसे मिलने चाहिए। सरदार पटेल को अगर १७०० रुपये मिलें, तो हमें ५०० तो मिलने ही चाहिए। यह हिंदुस्तान में रहने का तरीक़ा नहीं है। जब हरएक आदमी आत्मशुद्धि का प्रयत्न करता हो, तब यह सब सोचना कैसा? पैसे से किसी की कीमत नहीं होती। [दिल्ली-डायरी, (१९६०), पृ. ३६३-६४]

५२. अनाप-शनाप सरकारी खर्च और बिगाड़

जब करोड़ों मनुष्य पारावार किठनाइयाँ झेल रहे थे उस समय गांधीजी व्याकुल होकर सरकारी तंत्र में होने वाला अनाप-शनाप खर्च और बिगाड़ देख रहे थे। और उनकी यह व्याकुलता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी। उनकी चौकस निगाह से कोई भी चीज़ बाहर नहीं रह सकती थीं – विदेशों में राजदूतावासों का खर्च, मंत्रियों के निवासस्थानों में लाया जाने वाला साज-सामान, विदेशों की राजधानियों में रहने वाले राष्ट्र के प्रतिनिधियों का रहन-सहन आदि। समय-समय पर वे चेतावनी देते रहते थे। हमारे एक विदेश में रहने वाले राजदूत को उन्होंने लिखा, "आपके बारेमें जो ख़बरें मुझे मिल रही हैं उन परसे मालूम होता है कि भारत आपसे जैसी अपेक्षा रखता है वैसा जीवन आप नहीं जी रहे हैं। क्या यह बात सही है?"

१९४७ के गरमी के दिनों में उन्होंने दिल्ली में एक मित्र से कहा कि तमाम मंत्री यदि स्वेच्छापूर्वक सादगी का आदर्श अपना लें, तो वे सारी दुनिया को मंत्रमुग्ध कर देंगे और प्रजा का विश्वास संपादन कर सकेंगे। बाद में प्रजा का यह विश्वास कोई भी चीज या व्यक्ति डिगा नहीं सकेगा और न कोई उसका नाश ही कर सकेगा। लेकिन यह बात तो अलग रही, यहाँ तो उलटे गवर्नरों तथा मंत्रियों को महल जैसे मकान चाहिए, अंगरक्षकों की बड़ी पलटन चाहिए और भड़कीली पोशाक पहने हुए खिदमतगार चाहिए। भोजन-समारंभों को गवर्नर-पद की नीति-रीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। "यह सब मैं किसी भी तरह समझ नहीं पा रहा हूँ। देश की प्रतिष्ठा के लिए अधिक हानिकारक कौन-सी चीज़ है - भारत के असंख्य मनुष्यों का अन्न-वस्त्र और मकान की तंगी की स्थिति में रहना या हमारे मंत्रियों तथा गवर्नरों का अपने आसपास की परिस्थिति से बिलकुल मेल न खाने वाले शानदार और बेहद खर्च वाले मकानों में रहने के बदले सादे और छोटे मकानों में सादगी से रहना? "

उन्होंने आगे कहा कि मेरा बस चले तो "लोग जब भारी तंगी बरदाश्त कर रहे हैं ऐसे समय" मैं सरकारी भोजन-समारंभ तत्काल बन्द कर दूँ। मैं मंत्रियों के रहने के लिए सादे छोटे घर तो दूँगा, लेकिन काँग्रेसी गवर्नरों या मंत्रियों को सशस्त्र अंगरक्षक नहीं दूँगा। "उन्होंने नीति के रूप में अहिंसा को अपनाया है और इसके परिणाम-स्वरूप यदि उनमें से कुछ को मार भी डाला जाये, तो मैं इस बात की परवाह नहीं करूँगा।" [टुवर्ड्स न्यू होराइज़न्स, (१९५९), पृ. १०१-०२]

५३. क्या मंत्री अपना अनाज-कपड़ा राज्ञन की दुकानों से ही खरीदेंगे?

प्र• – जब अन्न-विभाग गवर्नरों के सलाहकारों के हाथ में था तब उन पर नियंत्रण रखने की कोई असरकारक पद्धित नहीं थी। परन्तु अब तो प्रान्तों में लोगों की ज़िम्मेदार सरकारें कायम हो गई हैं। इसलिए अब स्थित बदल गई हैं। काँग्रेसी मंत्रियों का यह कर्तव्य है कि वे अपना अनाज वहीं से खरीदें जहाँ से सामान्य लोग खरीदते हैं। अन्न का एक दाना भी वे दूसरी जगह से न लें। इसका असर फौरन होगा और वह दूर तक पहुँचेगा। आज कपड़े और अनाज की सरकारी दुकानें खुली चोरी और बेईमानी का अड्डा बन गई हैं। अगर काँग्रेसी मंत्री इन्हीं दुकानों से अपने हिस्से का कपड़ा और अनाज खरीदें, तो उनका नैतिक बल इतना बढ़ जाएगा कि वे इन बुराइयों का सफलता से सामना कर सकेंगे।

उ॰ - यह प्रश्न इस तरह के कई पत्रों का निचोड़ है। मुझे इन प्रश्नों में दी गई सलाह जंचती है। मैं मानता हूँ कि मंत्री और दूसरे सरकारी नौकर ऐसा ही करते होंगे। सरकारी दुकानों के सिवा तो अनाज खरीदने का रास्ता काला बाज़ार ही है। अधिकारी लोगों से कितना ही क्यों न कहें कि काला बाज़ार में मत जाओ, लेकिन उसका उतना असर नहीं होगा जितना उनके अच्छा उदाहरण सामने रखने से हो सकता है। अगर वे आम लोगों के साथ अनाज खरीदें, तो दुकानदार समझ जाएँगे कि सड़ा हुआ अनाज नहीं बेचा जा सकता। मैं सुनता हूँ कि इग्लैंड में तो यह आम रिवाज है कि मंत्रीगण और बड़े-बड़े अधिकारी वहीं से सामान खरीदते हैं जहाँ से आम लोग खरीदते हैं। होना भी यही चाहिए। [ह. से., ४-८-'४६, पृ. २४८]

५४. सबकी आँखें मंत्रियों की ओर

ज्यों ही नये मंत्रियों ने अपने ओहदे सँभाले त्यों ही कुछ अंग्रेज मित्रों की ओर से गांधीजी को इस आशय के पत्र मिले कि पहले जिन घरों में वाइसरॉय की कार्यकारिणी समिति के सदस्य रहते थे, उन घरों के सुंदर बगीचों की अब उतनी चिन्ता नहीं की जाएगी। उनमें फूल नहीं खिलेंगे और जहाँ मखमल-सी मुलायम हरियाली फैली हुई है वहाँ अब ज्यों-त्यों घास उगने और बढ़ने दी जाएगी और सारा अहाता गंदा बन जाएगा। दरियाँ, कुर्सियाँ और फर्नीचर तेल के और दूसरी चिकनाई के दागों से गंदा हो जाएगा और हाथ-मुँह धोने की जगह भी गंदी रहने लगेगी। इस पर गांधीजी ने कहा, "मैं इंग्लैंड और अफ्रीका में रहा हूँ और अंग्रेजों को अच्छी तरह पहचानता हूँ। इसलिए मैं अपने खुद के अनुभव से कह सकता हूँ कि संस्कारी अंग्रेज सफाई और तंदुरुस्ती के कानूनों को जानते हैं और उनका अमल करते हैं। अंग्रेज अफ़सर तो महलों जैसे मकानों में बादशाहों की तरह रहते थे। वे अपने घरों और आसपास की जगह को साफ रखने के लिए नौकरों का एक बडासा दल रखते थे। लोगों के नेता अंतरिम सरकार में उनके सेवकों की हैसियत से गये हैं। उन्हें अपने यहाँ अनिगनत नौकर रखने की ज़रूरत नहीं। यदि उन्होंने ऐसा किया, तो वे अपने ध्येय के प्रति झूठे साबित होंगे। इसलिए उन्हें अपने घर और घरों के आसपास की जगह अपनी ही मेहनत से साफ-सुथरी रखनी होगी। उनके घर की स्त्रियाँ भी इस काम में उनका साथ देंगी और इसका ध्यान रखेंगी। मैं जानता हूँ कि इन नेताओं में कोई भी ऐसे नहीं हैं, जो अपने नहाने-धोने की जगह को खुद साफ करने से हिचकिचायें। कई साल पहले एक डॉक्टर बहन ने मुझसे कहा था कि वाइसरॉय का मकान एक महल है और वह बिलकुल साफ-सुथरा रहता है, परन्तु उनके हरिजन नौकरों के घर इससे बिलकुल उलटी तसवीर पेश करते हैं। जनता के नेता ऐसा कोई भेद नहीं रखेंगे। पंडित जवाहरलाल के घर का एक हरिजन नौकर प्रान्त की धारासभा का सदस्य बना है। वे अपने नौकरों को अपने घर के आदमी की तरह ही रखते हैं। मुझे खुशी होगी यदि हमारे देश के नेता मंत्री बनने के बाद भी जीवन के हर क्षेत्र में जीवन का ऊँचे से ऊँचा स्तर बनाये रखेंगे। मुझे विश्वास है कि वे राष्ट्र को निराश नहीं करेंगे। [ह. से., २९-९-'४६, पृ. ३३०]

५५. काँग्रेसी मंत्री साहब लोग नहीं

एक काँग्रेस-सेवक पूछते हैं :

क्या कांग्रेसी मंत्री उस साहबी ठाठ से रह सकते हैं, जिस ठाठ से अंग्रेज रहते हैं? क्या वे अपने घरेलू कामों के लिए भी सरकारी मोटरों आदि का उपयोग कर सकते हैं?

मेरी दृष्टि से दोनों प्रश्नों का एक ही उत्तर हो सकता है। यदि काँग्रेस को लोकसेवा की ही संस्था बनी रहना है, तो उसके मंत्री साहब लोगों कि तरह नहीं रह सकते और न वे सरकारी साधनों का उपयोग घरेलू कामों के लिए कर सकते हैं। [ह. से., २९-९-'४६, पृ. ३२७]

५६. देशसेवा और मंत्रीपद

सेवा अर्थात् देशसेवा करना। देशसेवा का अर्थ यह नहीं है कि मंत्री बनें, तो ही देश की सेवा हो सकती है। घर की सँभाल रखना भी देशसेवा है।. . . आजकल तो देशसेवा का नाम बड़ा हो गया है। लोग मानते हैं कि अखबारों में फोटो और नाम छपना अथवा जेल में जाकर मंत्री बन जाना ही सच्ची देशसेवा है। इसलिए सभी लोग मंत्री बनना और सत्ता लेना चाहते हैं। ऐसी हालत में सच्चे मंत्री कैसे काम कर सकते हैं? बेशक, अन्य लोगों की तरह मंत्रियों की भी देश को ज़रूरत है। परन्तु मंत्री अगर मंत्रीपद के लिए योग्य हो, तो ही वह शोभा देता है। उस पद को सुशोभित करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। इतना हम समझ सकें तो एक अपढ़ से अपढ़ स्त्री भी देश की सेवा करती है – यदि उसके हृदय में देशहित की भावना हो। [एकला चलो रे, (१९६१), पृ. ६७]

५७. कानून में दस्तंदाजी ठीक नहीं

अब मैं दूसरी बात लेता हूँ। कुछ जगहों में अधिकारियों ने कई ऐसे लोगों को गिरफ्तार किया है, जो दंगों में शामिल थे। पुरानी सरकार के दिनों में लोग वाइसरॉय से दया की अपील करते थे। उन्हें बनाये हुए कानून के मुताबिक काम करना पड़ता था, फिर उसमें कितना ही बड़ा दोष क्यों न रहा हो। अब लोग अपने मंत्रियों से दया की अपील करते हैं। लेकिन कया मंत्री अपनी मरजी के मुताबिक काम करेंगे? मेरी राय में उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। मंत्री लोग जैसा चाहें वैसा नहीं कर सकते। उन्हें कानून के अनुसार ही काम करना होगा। राज्य की दया का निश्चित स्थान होता है और काफ़ी सावधानी से उसका उपयोग किया जाना चाहिए। ऐसे मामले तभी वापिस लिये जा सकते हैं, जब कि ज्ञिकायत करने वाले लोग गिरफ्तार किये हुए लोगों को छोड़ने की अदालत से अपील करें। भयंकर अपराध करने वाले लोग इतनी आसानी से नहीं छोड़े जा सकते। ऐसे मामलों में अपराधी के ख़िलाफ़ शिकायत करने वालों के गवाही न देने से ही काम नहीं चलेगा। अपराधियों को अदालत में अपना अपराध स्वीकार करना होगा और अदालत से माफी की माँग करनी होगी। और, अगर शिकायत करने वालों ने इस बात में ईमानदारी से सहयोग दिया, तो अपराधियों का बिना सजा दिये छोडा जाना संभव हो सकता है। मैं जिस बात पर जोर देना चाहता हूँ वह यह है कि कोई भी मंत्री अपने प्रिय से प्रिय जन के लिए भी न्याय के मार्ग में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। ऐसा करने का उसे कोई अधिकार नहीं है। लोकशाही का काम है कि वह न्याय को सस्ता बनाये और ऐसी व्यवस्था करे कि न्याय लोगों को जल्दी मिल जाय। उसे लोगों को यह भी गारंटी देनी होगी कि शासन-प्रबन्ध में हर तरह की ईमानदारी और पवित्रता का ध्यान रखा जाएगा। लेकिन मंत्रियों का न्याय की अदालतों पर असर डालने या खुद उनका स्थान ले लेने की हिंमत करना लोकशाही और कानून का गला घोंटना है। [ह. से., २-११-'४७, पृ. ३३१]

५८. अनुभवी लोगों की सलाह

हमारे मंत्री जनता के हैं और जनता में से हैं। उन्हें इस बात का घमंड नहीं करना चाहिए कि उनका ज्ञान उन अनुभवी लोगों से ज्यादा है, जो मंत्रियों की कुर्सियों पर नहीं बैठे हैं – लेकिन जिनका यह दृढ़ विश्वास है कि कंट्रोल जितनी जल्दी हटें उतना ही देश को लाभ होगा। एक वैद्य ने लिखा है कि अनाज के कंट्रोल ने उन लोगों के लिए, जो राशन के खाने पर ही निर्भर करते हैं, खाने लायक अनाज और दाल पाना असंभव बना दिया है। और, इसलिए सड़ा-गला अनाज खाने वाले लोग अकारण बीमारियों के ज्ञिकार बनते हैं। [ह. से., १६-११-'४७, पृ. ३४९]

विभाग - १० : मंत्रि-मंडलों की आलोचना

५९. एक आलोचना

मध्यप्रान्त के एक सज्जन ने मध्यप्रान्त के मंत्रि-मंडल की आलोचना करते हुए मुझे एक कड़वा पत्र भेजा है। उसके सबसे तीव्र अंश को कुछ हल्का करके उसका सार मैं नीचे देता हूँ :

"कुछ समय से मैं आपको लिखने की सोच रहा था, लेकिन जान-बूझकर मैंने ऐसा नहीं किया। अब एक ऐसे व्यक्ति की हैसियत से मैं आपको यह लिख रहा हूँ, जिसको अपने प्रान्त के – इस प्रान्त के जिसे, मैं समझता हूँ, आपने भी अपने शेष जीवन के लिए अपना घर बना लिया है – सुशासन की चिन्ता है। हमें यह विश्वास कराया गया था कि काँग्रेस के मंत्रियों का शासन ऐसा अच्छा होगा, जिसमें कोई बुराई नहीं होगी और वे केवल समझदारी और अपने नैतिक बल के प्रभाव से ही हमेशा शासन कर सकेंगे। लेकिन हमें तो काँग्रेस मंत्रि-मंडल का मुख्य उद्देश्य यह मालूम पड़ता है कि –

- अ. प्रकट रूप में आपकी मूर्ति की पूजा करें और अंदर ही अंदर उसे नष्ट करें;
- आ. अंदर से तो सामप्राज्यवाद के प्रतीकों की पूजा करें और प्रकट रूप में उसकी निंदा करें;
- इ. अपने विरोधियों को सत्य और 'वैध' उपायों से जीतने में असमर्थ होने पर गुंडेपन का उपयोग करें; और
- ई. कानून और सरकारी पदों का व्यापार खूब जोरों से चलायें।

मध्यप्रान्त का मंत्रि-मंडल यह कल्पना करता मालूम होता है कि प्रतिज्ञात लाभों की आम दुहाई देकर और निर्वाचकों को बढ़ी-चढ़ी आज्ञा द्वारा भ्रष्ट करके ज्ञासन चलाया जा सकता है; लेकिन जनता की सरकार इस प्रकार नहीं चलाई जा सकती। पिछले दस महीनों में आपके मंत्रियों ने प्रान्त के सुज्ञासन की नैतिक नींव हिला देने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। संक्षेप में, मैं अपना जो निर्णय आप तक पहुँचाना चाहता हूँ वह यह है कि काँग्रेस पार्टी ने अगर कभी भी अधिकार और उत्तरदायित्व ग्रहण न किया होता, तो वह ज्ञासन के योग्य समझी जा सकती थी। सत्ता ग्रहण करने के बाद दूसरी बात उसे छोड़ देने की ज़िम्मेदारी की है। यह आश्चर्य की बात है कि आपकी

आत्मा ऐसे लुटेरे या पतित मंत्रि-मंडल के विरुद्ध विद्रोह नहीं करती, जिसे बनाने की नैतिक ज़िम्मेदारी पूर्ण रूप से आप पर है।

कार्यसमिति ने मंत्रि-मंडल के ख़िलाफ़ आई हुई सारी शिकायतें पार्लियामेन्टरी बोर्ड के पास भेज दी थीं, जिसने मौके पर जाकर उनकी जाँच की। उसकी रिपोर्ट सार्वजनिक संपत्ति है। काँग्रेस यथासंभव सर्वाधिक विस्तृत मताधिकार वाली सर्वथा लोकतांत्रिक संस्था है। कार्यसमिति उसका मुख है और उसे काँग्रेस-विधान द्वारा बाँधी हुई मर्यादाओं के अंतर्गत काम करना पड़ता है। मध्यप्रान्त के काँग्रेसी प्रतिनिधियों के लिए यह बात खुली थी कि वे मंत्रियों से इस्तीफे माँगते; लेकिन उन्होंने मंत्रियों से इस्तीफे नहीं माँगे। इसके ख़िलाफ़ वे चाहते थे कि मंत्रीगण आपस में झगड़े निपटा लें और प्रान्त का शासन चलायें। पार्लियामेन्टरी बोर्ड प्रतिनिधियों की इच्छाओं की अवहेलना नहीं कर सकता था। उसके पास ऐसा करने की कोई सत्ता नहीं थी। लेकिन मंत्रि-मंडल की जो कुछ किमयाँ उसे मालूम हुई उनसे उसे छुड़ाने के लिए वह जो कुछ कर सकता था वह सब उसने किया। और यह बात स्वीकार करनी होगी कि बोर्ड ने जो कुछ करना चाहा उसका मंत्रियों ने कोई विरोध नहीं किया। अब यह देखना बाकी है कि नई व्यवस्था किस तरह चलती है।

लेकिन जो बात मैं बताना चाहता हूँ वह यह है कि कार्यसमिति काँग्रेस संस्था में पाई जाने वाली किसी बुराई की लीपापोती नहीं करना चाहती। वह अनुशासन की कार्रवाई करने में भयभीत नहीं होती, जिसका अधिकांश मामलों में पालन किया गया है।

मैं पत्र-लेखक की इस बात की पूरी तरह ताईद करता हूँ कि काँग्रेस "समझदारी और नैतिक बल के आधार पर" ही शासन कर सकती है। उन्हें और उनके समान अन्य आलोचकों को यह विश्वास रखना चाहिए कि यदि किसी दिन काँग्रेस समझदारी और नैतिक प्रभाव के स्थान पर गुंडेपन से काम लेना शुरू करेगी, तो उसी दिन उसकी कुदरती मृत्यु हो जाएगी, जिसकी काँग्रेस अधिकारिणी होगी। [ह. से., २५-६-'३८, पृ. १४८]

६०. एक मंत्री की परेशानी

डॉ. काटजू ने यह पत्र भेजा है :

हिंदुस्तान के कई हिस्सों में इस साल रबी की फसल और सालों से खराब आई है और इसलिए आम तौर पर लोगों को यह डर है कि इस बार देश में अन्न की बहुत ज्यादा तंगी रहेगी। अन्न के मामले में अमीर और ग़रीब सबको एक सी सुविधायें देने की दृष्टि से संयुक्त प्रान्त के बहुत से शहरी क्षेत्रों में राशन देना शुरू किया गया है। राशनिंग के कारण सरकार पर यह ज़िम्मेदारी आती है कि वह राशनिंग के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए अन्न मुहैया करे। प्रान्त में अन्न की इतनी ज्यादा तंगी का डर है कि यहाँ राशन की मात्रा को घटा कर कम से कम कर दिया गया है – यानी प्रति मनुष्य रोज का छह छटांक अनाज दिया जाता है। इसमें दो छटांक गेहूँ, दो छटांक चावल और दो छटांक मिलावटी आटा दिया जाता है। लोग आम तौर पर मिलावटी आटे को पसंद नहीं करते और राज्ञन में इससे ज्यादा कमी करना लगभग असंभव है। स्पष्ट है कि ज्ञहरी क्षेत्रों को अन्न देने के लिए गाँवों से उसकी पूर्ति लगातार जारी रहनी चाहिए। भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को सुझाया है कि अन्न की लगातार पूर्ति की पक्की व्यवस्था करने के लिए ज्यादा अन्न पैदा करने वाले ज़िलों में - यानी उन ज़िलों में जहाँ खेती का उत्पादन ग्राम्य क्षेत्रों की ज़रूरतों से ज्यादा होने की आशा रखी जाती है – अनाज की अनिवार्य वसूली करना वांछनीय होगा। अनिवार्य रूप से अनाज वसूल करने का यह प्रश्न लोगों को बहुत परेशान किये हुए है। कहा जाता है कि सरकार ने कंट्रोल की जो कीमतें तय की हैं वे बहुत कम हैं, इसलिए वे बढ़ाई जानी चाहिए। इसका उत्तर यह है कि कीमतों का ढाँचा तो सारे हिंदुस्तान के लिए बनाया जाता है, इसलिए उस पर असर डाले बिना किसी प्रान्त में कीमतें बढाई नहीं जा सकतीं। इसके अलावा, संयुक्त प्रान्त में कंट्रोल के दाम ४० सेरी मन के सवा दस रुपये रखे गये हैं, जो सच पूछा जाय तो कम नहीं है। यह काफ़ी अच्छी रकम है और इसमें खेती के और जीवन की सामान्य ज़रूरतों के बढ़े हुए खर्च का उचित विचार किया गया है। युद्ध से पहले के दिनों में गेहूँ १ रुपये के १३ सेर बिका करते थे। आज कंट्रोल की दर प्रति रुपये ४ सेर है। चूँकि आम तोर पर लोगों को यह भय रहता है कि बाज़ार में अनाज माँग की तुलना में बहुत कम आयेगा, इसलिए जहाँ स्वार्थी लोग अपनी निजी ज़रूरतें पूरी करने के लिए ऊँचे दामों पर खाद्यपदार्थ खरीद सकते हैं वहाँ काला बाज़ार ज़रूर खड़ा होगा।

अगर किसान यह समझ लें कि शहरों में रहने वाले अपने भाई-बहनों को और गाँवों में जिनकी अपनी कोई खेती नहीं है उन लोगों को अन्न पहुँचाने की अधिक से अधिक कोशिश करना उनका सामाजिक और राष्ट्रीय धर्म है, तो किसी किसान पर कोई ज़बरदस्ती न करनी पड़े। किसान सचमुच हमारे 'अन्नदाता' हैं। इसलिए मैं आपसे यह अपेक्षा रखता हूँ कि आप उनसे यह अपील करें कि इस संकट-काल में न तो वे खुद अनाज इकट्ठा करके रखें और न किसी काला बाज़ार में उसे बेचें, बल्कि जितना अनाज दे सकें सरकारी गोदामों के लिए दें – ताकि अमीर और ग़रीब सबको उचित और समान रूप से अनाज बाँटा जा सके और भुखमरी व मुहताजी को टाला जा सके। आपकी आवाज़ दूर-दूर तक पहुँचती है, इसलिए मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप यह काम अपने हाथ में लें। शहरों के लिए अनाज की काफ़ी व्यवस्था करने के लिए कई योजनाएँ सोची गई हैं। लेकिन कोई भी योजना क्यों न हो, सार सब का यही है कि हर हालत में किसान से यह कहना होगा कि वह अपना अनाज दे। अगर शहरों और गाँवों में आम जनता को अनाज मुहैया न किया गया, तो हर तरह के दंगे-फसाद हुए बिना न रहेंगे। संयुक्त प्रान्त में हम 'अधिक अन्न पैदा करने' और 'अधिक साग-सब्जी पैदा करने' के आंदोलनों को बढावा देने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। आपके दिए हुए तमाम सुझावों पर अमल किया जा रहा है। सरकारी इमारतों के आसपास की सारी सरकारी ज़मीनों को जोतने की सूचनाएँ दे दी गई हैं। ऐसी व्यवस्था भी की गई है, जिससे निजी मकानों के मालिक खेतीबाड़ी के विशेषज्ञों की सलाह से लाभ उठा सकें। उन्हें सुविधा के नाते बोने के लिए बीज और सिंचाई के लिए नहरों का पानी मुफ्त दिया जाता है। कुएँ खोदने के काम में भी सहायता की जा रही है। इन सब बातों के कहने और करने के बावजूद जब तक जनता साथ नहीं देती तब तक कुछ किया नहीं जा सकता। और जनता के सहयोग का अर्थ है 'अन्नदाता'। किसान इस काम के लिए यथाशक्ति अधिक से अधिक अनाज दें।

डॉक्टर काटजू के इस पत्र पर किसानों और उनके सलाहकारों को तथा शहर वालों को गंभीरता से सोचना चाहिए। सिर पर मंडराने वाले संकट का सदुपयोग किया जा सकता है। उस स्थिति में वह संकट न रहकर एक आशीर्वाद बन जाएगा। वर्ना शाप तो वह है और शाप वह रहेगा।

डॉ. काटजू ने एक ज़िम्मेदार मंत्री के नाते ऊपर का पत्र लिखा है। इसलिए लोग उन्हें बना भी सकते हैं और बिगाड़ भी सकते हैं। वे उन्हें हटाकर उनसे ज्यादा अच्छे व्यक्ति को उनकी जगह रख सकते हैं। लेकिन जब तक लोगों के चुने हुए मंत्री उनके सेवकों की तरह काम करते हैं, तब तक लोगों को उनकी सूचनाओं का पालन करना चाहिए। हरएक कानून या सूचना का विरोध सत्याग्रह नहीं होता। सत्याग्रह की अपेक्षा वह दुराग्रह आसानी से बन सकता है। [ह. से., २१-४-'४६, पृ. ९७]

६१. मंत्रियों की टीका

यह स्वाभाविक ही है कि जो लोग काँग्रेस की राजनीति को नापसंद करते हैं, वे सभी काँग्रेसी मंत्रियों की बुरी तरह टीका-टिप्पणी करेंगे। ऐसी आलोचना में जो सचाई हो वह हमें कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लेनी चाहिए। लेकिन बहुत-सी आलोचना तो दलबन्दी के ही उद्देश्य से होती है। उसको भी हमें बरदाश्त करना पड़ेगा। लेकिन जब काँग्रेसवादी भी वही शोर मचायें, तब बड़ी किठनाई पैदा हो जाती है। वैसे उनके पास तो इसका इलाज है। वे अपने प्रान्त की काँग्रेस कमेटी से शिकायत कर सकते हैं और वहाँ भी सफलता न मिले, तो वर्किंग कमेटी के पास और अंत में अ. भा. काँग्रेस कमेटी तक पहुँच सकते हैं। अगर ये सब उपाय भी कारगर न हों, तो फिर निश्चय ही उनकी आलोचना के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन इन आलोचकों से मुझे सबसे बड़ी शिकायत तो यह है कि वे बड़ी जल्दबाजी करते हैं और तथ्यों को जानने की तकलीफ ही नहीं उठाते। परन्तु अज्ञान से बड़ा कोई पाप नहीं है, इस महान लोकोक्ति का प्रमाण मुझे रोज ही मिलता है। [ह. से., १०-९-'३८, पृ. २३६]

६२. सरकार का विरोध

लोकप्रिय मंत्रि-मंडल धारासभा के सदस्यों के अधीन रह कर काम करता है। उनकी इजाज़त के बिना वह कुछ कर नहीं सकता। और हरएक सदस्य अपने मतदाताओं यानी लोकमत के अधीन है। इसलिए सरकार के हर कार्य पर गहराई से सोचने के बाद ही उसका विरोध करना उचित होगा। आम लोगों की एक बुरी आदत पर भी इस सम्बन्ध में विचार किया जाना चाहिए। करदाता को कर के नाम से ही नफरत होती है। फिर भी जहाँ अच्छी व्यवस्था है वहाँ अकसर यह दिखाया जा सकता है कि करदाता खुद कर के रूप में जो कुछ देता है, उसका पूरा बदला उसे मिल जाता है। शहरों में पानी पर वसूल किया जाने वाला कर इसी प्रकार का है। शहर में जिस दर से मुझे पानी मिल सकता है, उस दर में मैं अपनी ज़रूरत का पानी खुद पैदा नहीं कर सकता। मतलब यह कि पानी मुझे सस्ता पड़ता है। उसकी यह दर मतदाताओं की इच्छा के अनुसार तय करनी पड़ती है। तिस पर भी जब पानी का कर जमा करने की नौबत आती है तब सामान्य नागरिकों में उसके प्रति एक नफरत-सी पैदा हो जाती है। यही हाल दूसरे करों का भी है। यह सच है कि सभी तरह के करों का ऐसा सीधा हिसाब नहीं किया जा सकता। जैसे-जैसे समाज का और उसकी सेवा का क्षेत्र बढ़ता जाता है, वैसे वैसे यह बताना मुश्किल होता जाता है कि कर चुकाने वाले को उसका सीधा बदला किस तरह मिलता है। लेकिन इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि समाज पर जो एक विशेष कर लगाया जाता है, उसका समाज को पूरा बदला मिलता ही है। अगर ऐसा न हो तो ज़रूर यह कहा जा सकता है कि वह समाज लोकमत की बुनियाद पर नहीं चल रहा है। [ह. से., ८-९-'४६, ए. ३०१-०२]

६३. मंत्रियों को भावुक नहीं होना चाहिए

मेरे पास ऐसे बहुत से पत्र आये हैं, जिनमें लिखने वाले भाइयों ने हमारे मंत्रियों के रहन-सहन को आरामतलब कहकर उसकी कड़ी आलोचना की है। उन पर यह आरोप लगाया गया है कि वे पक्षपात से काम लेते हैं और अपने रिश्तेदारों को ही आगे बढ़ाते हैं। मैं जानता हूँ कि बहुत सी आलोचना तो आलोचकों के अज्ञान के कारण होती है। इसलिए मंत्रियों को उससे दुःखी नहीं होना चाहिए। सिर्फ दोष बतलाने वाली आलोचना में से उन्हें अपने लिए अच्छी बात ले लेनी चाहिए। यदि मेरे पास आये हुए पत्र मैं मंत्रियों के पास भेज दूँ, तो उन्हें आश्चर्य होगा। संभव है कि उनके पास इनसे भी बुरे पत्र आते हों। चाहे जो हो, इन पत्रों से मैं तो यही सबक लेता हूँ कि जहाँ तक सादग, धीरज, ईमानदारी और परिश्रम करने का सम्बन्ध है, ये 'आलोचक' दूसरों की अपेक्षा जनता द्वारा चुने हुए सेवकों से इन गुणों की अधिक आशा रखते हैं। शायद परिश्रम और अनुशासन को छोड़कर और किसी बात में हमें पुराने अंग्रेज शासकों की नकल नहीं करनी चाहिए। अगर एक तरफ मंत्री लोग उचित आलोचना से लाभ उठाने लगें

और दूसरी तरफ आलोचना करने वाले लोग कोई बात कहने में संयम और पूरी सचाई का ख़याल रखें, तो इस टिप्पणी का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। गलत बात कहने या बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहने से एक अच्छा मामला भी बिगड़ जाता है। [ह. से., २१-९-'४७, पृ. २७३]

६४. धमकियाँ - मंत्रियों के लिए रोज की बात

आम जनता को मैं यह बता देता हूँ कि रोज की धमिकयों के बावजूद मंत्री लोग हरएक तरह का अन्याय दूर करने के लिए भरसक कोशिश कर रहे हैं। आजकल, जब कि मानसिक हिंसा देश में बढ़ती ही चली जा रही है, व्यापक लोकतांत्रिक मताधिकार के मातहत चुने गये मंत्रियों का भाग्य ही ऐसा है कि इस तरह की धमिकयाँ उनके लिए रोजमर्रा की बात बन गई हैं। वे अपने पदों को अथवा जीवन को खतरे में डालकर भी जिसे वे अपना कर्तव्य समझते हैं उसे करते हुए पीछे नहीं हट सकते। इसी तरह ऐसी बेहूदी धमिकयों के कारण, जैसी कि इस अर्जी में दी गई हैं, न तो वे नाराज होंगे और न न्याय करने से इनकार करेंगे। [ह. से., २२-७-'३९, पृ. १८३]

६५. सरकार को कमजोर न बनाइये

सरकार ने कुछ लोगों को गिरफ्तार किया था, जिसके ख़िलाफ़ आंदोलन हुआ, सरकार को ऐसा करने का अधिकार था। हमारी सरकार निर्दोषों को जान-बूझकर गिरफ्तार नहीं कर सकती। लेकिन मनुष्य से गलती हो सकती है और संभव है कि गलती से कुछ निर्दोषों को तकलीफ उठानी पड़े। यह काम सरकार का है कि अपनी इस ग़लती को वह सुधारे। प्रजातंत्र में लोगों को चाहिए कि वे सरकार की कोई ग़लती देखें, तो उसकी तरफ सरकार का ध्यान खींचे और संतोष मान लें। अगर वे चाहें तो अपनी सरकार को हटा सकते हैं; परन्तु उसके ख़िलाफ़ आंदोलन करके उसके कामों में बाधा न डालें। हमारी सरकार जबरदस्त जलसेना और स्थलसेना रखने वाली कोई विदेशी सरकार तो है नहीं। उसका बल तो जनता ही है।

सच्ची शान्ति किस तरह स्थापित की जा सकती है? आप इस बात से शायद खुश हों कि दिल्ली में फिर से शान्ति स्थापित होती जान पड़ती है। परन्तु मैं इस संतोष में हिस्सा नहीं बँठा सकता। हिंदुओं और मुसलमानों के दिल एक-दूसरे से फिर गये हैं। वे पहले भी आपस में लड़ा करते थे। परन्तु वह लड़ाई एक या दो दिन की रहती थी और फिर हरएक उसके बारेमें सब-कुछ भूल जाता था। आज उनमें इतनी अधिक कड़वाहट पैदा हो गई हैं कि वे मानने लगे हैं, मानो वे सदियों के दुश्मन हों। इस तरह की भावना को मैं कमजोरी मानता हूँ। आपको इसे ज़रूर छोड़ देना चाहिए। तभी आप एक महान शक्ति बन सकते हैं। आपके सामने दो बातें हैं। आप उनमें से किसी एक को चुन सकते हैं। या तो आप एक महान फ़ौजी शक्ति बन सकते हैं; या अगर आप मेरा मार्ग अपनायें, तो आप एक अहिंसक और किसी से भी न जीती जा सकने वाली शक्ति बन सकते हैं। लेकिन दोनों के ही लिए पहली शर्त यह है कि आप अपना सारा डर दूर कर दें।

एक-दूसरे के नजदीक पहुँचने का एकमात्र रास्ता यह है कि हर आदमी दूसरे पक्ष की गलितयों को भूल जाय और अपनी गलितयों को बहुत बड़ी बनाकर देखे। मैं अपनी सारी ताक़त से मुसलमानों को ऐसा करने की सलाह देता हूँ, जैसा कि मैंने हिंदुओं और सिक्खों से करने के लिए कहा है। कल के दुश्मन आज के दोस्त बन सकते हैं, बशर्ते वे अपने अपराधों को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार कर लें। 'जैसे के साथ तैसा' की नीति से आपस में दोस्ती नहीं कायम हो सकती। अगर आप पूरे दिल से मेरी सलाह पर अमल करेंगे, तो मैं दिल्ली छोड़ सकूँगा और अपना 'करो या मरो' का मिश्चन पूरा करने के लिए पाकिस्तान जा सकूँगा। [ह. से., २६-१०-'४७, पृ. ३२२-२३]

६६. मंत्री और जनता

नई दिल्ली की हार्डिज लायब्रेरी में (ता. २८-१२-'४७ को) व्यापारियों की एक सभा में भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा : मैं समझता हूँ कि अनाज पर जो अंकुश लगाया जाता है वह बुरा है। हिंदुस्तान का हित उसमें हो ही नहीं सकता। कपड़े का अंकुश भी हटना चाहिए। आज जब हमें आज़ादी मिल गई है, तो उसमें हम पर कंट्रोल क्यों? जवाहरलालजी, सरदार पटेल वगैरह जनता के सेवक हैं। जनता की इच्छा के विरुद्ध वे कुछ नहीं कर सकते। अगर हम उनसे कहें कि आप अपने पदों पर से हट जाइये, तो वे वहाँ रह नहीं सकते। [ह. से., ४-१-'४८, पृ. ४२२]

मैंने ऐसे लोगों को सरकार की विनाशात्मक टीका करते भी सुना है, जो राष्ट्र के हाथ में आई हुई सत्ता को न खुद सँभाल सकते हैं और न उन्हें सँभालने देना चाहते जो इसके योग्य हैं। लेकिन दूसरी तरफ मंत्रियों को उस प्रजा के सच्चे सेवक बनना चाहिए, जिससे उन्हें सत्ता मिली है। उन्हें नौकरियों के बारेमें पक्षपात नहीं करना चाहिए, घूसखोरी की बुराई में नहीं फँसना चाहिए और सबके साथ एकसा न्याय करना चाहिए।

अगर बिहार के जमींदार, रैयत और सरकार तीनों अपना अपना कर्तव्य पालें, तो बिहार सारे हिंदुस्तान के सामने सुंदर उदाहरण पेश करेगा। [ह. से., १-६-'४७, पृ. १५२]

विभाग - ११: मंत्रि-मंडल और अहिंसा

६७. हमारी असफलता

इलाहाबाद में – जो कि काँग्रेस का मुख्य केन्द्र है - सांप्रदायिक दंगा होने और उसके लिए पुलिस को ही नहीं, बल्कि फ़ौज को भी बुलाने की ज़रूरत पड़ने से मालुम होता है कि काँग्रेस अभी इस योग्य नहीं हुई है कि ब्रिटिश सत्ता का स्थान ले सके। यह बात चाहे जितनी अप्रिय लगे, लेकिन अच्छा यही है कि हम इस नग्न सत्य को अनुभव करें और उसका सामना करें।...

ये दंगे और दूसरी कुछ बातें ऐसी हैं, जिन पर हमें ठहरकर यह सोचना ही चाहिए कि क्या सचमुच काँग्रेस का विकास हो रहा है और वह अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करती जा रही है?...

यह कहा जाता है कि जब हम स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे तब दंगे तथा अन्य ऐसी बातें नहीं होंगी। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि स्वतंत्रता कि लड़ाई के दरिमयान अगर हम अहिंसात्मक कार्य के तत्त्व को अच्छी तरह समझकर प्रत्येक कल्पनीय परिस्थिति में उसका उपयोग न करें, तो हमारी यह आशा थोथी ही साबित होगी। जिस हद तक काँग्रेस मंत्रियों को पुलिस या फ़ौज का सहारा लेना पड़ा है, उस हद तक, मेरी राय में, हमें अपनी असफलता स्वीकार करनी ही चाहिए। क्योंकि दुर्भाग्यवश यह बिलकुल सच है कि मंत्री लोग इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते थे। अत: मेरी ही तरह यदि हरएक काँग्रेसवादी और काँग्रेस कार्यसमिति भी यह सोचती हो कि हम असफल सिद्ध हुए हैं, तो मैं चाहुँगा कि वे इस बात पर विचार करें कि हम असफल क्यों हुए। [ह. से., २६-३-'३८, पृ. ४४]

६८. आत्म-परीक्षण की अपील

संयुक्त प्रान्त के दंगों से मेरे हृदय को गहरा आघात लगा है। मैंने मौलाना अबुल कलाम आजाद और बोस-बंधुओं के साथ अहिंसा की दृष्टि से इस पर चर्चा की। मुझे ऐसा लगा कि हम अपने ध्येय के समीप नहीं जा रहे हैं, बल्कि उससे दूर हट रहे हैं। हरिपुरा में मेरे मन में यह आशा पैदा हुई थी कि हमारी शक्ति बढ़ती जा रही है और हमारे दोषों के बावजूद मैं अपने जीवन-काल में स्वराज्य देख सकूँगा। मैंने यह सोचा था कि इस साल हम वह शक्ति प्राप्त कर लेंगे। लेकिन इलाहाबाद और दूसरी जगहों में जो दंगे

हुए हैं, उनसे मेरे दिल को सख्त चोट लगी है। हमें पुलिस और फ़ौज की मदद लेनी पड़ी, यह हमारे लिए लज्जाजनक बात हुई।. . . [ह. से., ९-४-'३८, पृ. ५८-५९]

संयुक्त प्रान्त में हाल में जो दंगे हुए हैं, उनके सम्बन्ध में मेरी आलोचनाओं की ओर बहुतों का ध्यान गया है। मित्रों ने मेरे पास अखबारों की कतरनें भेजी हैं। उनमें लिखित या मौखिक आलोचना का एक मुद्दा यह है:

- (२) मैंने पर्याप्त तथ्यों के बिना अपनी बात लिखी है।. . .
- 2. जहाँ तक तथ्यों का सवाल है, इतना ही पर्याप्त है कि दंगे हुए, फिर वे कितने ही छोटे क्यों न हों। काँग्रेसवादी अहिंसात्मक पद्धित से उनका सामना नहीं कर सके और उन्हें शान्त करने के लिए पुलिस और फ़ौज की मदद लेनी पड़ी। इन तीन मुख्य बातों के बारेमें कोई मतभेद नहीं है। और मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा, उसके लिए इतनी बातें काफ़ी थीं। इसमें मंत्रियों पर कोई आक्षेप नहीं है। बल्कि यह बात मैं खुद स्वीकार कर चुका हूँ कि वे दूसरा कुछ कर ही नहीं सकते थे। लेकिन यह बात तो रहती ही है कि काँग्रेस की अहिंसा संकट के समय कारगर सिद्ध नहीं हुई। [ह. से., ९-४-'३८, पृ. ५७]

मैं इस बात से लज्जित हूँ कि हमारे मंत्रियों को अपनी सहायता के लिए पुलिस और फ़ौज को बुलाना पड़ा। उन्होंने अपने विरोधी दल वाले वक्ताओं के भाषणों के उत्तर में जिस भाषा का प्रयोग किया, उसके लिए भी मैं लज्जित हूँ। . . . ऐसे मौकों पर हम लोगों की अहिंसा असफल कैसे हो जाती है? तब क्या वह निर्बलों की अहिंसा है? हमारी अटल श्रद्धा से हमें गुंडे भी न डिगा सकें और न यह कहने के लिए हमें बाध्य कर सकें कि ज़रूरत पड़ने पर हम उन्हें फाँसी के तख्ते पर लटका देंगे या गोली से उड़ा देंगे – ऐसी हमारी स्थिति होनी चाहिए। वे भी तो हमारे ही देशवासी हैं। यदि वे हमें मारना चाहते हैं, तो ऐसा करने के लिए उन्हें स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। आप निर्बलों की अहिंसा को संगठित हिंसा के मुकाबले में खड़ा नहीं कर सकते। उसके लिए तो बहादुर से बहादुर लोगों की अहिंसा ही उपयुक्त हो सकती है। [ह. से., २-४-'३८, पृ. ५२]

काँग्रेस के जो हज़ारों सदस्य हैं, वे काँग्रेस के सदस्य बनते समय जिस फार्म पर हस्ताक्षर करते हैं उसके परिणामों को क्या वे जानते हैं?...क्या वे सब सच्चे अर्थों में सदस्य हैं? क्या नकली सदस्यों का होना ही अहिंसा के सिद्धांत का भंग नहीं है? जहाँ सदस्य नकली नहीं किन्तु वास्तविक हैं, वहाँ क्या प्रान्त की काँग्रेस कमेटी ने दंगों को शान्त करने में अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए उनसे कहा है? हम उन्हें इस प्रकार क्यों नहीं कहते? और अगर कभी हम उन्हें इसके लिए कहें, तो दस हज़ार में से कितने हज़ार सदस्य उस पर ध्यान देंगे? अगर पाँच हज़ार या सिर्फ एक हज़ार भी उस पर ध्यान दें और लड़ने वाले लोगों के बीच में जाकर खड़े हो जायें, तो इसमें कोई शक नहीं कि उनमें से कुछ के सिर ज़रूर फूट जाएँगे, लेकिन इस तरह मरने वाले वही आख़िरी आदमी होंगे। इसके बाद औरों के सिर फूटने की नौबत नहीं आयेगी। लेकिन यह तभी हो सकता है जब अहिंसा-धर्म के परिणामों को भलीभाँति समझ लिया जाये।

एक सच्चे काँग्रेसवादी को तो ऐसे अवसरों पर पुलिस और फ़ौज की मदद की इच्छा ही नहीं होनी चाहिए। लेकिन अगर हमें ऐसा करना ही पड़े, अगर हमारी अहिंसा बलवानों की नहीं बल्कि कमजोरों की अहिंसा है, तो दुनिया को यह समझने देने के बजाय कि हम मन-वचन-कर्म में अहिंसक हैं, हमारे लिए अपने ध्येय को बदल देना ज्यादा अच्छा होगा। [ह. से., १६-४-'३८, पृ. ६९]

६९. नागरिक स्वाधीनता

नागरिक स्वाधीनता का अर्थ अपराध करने की आज़ादी नहीं है। जब कानून और व्यवस्था लोक-नियंत्रण में हों तब जिन मंत्रियों की अधीनता में ये कार्य-विभाग होते हैं वे एक दिन भी नहीं टिक सकते, अगर वे लोकमत के ख़िलाफ़ कुछ करने लगें। यह सच है कि धारासभाएँ अभी समस्त जनता का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही हैं, तो भी मताधिकार इतना व्यापक ज़रूर हो गया है कि कानून और व्यवस्था के विषय में वे राष्ट्र के मत का प्रतिनिधित्व कर सकें। आज देश के सात प्रान्तों में काँग्रेस का शासन चल रहा है। मालूम होता है कि कुछ लोगों ने तो इसका अर्थ यह समझा है कि कम से कम इन प्रान्तों में तो आदमी जो चाहे सो कह और कर सकता है। पर जहाँ तक मैंने काँग्रेस की मनशा को समझा है, वह इस प्रकार की स्वच्छंदता को बरदाश्त नहीं करेगी। नागरिक स्वाधीनता के मानी यह है कि साधारण कानून की मर्यादा के अंदर रहते हुए आदमी जो चाहे सो कहे और करे। 'साधारण' शब्द का प्रयोग यहाँ पर जान-बूझकर किया गया है। विशेषाधिकार देने वाले कानूनों की बात छोड़ दीजिए। किन्तु ताजीरात हिंद और फौजदारी कानून के अंदर भी विदेशी शासकों ने अपनी रक्षा के लिए कितनी ही धाराएँ डाल रखी हैं। इन धाराओं को हम बड़ी आसानी से ढूँढ़ सकते हैं, और उन्हें रद कर दिया जाना चाहिए। पर सच्ची कसौटी तो वह अर्थ होगा, जो कानून और व्यवस्था के मंत्रियों को काँग्रेस की कार्यसमिति बतायेगी। इसलिए कार्यसमिति ने काँग्रेस के मंत्रियों के मार्गदर्शन के लिए जो सूचनाएँ जारी कर रखी हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए मंत्री अपनी सत्ता का उपयोग मेरी बताई मर्यादाओं के भीतर उन लोगों के ख़िलाफ़ कर सकते हैं, जो नागरिक स्वाधीनता के नाम पर अराजकता और अव्यवस्था का प्रचार करते हैं।

किसी-किसी का कहना है कि काँग्रेसी मंत्री तो अहिंसा के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। इसलिए वे ऐसे कानून का उपयोग नहीं कर सकते, जिसमें सजा का विधान हो। काँग्रेस द्वारा स्वीकृत अहिंसा को जहाँ तक मैं समझा हूँ वहाँ तक यह ख़याल ठीक नहीं है। मैं ख़ुद अभी कोई ऐसा मार्ग नहीं खोज़ पाया हूँ जिसकी मदद से हर तरह की परिस्थिति में हम सजाओं और दंडात्मक प्रतिबंधों के बिना काम चला सकें। निःसंदेह सजाएँ अहिंसक ही होनी चाहिए – अगर यहाँ यह भाषा-प्रयोग सही हो। जिस प्रकार युद्धशास्त्र हिंसा की एक विशेष विधि है और उसमें संहार के ऐसे तरीके तथा साधन ढूँढे गये हैं जिनके बारेमें पहले किसीने सुना भी नहीं था, उसी प्रकार अहिंसा का भी एक शास्त्र है, एक कार्य-पद्धति है। राजनीतिशास्त्र के रूप में अहिंसा का विकास होना अभी बाकी है। उसकी विशाल शक्तियों का अभी हमें पता लगाना है। अनेक क्षेत्रों में और बडे पैमाने पर जब अहिंसा का प्रयोग होने लगेगा, तब तब इस विषय के संशोधन भी हो सकेंगे। अगर काँग्रेस के मंत्रि-मंडलों को अहिंसा में विश्वास होगा, तो वे इस संशोधन के काम को अपने हाथों में ले लेंगे। पर जब तक वे ऐसा करते हैं, अथवा वे ऐसा करें या न भी करें तब तक इसमें तो कोई शक नहीं कि वे अभी ऐसे कार्यों को या भाषणों को बरदाश्त नहीं कर सकते, जिससे हिंसा को उत्तेजना मिलती हो - भले ही इस कारण इन्हें लोग हिंसक वृत्ति वाला बतायें। जब लोग देखें कि उन्हें ऐसे मंत्रियों की सेवाओं की ज़रूरत नहीं है, तो वे अपने प्रतिनिधियों के ज़रिए अपनी असंमति प्रकट कर दें। अगर काँग्रेस की ओर से मंत्रियों को कोई खास सूचना न मिली हो, तो मंत्रियों के लिए यह उचित होगा कि वे अपनी प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी को या कार्यसमिति को यह सूचना कर दें कि उनकी राय में जनता में अमुक व्यक्ति का व्यवहार हिंसा को उत्तेजित करने वाला है और उसके बारेमें प्रान्तीय समिति या कार्यसमिति की आज्ञा माँग ले। अगर उनके उच्चाधिकारी उनकी सिफ़ारिशों को स्वीकार न करें, तो मंत्री अपने इस्तीफे पेश कर दें। उन्हें परिस्थिति को यहाँ तक बिगडने का मौका ही नहीं देना चाहिए कि फ़ौज को बुलाने की नौबत आ जाय। असल में अहिंसा की किसी भी योजना में देश की भीतर शान्ति के लिए तो फ़ौज की ज़रूरत हो ही नहीं सकती। और अगर किसी मंत्री को अपनी सहायता के लिए उस फ़ौज को बुलाने पर मजबूर होना ही पड़े – जो जनता के अधीन नहीं है – तो मैं तो इसे हमारा राजनैतिक दिवालियापन ही समझूँगा।

मैं तो भारतीय ज्ञासन-विधान का एक अर्थ यह लगाता हूँ कि वह अनजान में राष्ट्रीय काँग्रेसवादियों के लिए इस बात की चुनौती है कि वे अहिंसा की महत्ता और उसमें अपनी अटल श्रद्धा सिद्ध करें। अगर काँग्रेस इस बात का स्पष्ट प्रमाण दे सकेगी तब तो अधिकांज्ञ संरक्षण अपने आप बेकार हो जाएँगे और अहिंसात्मक संघर्ष अथवा सविनय अवज्ञा के बिना भी काँग्रेस अपने लक्ष्य की सिद्धि कर लेगी। अगर काँग्रेस जनता के अंदर अहिंसा की भावना इतनी पूर्णता के साथ न भर सकी, तब या तो उसे अपना सिद्धांत छोड़ना पड़ेगा या अल्पसंख्या में रहकर विरोध करते रहना पड़ेगा। [ह. से., २३-१०-'३७, पृ. २८६]

७०. तूफान के आसार

शोलापुर की हाल की घटना से और कानपुर तथा अहमदाबाद के मज़दूरों की अशान्ति से यह ज़ाहिर होता है कि इस प्रकार के उपद्रवों की शक्तियों पर काँग्रेस का नियंत्रण कितना संदिग्ध है। 'जरायम-पेशा' कहलाने वाली जातियों के साथ पहले जिस तरह व्यवहार किया जाता था, उससे अत्यंत भिन्न किसी प्रकार से उनके साथ तब तक व्यवहार नहीं किया जा सकता, जब तक इस बात का निश्चय न हो जाय कि वे कैसा बरताव करेंगी। हाँ, एक फर्क ज़रूर फौरन किया जा सकता है। उनके साथ अपराधियों जैसा व्यवहार न किया जाय। न तो उनसे हम डरें और न उन से घृणा करें, बल्कि उनके साथ भाईचारा जोड़ने और उन्हें राष्ट्रीय प्रभाव के नीचे लाने के प्रयत्न करें। यह कहा जाता है कि शोलापुर की जरायम-पेशा बस्ती के आदिमयों को लाल झंडे वाले (साम्यवादी) अंदर ही अंदर उभाड़ते हैं। क्या वे काँग्रेस के आदिमी हैं? यदि हाँ, तो वे उन काँग्रेसियों के पक्ष में क्यों नहीं हैं, जो कि काँग्रेस की इच्छा से आज मंत्रीपद पर आसीन हैं? और अगर वे काँग्रेसजन नहीं हैं, तो क्या वे काँग्रेस के प्रभाव और प्रतिष्ठा को नष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं? यदि वे काँग्रेसी नहीं हैं और काँग्रेस की प्रतिष्ठा को नष्ट करना चाहते हैं, तो काँग्रेसजन इन जातियों के पास क्यों नहीं पहुँचे? और काँग्रेसजन ऐसा कोई उपाय करने में

असमर्थ क्यों रहे, जिससे उन लोगों के फुसलाने का इन जातियों पर कोई असर न पड़े, जो इन जातियों की आनुवंशिक – कल्पित या वास्तविक - हिंसात्मक प्रवृत्तियों का अनुचित लाभ उठाते हैं?

अहमदाबाद और कानपुर में हमें क्यों हमेशा ही अचानक और अनुचित ढंग पर हड़तालों के होने का डर लगा रहता है? संगठित मज़दूरों पर सही दिशा में अपना प्रभाव डालने में काँग्रेस क्यों असमर्थ है? जिन प्रान्तों में आज काँग्रेसी मंत्रियों द्वारा शासन चल रहा है, उनमें वहाँ की सरकार के ज़ारी किये हुए नोटिसों को हम अविश्वास की नज़र से न देखें। हम गैर-ज़िम्मेदार सरकार के नोटिसों को कोई महत्त्व नहीं दिया करते थे; वैसा व्यवहार इन नोटिसों के साथ करने से काम नहीं चलेगा। अगर हमारा काँग्रेसी मंत्रियों पर विश्वास नहीं है या हम उनसे असंतुष्ट हैं, तो वे बिना किसी शिष्टाचार के बरखास्त किये जा सकते हैं। लेकिन जब तक हम उन्हें मंत्रीपद पर बने रहने देते हैं तब तक उनके नोटिसों और अपीलों को सारे काँग्रेसजनों का पूर्ण हार्दिक समर्थन मिलना चाहिए।

काँग्रेसियों का पद-ग्रहण किसी और हालत में उचित नहीं ठहराया जा सकता। काँग्रेसजनों के सच्चे प्रयत्न के बावजूद अगर ये उपद्रव पुलिस और फ़ौज की सहायता लिये बिना काबू में नहीं लाये जा सकते, तो मेरी राय में काँग्रेस के पद-ग्रहण का तमाम बल और अर्थ चला जाता है, और उस हालत में जितनी ज़ल्दी मंत्री अपने पदों पर से हट जाएँ उतना ही काँग्रेस और उसकी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने की लड़ाई के हक में बेहतर होगा।

मैं जानता हूँ कि शोलापुर की जरायम-पेशा बस्ती का उपद्रव और अहमदाबाद तथा कानपुर के मज़दूरों की अशान्ति उन अतिरंजित आशाओं के आसार हैं, जो कि मज़दूरों की और तथाकथित जरायम-पेशा जातियों की भी हालत को जड़मूल से सुधारने के लिए दिलाई गई थीं। तब तो काँग्रेस को ये उपद्रव रोकने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अगर इसके विपरीत ये काँग्रेस के शासन की कमजोरी के चिह्न हैं, तब तो काँग्रेसियों के पद-ग्रहण से उत्पन्न होने वाली सारी स्थिति पर फिर से ध्यानपूर्वक विचार करने की ज़रूरत है।

एक बात निश्चित है। काँग्रेस के संगठन को मज़बूत बनाने और उसमें से तमाम गंदगी को बाहर निकालने की ज़रूरत है। काँग्रेस के सदस्य न सिर्फ कुछ लाख पुरुष और स्त्रियाँ हों, बल्कि १८ वर्ष से ऊपर के हरएक बालिग पुरुष और स्त्री को उसका सदस्य होना चाहिए, फिर वे किसी भी धर्म के हों। और काँग्रेस के रजिस्टर में उनके नाम इसलिए दर्ज किये जायें कि वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता की लड़ाई के अथों में सत्य और अहिंसा के आचरण की ठीक-ठीक तालीम और शिक्षण पायें। काँग्रेस के बारेमें मेरी हमेशा यह कल्पना रही है कि वह सारे राष्ट्र को राजनीतिक शिक्षा देने का सबसे बड़ा विद्यालय है। लेकिन काँग्रेस इस आदर्श की सिद्धि से अभी बहुत दूर है। सुनने में आता है कि काँग्रेस के झूठे रजिस्टर बनाये जाते हैं और संख्या बढ़ाने की गरज से उनमें सदस्यों के झूठे नाम लिख लिये जाते हैं; और जहाँ रजिस्टर ईमानदारी के साथ तैयार किये जाते हैं, वहाँ मतदाताओं के निकट संपर्क में रहने का प्रयत्न नहीं किया जाता।

स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि क्या हम सचमुच सत्य और अहिंसा में, ठोस काम और अनुशासन में तथा चतुर्विध रचनात्मक कार्यक्रम की शक्ति में विश्वास करते हैं? अगर करते हैं तो काँग्रेसी मंत्रियों के चंद महीनों के शासन में यह दिखाने के लिए काफ़ी प्रमाण मिल चुका है कि जब पद स्वीकार किये गये थे तब से पूर्ण स्वाधीनता आज हमारे अधिक निकट है। परन्तु यदि हमें अपने खुद के पसंद किये हुए उद्देश्यों में विश्वास नहीं है, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए अगर किसी दिन हमारी आँखें खुल जाएँ और हम देखें कि पद-ग्रहण की दिशा में कदम रखकर हमने एक भारी भूल की थी। पद-ग्रहण की दिशा में एक प्रवर्तक बल्कि प्रधान प्रवर्तक की हैसियत से मेरी अंतरात्मा बिलकुल स्पष्ट है। मैंने इस ख़याल से पद-ग्रहण की सलाह दी थी कि काँग्रेसवादी कुल मिलाकर न केवल लक्ष्य पर बल्कि सत्यतापूर्ण और अहिंसात्मक साधनों पर भी दृढ़ हैं। अगर साधनों में इस राजनीतिक श्रद्धा पर हमारा विश्वास नहीं है, तो संभव है कि पद-ग्रहण एक जाल साबित हो। [ह. से., २०-११-'३७, पृ. ३१८]

७१. विद्यार्थी और हड़तालें

बंगलोर से कॉलेज का एक विद्यार्थी लिखता है:

मैंने *हरिजन* में आपका लेख पढ़ा है। अंदमान-दिवस, कसाईखाना विश्तरेध-दिवस वगैरह की हड़तालों में विद्यार्थियों को भाग लेना चाहिए या नहीं, इस विषय में मैं आप की राय जानना चाहता हूँ।

विद्यार्थियों की वाणी और आचरण पर लगे हुए प्रतिबंधों को हटाने की पैरवी मैंने ज़रूर की है, लेकिन राजनीतिक हड़तालों या प्रदर्शनों में उनके भाग लेने का समर्थन मैं नहीं कर सकता। विद्यार्थियों को अपनी राय रखने और उसे प्रकट करने की पूरी-पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। वे चाहे जिस राजनीतिक दल के प्रति खुले तौर पर सहानुभूति प्रगट कर सकते हैं। पर मेरी राय में अपने अध्ययन-काल में उन्हें सिक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेने की स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए। विद्यार्थी राजनीति में सिक्रय भाग लें और साथ-साथ अपना अध्ययन भी जारी रखें, यह नहीं हो सकता। राष्ट्रीय उत्थान के समय इन दोनों के बीच स्पष्ट भेद करना मुश्किल हो जाता है। उस समय विद्यार्थी हड़ताल नहीं करते, अथवा यदि ऐसी परिस्थितियों में 'हड़ताल' शब्द का उपयोग किया जा सकता हो तो वह पूरी सामूहिक हड़ताल होती है; उस समय वे अपनी पढ़ाई को स्थिगत कर देते हैं। इसलिए जो प्रसंग अपवादरूप दिखाई देता है, वह असल में अपवादरूप नहीं है।

वास्तव में पत्रलेखक ने जो प्रश्न उठाया है, वह काँग्रेसी प्रान्तों में तो उठना ही नहीं चाहिए। क्योंकि वहाँ तो ऐसा एक भी अंकुश नहीं हो सकता, जिसे विद्यार्थियों का श्रेष्ठ वर्ग स्वेच्छा से स्वीकार न करे। अधिकांश विद्यार्थी काँग्रेसी मनोवृत्ति के हैं और होने चाहिए। वे ऐसा कोई भी काम नहीं करेंगे, जिससे मंत्रियों की स्थित संकट में पड़ जाय। वे हड़ताल करेंगे तो केवल इसी कारण से करेंगे कि मंत्री उनसे ऐसा कराना चाहते हैं। परन्तु काँग्रेस जब पदों का त्याग कर दे और जब काँग्रेस कदाचित् तत्कालीन सरकार के ख़िलाफ़ अहिंसात्मक लड़ाई छेड़ दे, तो उस प्रसंग के अलावा जहाँ तक मैं कल्पना कर सकता हूँ काँग्रेसी मंत्री कभी भी विद्यार्थियों से हड़ताल करने के लिए नहीं कहेंगे। और कभी ऐसा प्रसंग आ जाय तब भी मुझे लगता है कि प्रारंभ में ही विद्यार्थियों से हड़ताल के लिए पढ़ाई स्थिगत करने की बात कहना मानों अपना दिवाला पीटना होगा। अगर हड़ताल जैसे किसी भी प्रदर्शन के लिए काँग्रेस के साथ जनसमूह होगा, तो विद्यार्थियों की – सिवा अंतिम सहारे के रूप में - उसमें शामिल होने के लिए नहीं कहा जाएगा। गत स्वातंत्र्ययुद्ध के समय विद्यार्थियों को सबसे पहले उसमें शामिल होने के लिए नहीं कहा गया था। मुझे जहाँ तक याद है सब से अंत में कहा गया था – वह भी केवल कॉलेज के विद्यार्थियों से।

अच्छा हो कि एक अध्यापक के पत्र पर मैंने १८ सितम्बर के *हरिजन* में 'शिक्षामंत्रियों के प्रति' शीर्षक जो लेख लिखा है, उसे ये पत्रलेखक पढ़ जाएँ या दुबारा पढ़े। विद्यार्थियों और अध्यापकों की राजनीतिक स्वतंत्रता के विषय में मेरे विचार उस लेख में उन्हें मिल जाएँगे।

लेकिन दूसरे एक सज्जन इसी सम्बन्ध में लिखते हैं:

अगर हम सरकार के वेतनभोगी अफसरों, अध्यापकों और दूसरे कर्मचारियों को राजनीति में भाग लेने देंगे, तो सब कुछ चौपट हो जाएगा। सरकार की नीति पर जिन सरकारी अफ़सरों को अमल करना है वे ही अगर उस नीति के सम्बन्ध में वादिववाद करने लग जायें, तो कोई भी सरकार चल नहीं सकती। आपकी यह अभिलाषा उचित ही है कि राष्ट्र की आशाओं, आकांक्षाओं और देशभिक्त के विचारों को प्रकट करने की पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। पर मुझे भय है कि आप अपनी स्थिति को अगर बिलकुल स्पष्ट नहीं करेंगे, तो आपके लेख से गलतफहमी पैदा हो सकती है।

मेरा ख़याल था कि मैंने अपने विचारों को बिलकुल स्पष्ट रूप में बता दिया है। जहाँ राष्ट्रीय सरकार होती है वहाँ उसके तथा उसके अधिकारियों और विद्यार्थियों के बीच शायद ही कोई संघर्ष होता है। मेरे उक्त लेख में अनुशासन-भंग के प्रति तो चेतावनी है ही। उन अध्यापक का रोष तो इस बात पर है कि अब भी विद्यार्थियों के पीछे जासूस रखे जाते हैं और उनके स्वतंत्र विचारों को कुचला जाता है; और उनका यह रोष उचित ही है। काँग्रेस के मंत्री खुद प्रजा के हैं और प्रजा में से ही आये हैं। उन्हें कोई बात गुप्त नहीं रखनी है। उनसे आशा तो यह की जाती है कि वे हरएक सार्वजनिक प्रवृत्ति से व्यक्तिगत संपर्क रखेंगे - जिसमें विद्यार्थियों का मानस भी आ जाता है। काँग्रेस का सारा तंत्र उनके हाथ में है, चूँिक वह तंत्र प्रजा की इच्छा का प्रदर्शक है, अत: इसकी शक्ति कानून, पुलिस और फ़ौज की अपेक्षा निश्चय ही अधिक है। जिन्हें इस प्रकार के लोकतंत्र का समर्थन प्राप्त नहीं है, वे बन्दूक के काम में लाये हुए खाली कारतूस के समान हैं। जिन मंत्रियों के पीछे काँग्रेस का बल है, उनके लिए कहा जा सकता है कि कानून, पुलिस और फ़ौज केवल ऊपरी शोभा की चीजें हैं। और काँग्रेस तो अनुशासन की, नियमपालन की मूर्ति है; अगर यह बात उसमें न हो तो फिर उसमें और रखा ही क्या है? इसलिए काँग्रेस के शासन-काल में

नियम का पालन सर्वत्र मजबूरन् नहीं, बल्कि स्वेच्छा से ही होना चाहिए। [ह. से., ९-१०-'३७, पृ. २७०-७१]

७२. क्या यह पिकेटिंग है?

एक शिकायत यह है कि शान्त पिकेटिंग के नाम पर धरना देने वाले लोग ऐसे उपायों का सहारा ले रहे हैं, जो हिंसा की हद तक पहुँच जाते हैं – जैसे वे जिन्दा आदिमयों को खड़ा करके दीवार-सी बना लेते हैं, जिसे खुद अपने को या दीवार बनाने वालों को चोट पहुँचाये बिना कोई पार नहीं कर सकता। शान्त पिकेटिंग मेरी चलाई हुई है; लेकिन मुझे ऐसा एक भी उदाहरण याद नहीं, जिसमें मैंने ऐसी पिकेटिंग को प्रोत्साहन दिया हो। एक मित्र ने इस सम्बन्ध में धरासना का हवाला दिया है। वहाँ मैंने नमक के कारखाने पर अधिकार करने की बात ज़रूर सुझाई थी, लेकिन इस मामले में वह बात बिलकुल लागू नहीं होती। धरासना में तो हमारा लक्ष्य नमक के कारखाने पर था, जिसे सरकार के हाथ से छीनकर हमें अपने अधिकार में लेना था। उस कार्य को पिकेटिंग शायद ही कहा जा सकता है। लेकिन यह तो शुद्ध हिंसा है कि कर्मचारियों या मजदूरों के आगे खड़े होकर उन्हें अपने काम पर जाने से रोका जाय। इसलिए इसे तो छोड़ ही देना चाहिए। ऐसा करने वाले काँग्रेसवादी अगर इससे बाज न आयें, तो मिलों या अन्य कारखानों के मालिकों का इसके लिए पुलिस की मदद लेना बिलकुल उचित होगा और काँग्रेसी सरकार को यह मदद देनी ही होगी। [ह. से., १३-८-'३८, पृ. २०४]

जिस (दूसरी) असंगतता का मुझ पर आरोप लगाया गया है, वह कारखानेदारों को दी गई मेरी यह सलाह है कि जिसे मैंने हिंसात्मक पिकेटिंग कहा है उससे अपनी रक्षा करने के लिए वे पुलिस की मदद ले सकते हैं। मेरे आलोचकों का यह कहना है कि दंगों को दबाने के लिए मंत्रि-मंडलों ने पुलिस और फ़ौज की जो मदद ली, उसकी निंदा करने के बाद मैं मज़दूर रखने वाले मालिकों को पुलिस की मदद लेने और मंत्रियों से वैसी मदद देने के लिए कैसे कह सकता हूँ?

संयुक्त प्रान्त के मंत्रियों के कार्य पर *हरिजन* में मैंने जो कुछ लिखा था, वह इस प्रकार है : यह कहा जाता है कि जब हम स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे तब दंगे और अन्य ऐसी बातें नहीं होंगी। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि स्वतंत्रता-संग्राम में अगर हम अहिंसात्मक कार्य की पद्धित को अच्छी तरह समझकर हरएक कल्पनीय परिस्थिति में उसका उपयोग न करें, तो हमारी यह आज्ञा थोथी ही सिद्ध होगी। जिस हद तक काँग्रेसी मंत्रियों को पुलिस या फ़ौज का सहारा लेना पड़ा है, उस हद तक मेरी राय में हमें अपनी असफलता स्वीकार करनी ही चाहिए। क्योंकि दुर्भाग्यवज्ञ यह बिलकुल है कि मंत्री लोग इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते थे। अतः मेरी ही तरह अगर हरएक काँग्रेसवादी और काँग्रेस कार्यसमिति का भी यह ख़याल हो कि हम असफल हुए हैं, तो मैं चाहूँगा कि वे इस बात पर विचार करें कि हम असफल क्यों हुए।

निश्चय ही इसमें मंत्रियों के कार्य की कोई निंदा नहीं है। मैंने तो पुलिस की आवश्यकता पड़ने पर उसी तरह दुःख प्रकट किया है जैसा कि पिकेटिंग के मामले में भी ऐसी आवश्यकता पड़ने पर मैं करूँगा। लेकिन जब तक हिंसात्मक अपराधों का सामना करने के लिए काँग्रेस कोई शान्तिपूर्ण पद्धित न निकाल ले, तब तक काँग्रेसी मंत्रियों को अगर देश की मौजूदा हालत में उसके शासन का भार सँभालना है, तो उन्हें पुलिस का और, मुझे भय है कि, फ़ौज का भी उपयोग करना ही पड़ेगा। यह ज़रूर है कि अगर वे कोई ऐसी पद्धित न ढूँढ़ निकालेंगे, जिससे पुलिस और फ़ौज के उपयोग की ज़रूरत ही न रहे या कम से कम उनका उपयोग इतना कम कर दिया जाय कि देखने वाले को वह कभी साफ मालूम पड़ने लगे, तो उनके लिए वह दुर्भाग्य की बात होगी। [ह. से., २७-८-'३८, पृ. २२०]

और पिकेटिंग का क्या हो? जो लोग बड़ी से बड़ी किठनाइयों के बीच जैसे-तैसे शासन के भारी बोझ को उठाये हुए हैं, उनके घरों या दफ्तरों पर जाकर बच्चे या बड़े उन्हें गालियाँ दें यह असहनीय है। सत्याग्रह की दृष्टि से जब तक इसका कोई सही उपाय हमें न मिले तब तक मंत्रियों को इस बात की छूट होनी ही चाहिए कि ऐसे अपराधों के लिए जो तरीक़ा उन्हें सबसे अच्छा लगे उसका वे उपयोग करें। अगर वे लोग ऐसा न करें, तो काँग्रेसी राज्य में जो स्वतंत्रता संभव है वह ज़ल्दी ही बिगड़कर शुद्ध गुंडेपन का रूप ले लेगी। वह मुक्ति का मार्ग नहीं, बल्कि सर्वनाश का सबसे आसान राजमार्ग है। इसलिए कोई भी वफ़ादार मंत्री देश के सर्वनाश का निमित्त बनने से दृढ़ता के साथ इनकार करेगा। [ह. से., १०-९-५2, पृ. २३७]

७३. मंत्रि-मंडल और सेना

प्रान्तीय स्वतंत्रता, जैसी कुछ भी वह है, सिवनय कातन-भंग के द्वारा – फिर वह कितने ही नीचे दर्जें का क्यों न रहा हो – हासिल की गई है। लेकिन क्या वह महसूस नहीं किया जाता कि अगर काँग्रेस – मंत्री पुलिस और फ़ौज की अर्थात् ब्रिटिश तोपों की सहायता के बिना अपना काम न चला सकें, तो वह स्वतंत्रता खतम हो जाएँगी? अगर आंशिक प्रान्तीय स्वतंत्रता अहिंसात्मक उपायों से प्राप्त की गई है, तो उसकी रक्षा भी उन्हीं उपायों से – किन्हीं दूसरे उपायों से नहीं – की जानी चाहिए। हालाँकि पिछले २० वर्षों से – सर्वाधिक जन-जागृति की इस अविध में – जनता को हथियारों का, जिनमें ईंट-पत्थर और लाठी भी शामिल हैं, , प्रयोग न करने और एकमात्र अहिंसा को ही अपनाने की शिक्षा दी जाती रही है, फिर भी हम जानते हैं कि जनता की तरफ से होने वाली वास्तिवक या काल्पनिक हिंसा को दबाने के लिए काँग्रेसी मंत्रियों को हिंसा का प्रयोग करने के लिए मजबूर होना पड़ा है।. . . तब क्या हमारी अहिंसा कमजोरों की अहिंसा थी? [ह. से, १-४-'३९, पृ. ५२]

७४. काँग्रेसी मंत्री और अहिंसा

श्री शंकरराव देव लिखते हैं:

लोगों की समझ में यह बात नहीं आ रही है कि जो लोग अपने को सत्याग्रही कहते हैं, वे मंत्री बनते ही फ़ौज और पुलिस का उपयोग क्यों करने लगते हैं। लोग मानते हैं कि धर्म या व्यवहार (नीति) के रूप में मानी हुई अहिंसा का यह भंग है। और ऊपरी विचार से यह सच भी मालूम होता है। काँग्रेसी मंत्रियों के विचारों में और व्यवहार में यह जो विरोध दिखाई देता है, उसका समर्थन करना आसान न होने के कारण हमारे कार्यकर्ता उलझन में पड़ जाते हैं। ओर इस विसंगति से लाभ उठाने वाले काँग्रेसी या गैर-काँग्रेसी प्रचारकों का मुकाबला करना उनके लिए मुक्किल होता है।

आम तौर पर काँग्रेसियों की अहिंसा कमजोरों की अहिंसा ही रही है। हिंदुस्तान की आज की हालत में यही हो सकता था, इसे तो आप भी जानते हैं। आप कहते हैं कि बलवान की अहिंसा में तेज होता है। फिर भी कमजोरों को बलवान बनाने के लिए आपने अहिंसा का उपयोग स्वीकार किया। इतना ही नहीं, बल्कि आप उनके नेता भी बने। इस तरह कमजोर होते हुए भी आज उनके हाथ में सत्ता आई है। यह असंभव है कि जो लोग अंग्रेजी हुकूमत के ख़िलाफ़ अहिंसा से लड़े, वे ही अब अपने हाथ में सत्ता लेकर देश में दंगा-फसाद के समय भी अहिंसा का उपयोग करके उसे मिटाने को तैयार हों। अगर वे ऐसी कोशिश करें भी, तो न वे अपनी कोशिश में सफल होंगे और न उन्हें इस काम में आम लोगों की हमदर्दी ही मिलेगी।

मैंने एक बार आपसे पूछा था कि क्या सत्याग्रही अपने हाथ में सत्ता या हुकूमत की बागडोर ले सकता है? अगर वह ले सकता है, तो उस सत्ता के ज़िरए वह अहिंसा को कैसे आगे बढ़ा सकता है? कृपा करके आप इस पर थोड़ा प्रकाश डालिये। जिसने अहिंसा को धर्म माना है, वह कभी सरकार में शामिल होना पसंद नहीं करेगा। और मेरी राय है कि उसे ऐसा करना भी नहीं चाहिए। लेकिन मैं मानता हूँ कि जिन्होंने अहिंसा को केवल नीति या व्यवहार की दृष्टि से अपनाया है, उनके लिए पद-ग्रहण करने में कोई दिक्कत न होनी चाहिए। बहुतेरे काँग्रेसियों ने मंत्रीपद सँभाले हैं और इसके लिए आपने उन्हें इजाज़त भी दी है। ऐसी हालत में सवाल यह उठता है कि उन मंत्रियों में जिनका अहिंसा में विश्वास है, उनसे आपका यह आशा रखना कहाँ तक उचित है कि वे खुद तो दंगा-फसाद के मौकों पर अहिंसा का ही उपयोग करें? अहिंसा के द्वारा सत्ता प्राप्त करने के बाद उसका इस प्रकार कैसे उपयोग किया जाय कि जिससे हुकूमत ही अनावश्यक हो जाय? अगर ऐसा कोई मार्ग आप न सुझायेंगे, तो हमारे अपने ध्येय तक पहुँचने में सत्याग्रह एक अधूरा साधन माना जाएगा।

मेरी दृष्टि से इसका उत्तर आसान है। कुछ समय से मैंने यह कहना शुरू कर दिया है कि काँग्रेस के विधान से 'सत्य और अहिंसा' शब्दों को हटा देना चाहिए। अगर हम यह समझकर चलें कि काँग्रेस के विधान से ये दोनों शब्द हटें या न हटें, फिर भी हम तो इन दोनों से दूर हट ही गये हैं, तो हम स्वतंत्र रूप से यह समझ सकेंगे कि कोई काम सही है या गलत।

मैं मानता हूँ कि जब तक भीतरी शान्ति बनाये रखने के लिए फ़ौज या पुलिस का भी उपयोग होगा, तब तक हम ब्रिटिश हुकूमत या दूसरी किसी विदेशी हुकूमत के अधीन ही रहेंगे – फिर चाहे देश का शासन काँग्रेसियों के हाथ में हो या दूसरों के हाथ में। मान लीजिए कि काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों का अहिंसा में विश्वास नहीं है। यह भी मान लीजिए कि लोग अर्थात् हिंदू, मुसलमान और दूसरे हिंदुस्तानी सेना और पुलिस का सहारा चाहते हैं। अगर वे यह सहारा चाहते हैं, तो वह उन्हें मिलता रहेगा। जो काँग्रेसी मंत्री अहिंसा में पूरा विश्वास रखते हैं, उन्हें सेना या पुलिस की मदद लेना अच्छा नहीं लगेगा। इसलिए वे इस्तीफा दे सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक लोगों में आपस में फैसला करने की शक्ति नहीं आ जाती तब तक दंगा-फसाद होते रहेंगे और हम में अहिंसा का सच्चा बल पैदा ही नहीं होगा।

अब सवाल यह रहता है कि ऐसा अहिंसक बल कैसे पैदा हो सकता है? इस सवाल का उत्तर अहमदाबाद से आये हुए एक पत्र के उत्तर में ४ अगस्त, १९४६ को मैं 'पहले खुद कूदो' लेख में दे चुका हूँ। जब तक हमारे हृदयों में बहादुरी और प्रेम के साथ मरने की शक्ति पैदा नहीं होती, तब तक हम वीरों की अहिंसा के विकास की आशा नहीं रख सकते।

अब सवाल यह है कि आदर्श समाज के कोई राज्यसत्ता होगी या वह एक बिलकुल अराजक समाज बनेगा? मेरे विचार से ऐसा प्रश्न पूछने से कोई लाभ नहीं होगा। अगर हम ऐसे समाज के लिए मेहनत करते रहें, तो वह कुछ हद तक धीरे-धीरे बनता रहेगा। और उस हद तक लोगों को उससे लाभ पहुँचेगा। युक्लिड ने कहा है कि रेखा वही हो सकती है, जिसमें चौड़ाई न हो। लेकिन ऐसी रेखा न तो आज तक कोई बना पाया है और न आगे बना पायेगा। फिर भी रेखा को ध्यान में रखने के कारण ही हमने भूमिति में प्रगति की है। यही बात प्रत्येक आदर्श के बारेमें सच है।

इतना हमें ज़रूर याद रखना चाहिए कि आज दुनिया में कहीं भी अराजक समाज अस्तित्व में नहीं है। अगर ऐसा समाज कभी कहीं बन सकता है, तो उसका आरंभ हिंदुस्तान में ही हो सकता है; क्योंकि हिंदुस्तान में ऐसा समाज बनाने की कोशिश की गई है। आज तक हम आख़िरी दरजे की बहादुरी नहीं दिखा सके। परन्तु उसे दिखाने का एक ही मार्ग है; और वह यह है कि जो लोग उसमें विश्वास रखते हैं, वे उसे अपने जीवन में सिद्ध कर दिखाएँ। ऐसा करने के लिए हमें मृत्यु का भय उसी तरह छोड़ देना होगा, जिस प्रकार हमने जेलों का भय छोड़ दिया है। [ह. से., १५-९-'४६, पृ. ३०९-१०]

७५. सचमुच शर्म की बात

जिस अहमदाबाद शहर पर सरदार वल्लभभाई पटेल को नाज़ रहा है और जिसकी म्युनिसिपैलिटी में उन्होंने प्रथम श्रेणी का बुनियादी काम किया है, उससे आज भगवान रूठ गया है। अहमदाबाद के हिंदू और मुसलमान हमेशा एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर शान्ति से रहते आये हैं। लेकिन मालूम होता है कि इधर अहमदाबाद वालों पर पागलपन सवार हो गया है। इससे गांधीजी को अपार वेदना हुई है। प्रार्थना के बाद अपने एक भाषण में उन्होंने कहा:

मालूम होता है कि अहमदाबाद के हिंदू और मुसलमान हैवान बन गये हैं। अहमदाबाद में पिछले दिनों जो लोग मारे गये हैं, वे सब छुरी से या ऐसे ही दूसरे हिथयारों से किये गये आक्रमण से नहीं मरे हैं। यह सचमुच एक शर्म की बात है कि उन्हें एक-दूसरे का गला काटने से रोकने के लिए पुलिस और सेना की मदद लेनी पड़ती है। अगर एक पक्ष के लोग बदला लेना बन्द कर दें, तो दंगा आगे बढ़े ही नहीं। हिंदुस्तान के ४० करोड़ लोगों में से कुछ लाख लोग सही ढंग से मारे जाएँ या मर मिटें, तो उसमें कया हर्ज है? अगर वे बिना मारे मरने का सबक सीख सकें, तो इतिहास और पुराणों में कर्मभूमि के नाम से प्रसिद्ध भारतवर्ष स्वर्गभूमि बन जाय।

गांधीजी ने बम्बई सरकार के गृहमंत्री श्री मोरारजी देसाई से, जो अहमदाबाद जाने से पहले उनसे मिलने आये थे, कहा था कि उन्हें अकेले एक ईश्वर के भरोसे इस आग का सामना करना चाहिए और इसे बुझाने में पुलिस या सेना की मदद नहीं लेनी चाहिए। अगर ज़रूरत समझें तो वे खुद इस आग को बुझाने की कोशिश में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की तरह मर मिटें। श्री मोरारजी देसाई ने अहमदाबाद पहुँचकर वहाँ के हिंदुओं और मुसलमानों के प्रतिनिधियों की एक संयुक्त कान्फरेन्स बुलाई और उनसे कहा कि अगर आप चाहें तो शहर से पुलिस और सेना उठा लेने की मेरी तैयारी है। लेकिन वहाँ आये हुए लोगों ने एकराय होकर उनसे कहा कि हम ऐसा कोई खतरा उठाने को तैयार नहीं हैं। परिणाम यह हुआ कि शहर में पुलिस और सेना बनी रही। इस पर गांधीजी ने अत्यंत व्यथित होकर कहा : इस तरीके से कुछ समय के लिए अहमदाबाद में दंगे-फसाद ज़रूर रुक गये हैं। लेकिन आज वहाँ जो शान्ति दिखाई देती है वह तो स्मशान की शान्ति है। उस पर किसी को कोई नाज़ नहीं हो सकता। काश, हिंदू और

मुसलमान दोनों मिल जाते और उन्हें आपस के झगड़ों से दूर रखने के लिए बुलाई गई पुलिस और सेना की मदद लेने से वे इनकार कर देते।

गांधीजी ने लोगों को चेतावनी देते हुए कहा कि जब तक वे शान्ति और कानून की रक्षा के लिए पुलिस और सेना की मदद लेते रहेंगे, तब तक सच्ची आज़ादी की बात निरी बकवास ही रहेगी। [ह. से., १४-७-'४६, पृ. २१९]



विभाग- १२: विविध

७६. प्रान्तीय गवर्नर कौन हों?

यह पत्र आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने वर्धा से हिंदी में लिखा है:

एक सवाल है, जो मेरे ख़याल से महत्त्व का है और जिसके बारेमें मैं आपकी राय जानना चाहता हूँ। भारत का जो नया विधान बनाया जा रहा है, उसमें प्रान्तों के गवर्नर चुनने के लिए नियम रखे गये हैं। प्रान्त का गवर्नर उस प्रान्त के सभी बालिगों के मत से चुना जाएगा। इसलिए यह साफ ज़ाहिर है कि जिसे काँग्रेस का पार्लियामेन्टरी बोर्ड चुनेगा, उसे ही आम तौर से प्रान्त की जनता गवर्नर चुन लेगी। प्रान्त का मुख्यमंत्री भी काँग्रेस पार्ट का ही होगा। प्रान्त का गवर्नर ऐसा ही व्यक्ति होना चाहिए, जो उस प्रान्त की पार्टाबाजी से अलग रहे। लेकिन अगर प्रान्त का गवर्नर आम तौर से काँग्रेसी होगा और उसी प्रान्त का होगा, तो वह काँग्रेस दल की पार्टीबाजी से अलग नहीं रह सकेगा। या तो वह काँग्रेसी मुख्यमंत्री के इशारों पर चलेगा या फिर गवर्नर और मुख्यमंत्री के बीच कुछ न कुछ खींचातानी रहेगी।

मेरे ख़याल से तो प्रान्तों में अब गवर्नरों की ज़रूरत ही नहीं है। मुख्यमंत्री ही सब कामकाज चला सकता है। जनता का ५५०० रु. मासिक गवर्नर के वेतन पर व्यर्थ ही क्यों खर्च किया जाये? फिर भी अगर प्रान्तों में गवर्नर रखने ही हैं, तो वे उसी प्रान्त के नहीं होने चाहिए। बालिग मत से उन्हें चुनने में भी बेकार का खर्च और परेशानी होगी। यही अच्छा होगा कि संघ का राष्ट्रपति हर प्रान्त में दूसरे किसी प्रान्त का ऐसा प्रतिष्ठित काँग्रेसी सज्जन भेजे, जो उस प्रान्त की पार्टीबाजी से अलग रहकर वहाँ के सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन को ऊँचा उठा सके। आज प्रान्तों के जो गवर्नर केन्द्रीय सरकार ने नियुक्त किये हैं, वे क़रीब-क़रीब इन्हीं सिद्धांतों के अनुसार चुने गये हैं, ऐसा लगता है। और इसलिए प्रान्तों का राजनीतिक जीवन भी ठीक ही चल रहा है। अगर स्वतंत्र भारत के आगामी विधान में उसी प्रान्त का आदमी बालिग मत से चुनने का कायदा रखा गया, तो मुझे डर है कि प्रान्तों का राजनीतिक जीवन ऊँचा नहीं रह सकेगा।

उस विधान में ग्राम-पंचायतों का और राजनीतिक सत्ता को छोटी इकाइयों में बाँट देने का कोई जिक्र नहीं किया गया है। लेकिन मेरा उद्देश्य अपने पूज्य नेताओं की टीका करना ज़रा भी नहीं है। जो चीज़ मुझे खटकती है, उस पर मैं आपकी राय जानना चाहता हूँ।

आचार्यजी ने प्रान्तीय गवर्नरों के बारेमें जो कहा है, उसके समर्थन में कहने को तो बहुत है। लेकिन मुझे कबूल करना होगा कि मैं विधान-परिषद की सब कार्रवाई नहीं देख सका हूँ। मुझे इतना भी मालूम नहीं है कि गवर्नर के चुनाव का प्रस्ताव किस तरह पैदा हुआ। इसको न जानते हुए भी मुझे आचार्यजी की दलील मज़बूत लगती है। उसमें यह चीज़ मुझे चुभती है कि मुख्यमंत्री को गवर्नर समझा जाय और किसी दूसरे को गवर्नर हब बनाया जाय। इसके बावजूद कि लोगों की तिजोरी की कौड़ी-कौड़ी को बचाना मुझे बहुत पसंद है, पैसे की बचत के लिए प्रान्तीय गवर्नरों की संस्था को एकदम उड़ा देना सही अर्थशास्त्र नहीं होगा। गवर्नरों को हस्तक्षेप करने का बहुत अधिकार देना ठीक नहीं है। वैसे ही उनको सिर्फ शोभा के पुतले बना देना भी ठीक नहीं होगा। मंत्रियों के काम को सुधारने का अधिकार उन्हें होना चाहिए। प्रान्त की खटपट से अलग होने के कारण भी वे प्रान्त का कारोबार ठीक तरह से देख सकेंगे और मंत्रियों को गलतियों से बचा सकेंगे। गवर्नर लोग अपने अपने प्रान्त की नीति के रक्षक होने चाहिए।

आचार्यजी जैसा बताते हैं, अगर विधान में ग्राम-पंचायत और सत्ता को छोटी इकाइयों में बाँटने (विकेन्द्रीकरण) के बारेमें इशारा तक नहीं है, तो यह गलती दूर होनी चाहिए। अगर आम जनता की राय ही हमारे लिए सब कुछ है, तो पंचों का अधिकार जितना ज्यादा हो उतना लोगों के लिए अच्छा है। पंचों की कार्रवाई और प्रभाव लाभदायक हों, इसके लिए लोगों की सही शिक्षा बहुत आगे बढ़नी चाहिए। यह लोगों की फ़ौजी ताक़त की बात नहीं है, बल्कि नैतिक ताक़त की बात है। इसलिए मेरे मन में तो तालीम से नई तालीम का ही मतलब है। [ह. से. २१-१२-'४७, पृ. ४०५]

७७. भारतीय गवर्नर

१. हिंदुस्तानी गवर्नर को चाहिए कि वह खुद पूरे संयम का पालन करे और अपने आसपास संयम का वातावरण खड़ा करे। इसके बिना शराबबन्दी के बारेमें सोचा भी नहीं जा सकता।

- उसे अपने आप में और अपने आसपास हाथ-कताई और हाथ-बुनाई का वातावरण पैदा करना चाहिए, जो हिंदुस्तान के करोड़ों मूक लोगों के साथ उसकी एकता की प्रकट निशानी हो, 'मेहनत करके रोटी कमाने' की ज़रुरत का और संगठित हिंसा के ख़िलाफ़ – जिस पर आज का समाज टिका हुआ मालूम होता है – संगठित अहिंसा का जीता-जागता प्रतीक हो।
- अगर गवर्नर को अच्छी तरह काम करना है, तो उसे लोगों की निगाहों से बचे हुए और फिर भी सब की पहुँच के लायक छोटे से मकान में रहना चाहिए। ब्रिटिश गवर्नर स्वभाव से ही ब्रिटिश सत्ता को दिखाता था। उसके लिए और उसके लोगों के लिए सुरक्षित महल बनाया गया था ऐसा महल जिसमें वह और उसके साम्राज्य को टिकाये रखने वाले उसके सेवक रह सकें। हिंदुस्तानी गवर्नर राजा-नवाबों और दुनिया के राजदूतों का स्वागत करने के लिए थोड़ी शान-शौकत वाली इमारतें रख सकते हैं। गवर्नर के मेहमान बनने वाले लोगों को उसके व्यक्तित्व और आसपास के वातावरण से 'ईवन अन्दु दिस लास्ट' (सर्वोदय) सबके साथ समान बरताव की सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिए। उसके लिए देशी या विदेशी महँगे फर्नीचर की ज़रुरत नहीं। 'सादा जीवन और ऊँचे विचार' उसका आदर्श होना चाहिए। यह आदर्श सिर्फ उसके दरवाजे की ही शोभा न बढ़ाये, बल्कि उसके रोज के जीवन में भी दिखाई दे।
- ४. उसके लिए न तो किसी रूप में छुआछूत हो सकती है और न जाित, धर्म या रंग का भेद। हिंदुस्तान का नागरिक होने के नाते उसे सारी दुनिया का नागरिक होना चाहिए। हम पढ़ते हैं कि खलीफा उमर इसी तरह सादगी से रहते थे, हालाँिक उनके कदमों पर लाखों-करोड़ों की दौलत लोटती रहती थी। उसी तरह पुराने जमाने में राजा जनक रहते थे। इसी सादगी से ईटन के मुख्याधिकारी, जैसा कि मैंने उन्हें देखा था, अपने भवन में ब्रिटिश द्वीपों के सामन्तों और नवाबों के लड़कों के बीच रहा करते थे। तब क्या करोड़ों भूखों के देश हिंदुस्तान के गवर्नर इतनी सादगी से नहीं रहेंगे?
- ५. वह जिस प्रान्त का गवर्नर होगा उसकी भाषा और हिंदुस्तानी बोलेगा, जो हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा है और नागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती है। वह न तो संस्कृत शब्दों से भरी हुई हिंदी है और न फारसी शब्दों से लदी हुई उर्दू। हिंदुस्तानी दरअसल वह भाषा है, जिसे विंध्याचल के उत्तर में करोड़ों लोग बोलते हैं।



हिंदुस्तानी गवर्नर में जो-जो गुण होने चाहिए, उनकी यह पूरी सूची नहीं है। यह तो सिर्फ मिसाल के तौर पर दी गई है। [ह. से., २४-८-'४७, पृ. २४१]

७८. गवर्नर और मंत्रीगण

गवर्नरों का कर्तव्य और अधिकार अपने मंत्रियों को राज्य की नीति की मोटी-मोटी बातों पर सलाह देना और अमुक सत्ताओं पर अमल करने में रहे खतरे के बारेमें उन्हें सावधान कर देना है। परन्तु इतना करने के बाद उन्हें अपने मंत्रियों को उनके स्वतंत्र निर्णय पर अमल करने के लिए छोड़ देना चाहिए। अगर ऐसा न किया जाय, तो ज़िम्मेदारी शब्द का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा; और जो मंत्री अपने मतदाताओं के प्रति ज़िम्मेदार हैं, उनके हिस्से में अपमान और अनादर के सिवा दूसरा कुछ नहीं आयेगा – यदि कानून के द्वारा उनके हाथ में सौंपे गये दैनिक राजकाज में अपनी ज़िम्मेदारी को उन्हें गवर्नरों को साथ बाँटना पड़े। [ह. से., २६-२-'३८, पृ. २१]

७९. किसान प्रधानमंत्री

एक भाई ने मुझ से किसानों की बात की। मैंने कहा, मेरा चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा; हमारा प्रधानमंत्री किसान होगा; सब-कुछ किसान होगा; क्योंकि यहाँ का राजा किसान है। मुझे बचपन में सिखाया गया था: "हे किसान! तू बादशाह है।" किसान ज़मीन से अनाज पैदा न करे, तो हम क्या खायेंगे? हिंदुस्तान का सच्चा राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे हैं। आज किसान क्या करे? एम.ए. बने? बी.ए. बने? ऐसा किया तो किसान मिट जायेगा। बाद में वह कुदाली नहीं चलायेगा। जो आदमी अपनी ज़मीन में से अन्न पैदा करता है और खाता है, वह जनरल बने, प्रधान बने, तो हिंदुस्तान की शकल बदल जाएगी। फिर आज जो सड़ांध है, वह नहीं रहेगी। [ह, से., ८-२-'४८, पृ. २३]

८०. प्रधानमंत्री का श्रेष्ठ कार्य

हिंदू और सिक्ख शरणार्थियों के कष्टों का उल्लेख करते हुए गांधीजी ने कहा : पंडितजी को मैं जानता हूँ। उनके पास अगर एक गीला और एक सूखा दो बिछोने होंगे, तो वे सूखे पर किसी दुःखी को सुलायेंगे और गीला खुद लेंगे या कसरत करके अपने शरीर को गरम रखेंगे। मैं यह पढ़कर बहुत खुश हुआ कि उनका घर मेहमानों से भरा रहने पर भी वे कहते हैं कि मैं अपने घर में दो-एक कमरे शरणार्थियों के लिए निकाल दूँगा। उनमें दुःखियों को रखूँगा। ऐसा ही दूसरे बड़े धनी लोग और फ़ौजी अफसर भी करें, तो कोई दुःखी नहीं रहेगा। उसका बड़ा असर होगा। इस सुंदर देश में हमारे पास ऐसे रत्न हैं। दुःखी जब देखेगा कि बह अकेला नहीं है, उसके साथ और भी लोग हैं, तो उसका दुःख दूर होगा और वह मुसलमानों के साथ दुश्मनी नहीं करेगा। [दिल्ली-डायरी, (१९६०), पृ. ३५८]

एक भाई लिखते हैं कि जवाहरलालजी, दूसरे मंत्री और फ़ौजी अफसर वगैहर सब अपने-अपने घरों में से कुछ जगह शरणार्थियों के लिए निकालें, तो भी उनमें कितने लोग बस सकते हैं? कहने वाले ज्यादा हैं, करने वाले कम।

ठीक है। कुछ हज़ार ही उनमें रह सकेंगे। काम इतना बड़ा नहीं है, पर करने वाले एक उदाहरण सामने रखेंगे। इंग्लैंड के राजा कुछ भी त्याग करें, एक प्याली शराब भी छोड़े, तो भी उनकी कदर होती है। सब सभ्य देशों में ऐसा होता है। पंडित नेहरू ने सारे देश के सामने एक सुंदर उदाहरण रखा है। इसीलिए दिल्ली की तरफ अधिक शरणार्थी आकर्षित हो रहे हैं। ज़ाहिर है कि उन्हें लगता है कि दिल्ली में उनके साथ उत्तम व्यवहार होगा। [दिल्ली-डायरी, (१९६०), पृ. ३६३]

८१. विधानसभा का अध्यक्ष

जो अध्यक्ष (स्पीकर) कानून की किसी धारा के पाठ के स्पष्ट अर्थ का जान-बूझकर उलटा अर्थ करे, तो वह अपने को इस उच्च पद के अयोग्य सिद्ध करेगा और काँग्रेस के ध्येय को बदनाम करेगा। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह हर तरह से काँग्रेस की प्रामाणिकता और शुद्धता की साख बनाये रखे। लेकिन मेरा मतलब तो यही है कि जहाँ किसी धारा के स्पष्टत: दो या दो से अधिक अर्थ लगाये जा सकते हों, वहाँ अध्यक्ष इस बात के लिए बँधा हुआ है कि वह उसका वही अर्थ लगाये जो राष्ट्रीय ध्येय के अनुकूल पड़ता हो। लेकिन जब किसी धारा का सिर्फ एक ही अर्थ निकलता हो, तो अध्यक्ष को बिना किसी हिचिकचाहट के वही अर्थ बताना चाहिए। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि अध्यक्ष की ऐसी निष्पक्षता से उसकी ख्याति बढ़ेगी और उस हद तक काँग्रेस की नैतिक प्रतिष्ठा भी ज़रूर बढ़ेगी। हिंसा का परित्याग

कर देने के बाद काँग्रेस की शक्ति तो काँग्रेसवादियों की वैयक्तिक नैतिक दृढ़ता और निर्भयता पर ही पूर्णतः अवलम्बित है। [ह. से., १३-८-'३८, पृ. २०४]

८२. सरकारी नौकरियाँ

ऐसा लगता है कि अगर यूनियन के सारे प्रान्तों को हर दिशा में एकसी प्रगति करनी हो, तो हर प्रान्त की नौकरियाँ, पूरे हिंदुस्तान की प्रगति के ख़याल से, ज्यादातर वहाँ के रहने वालों को ही दी जानी चाहिए। अगर हिंदुस्तान को दुनिया के सामने स्वाभिमान से अपना सिर ऊँचा रखना है, तो किसी प्रान्त और किसी जाति या तबके को पिछड़ा हुआ नहीं रखा जा सकता। लेकिन हिंदुस्तान अपने हथियारों के बल पर ऐसा नहीं कर सकता, जिनसे दुनिया ऊब चुकी है। उसे अपने हर नागरिक के जीवन में और हाल में ही मेरे बताये हुए समाजवाद में प्रकट होने वाली अपनी मौलिक संस्कृति के द्वारा ही चमकना चाहिए।. . . इसका यह मतलब है कि अपनी योजनाओं या उसूलों को जनप्रिय बनाने के लिए किसी भी तरह की शक्ति या दबाव काम में न लिया जाय। जो चीज सचमुच जनप्रिय है, उसे सबसे मनवाने के लिए जनता की राय के सिवा दूसरी किसी शक्ति की शायद ही ज़रूरत हो। इसलिए बिहार, उड़ीसा और आसाम में कुछ लोगों द्वारा की गई हिंसा के जो बुरे दृश्य देखने में आये, वे कभी दिखाई नहीं देने चाहिए थे। अगर कोई आदमी नियम के ख़िलाफ़ काम करता है या दूसरे प्रान्तों के लोग किसी प्रान्त में आकर वहाँ के लोगों के अधिकार छिनते हैं, तो उन्हें दंड देने और व्यवस्था बनाये रखने के लिए जनप्रिय सरकार प्रातो में राज्य कर रही हैं। प्रान्तीय सरकारों का यह फ़र्ज है कि वे दूसरे प्रान्तों से अपने यहाँ आने वाले सब लोगों की पूरी-पूरी रक्षा करें। "जिस चीज़ को तुम अपनी समझते हो, उसका इस तरह उपयोग करो कि दूसरे को नुकसान न पहुँचे" – यह न्याय का जाना-पहचाना सिद्धांत है। यह नैतिक व्यवहार का भी सुंदर नियम है। आज की हालत में यह कितना उचित मालूम होता है!

"रोम में रोमनों की तरह रहो" यह कहावत जहाँ तक रोमन बुराइयों से दूर रहती है वहाँ तक समझदारी से भरी और लाभ पहुँचाने वाली कहावत है। एक-दूसरे के साथ घुल-मिलकर उन्नित करने के काम में यह ध्यान रखना चाहिए कि बुराइयों को छोड़ दिया जाय और अच्छाइयों को पचा लिया जाय। [ह. से, २१-९-'४७, पृ. २७७]

जहाँ तक सरकारी विभागों में नौकरियों का सवाल है, मेरी राय है कि यदि हम साम्प्रदायिक भावना को यहाँ भी दाखिल करेंगे, तो यह बात सुशासन के लिए घातक सिद्ध होगी। शासन सुचारु रूप से चले, इसके लिए यह ज़रूरी है कि यह सबसे योग्य आदिमयों के हाथ में रहे। उसमें किसी तरह का पक्षपात तो होना ही नहीं चाहिए। अगर हमें पाँच इंजीनियरों की ज़रूरत हो, तो ऐसा नहीं होना चाहिए कि हम हरएक जाति से एक एक इंजीनियर लें। हमें तो पाँच सबसे सुयोग्य इंजीनियर चुन लेने चाहिए, भले वे सब मुसलमान हों या पारसी हों। सबसे निचले दरजे की जगहें, यदि ज़रूरी मालूम हो, परीक्षा के ज़िरये भरी जाएँ; और यह परीक्षा किसी ऐसी सिमति की निगरानी में हो, जिसमें विविध जातियों के लोग हों। लेकिन नौकरियों का बँटवारा विविध जातियों की संख्या के अनुपात में नहीं होना चाहिए। राष्ट्रीय सरकार बनेगी तब शिक्षा में पिछड़ी हुई जातियों को शिक्षा के मामले में ज़रूर दूसरों की अपेक्षा विशेष सुविधायें पाने का अधिकार होगा। ऐसी व्यवस्था करना कठिन नहीं होगा। लेकिन जो लोग देश के शासन-तंत्र में बड़े-बड़े पदों को पाने की आकांक्षा रखते हैं उन्हें उसके लिए ज़रूरी परीक्षा अवश्य पास करनी होगी। [यं. ईं., २९-५-'२४, प. १८२]

सिविल सर्विस और तनख़ाहें

मेरे पास शिकायतें आती हैं कि सिविल सर्विस वालों को इतनी भारी तनख़ाहें क्यों दी जाती है? लेकिन सिविल सर्विसवालों को हम एकदम हटा नहीं सकते। अगर हटा दें तो काम कैसे चले? कुछ लोग तो चले गये। इसलिए जो लोग रह गये हैं; उन्हें अधिक मेहनत से काम करना पड़ता है। इसलिए सरदार पटेल ने उन्हें धन्यवाद भी दिया है। जो लोग धन्यवाद के लायक हैं उन्हें धन्यवाद मिले, तो मुझे कोई शिकायत नहीं हो सकती। परन्तु सच्ची सिविल सर्विस तो हम लोग हैं। हम जितना विश्वास सिविल सर्विस के लोगों पर रखते हैं उतना अगर अपने आप पर रखें, तो हम बहुत आगे बढ़ सकते हैं। अगर हम दगा करें, तो जैसे सिविल सर्विस वालों को सजा होती है वैसे ही हमें भी सजा होनी चाहिए। अमुक काम सौंप कर कहा जाय कि इतना काम आपको करना ही है। इस तरह सारी प्रजा को हम ज़िम्मेदार समझते हैं। जिन्हें पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी बनाते हैं उन्हें भी प्रतिमाह भारी वेतन देना पड़ता है और सिविल सर्विस वालों को भी। जब काँग्रेस के हाथ में करोड़ों का कारोबार नहीं था, तब तो हम किसी को मासिक वेतन नहीं देते थे। मासिक वेतन देना, मकान देना और पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी बनाना, यह

मुझे तो चुभता है। काँग्रेस का काम हमेशा सेवा करना रहा है। पहले हमें आज़ादी हासिल करनी थी। अब हमें हिंदुस्तान को ऊँचा उठाना है और यह देखना है कि हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, पारसी, ईसाई सब लोग यहाँ शान्ति से रहें। इस काम के लिए क्या हम पैसे दें? आज तक नहीं देते थे, तो अब कैसे दें? १४ अगस्त के बाद हमने देश को कितना आगे बढ़ाया है? कितना पानी गिरा, कितनी उपज बढ़ी? कितने उद्योग बढ़े? इसका हिसाब तो लीजिए। पैसे क्या कर सकते हैं? हिंद का काम बढ़े, नाम बढ़े और दाम बढ़े, तब तो बात है। तब गाँव के लोग भी महसूस करेंगे कि कुछ हो रहा है। ऐसा न हो और हम खर्च बढ़ाते जाएँ, वह कैसे हो सकता है? हर पेढ़ी को अपनी आमदनी और खर्च का हिसाब रखना पड़ता है। आमदनी खर्च से ज्यादा हो तो अच्छा लगता है। लेकिन इससे उलटी बात हो तो चिन्ता होती है। हिंदुस्तान एक बड़ी पेढ़ी है। आज हमारे पास पैसे हैं, इसलिए हम नाचते हैं। लेकिन हम सँभल कर नहीं चलेंगे, तो वे पैसे रहने वाले नहीं है। [ह. से., २८-१२-'४७, पृ. ४१७]

सिविल सर्विसवालों के कर्तव्य

लोकराज्य तो वही है जिसमें कोई रास्ते चलता आदमी उसके विषय में क्या कहता है, इसका अभ्यास किया जाय। और ऐसा राज्य वाइसरॉय के महल या आलीशान मकान में बैठकर नहीं चल सकता। हम तो ग़रीब हैं। इसलिए पैदल चलकर काम हो सकता हो, तो हम मोटर का उपयोग न करें। यदि कभी कोई मोटर में बैठने को कहेगा, तो हम उससे भी कहेंगे कि आपकी मोटर आपको ही मुबारक हो, हम तो पैदल ही ऑफिस जाएँगे। महलों में रहने वाला या मोटर में फिरने वाला आदमी राज्य नहीं चला सकता, क्योंकि इसके कारण उसे आम जनता की प्रतिक्रिया मालूम होना कठिन हो जाता है। लेकिन यदि वह पैदल घूमे-फिरे और आम जनता के बीच रहे, तो उसे सच्ची जानकारी प्राप्त हो सकती है।

दूसरी एक बात और है। मेरे पास ऐसी शिकायतें आई हैं कि आजकल सरकार ने व्यापार भी शुरू कर दिया है। उदाहरण के रूप में, अनाज की व्यवस्था राजेन्द्रबाबू सँभाल रहे हैं, वस्त्र की व्यवस्था राजाजी देख रहे हैं। ऐसी जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का व्यापार श्रेष्ठ पुरुषों के हाथ में होते हुए भी लोगों को ज़रूरी वस्त्र और अन्न मिल नहीं रहा। इसका कारण यह है कि सरकारी नौकर काफ़ी बड़ी मात्रा में रिश्वत लेते हैं। मैं नहीं कह सकता कि यह खबर कहाँ तक सही है। लेकिन यदि सरकारी नौकर ऐसे ही हों, तो उन विभागों के मंत्रियों को इस बात की उचित जाँच अवश्य करनी चाहिए। सरकारी

नौकरों की जिन पर कृपा हो, जिनका वसीला हो अथवा सगे सम्बन्धी हों, उन्हें तुरंत नौकरी मिल जाये, संख्या की अपेक्षा दुगुने-तीगुने रेशन कार्ड मिल जाएँ - ऐसी तमाम बातें यदि सच हों तो हमें शरम आनी चाहिए। अब हम पर कोई विदेशी सरकार राज्य नहीं कर रही है। और अंग्रेजों के जमाने में छोटे सरकारी कर्मचारियों पर जिस तरह के हुक्म बजाये जाते थे, वैसे हुक्म भी अब आप पर कोई नहीं बजा सकता। इसलिए छोटे-बड़े सब लोगों को वफ़ादारी के साथ देश की सेवा करनी चाहिए। आपको अपने मन से यह वृत्ति निकाल देनी चाहिए कि नौकरी करके पैसे कमा लिये और अपना पेट भर गया, तो हमने दुनिया जीत ली। जितने भी सिविल सर्विस वाले कर्मचारी हैं उनसे मैं विनंतीपूर्वक कहना चाहता हूँ कि आज से आपकी ज़िम्मेदारी दस गुनी ज्यादा बढ़ रही है। आप लोग जितनी वफ़ादारी से देश की सेवा करेंगे उतनी ही ज़ल्दी स्वराज्य में सुख, शान्ति और समृद्धि प्राप्त होगी। [बिहार पछी दिल्ली, (१९६१), पृ. ६४-६५]

घुड़दौड़ और सिविल सर्विस

नीचे दिया हुआ भाग हिरजनबंधु में छपे एक गुजराती पत्र का सारांश है:

बरसात के मौसम में पूना में घुड़दौड़ होती है। तीन स्पेशल गाड़ियाँ हर रोज पूना जाती है और वापस आती हैं। और यह तब होता है जब गाड़ियों में जगह नहीं मिलती और व्यापारियों को यात्रियों से ठसाठस भरी हुई गाड़ियों में सफर करना पड़ता है। यात्री अकसर पायदानों पर खड़े-खड़े सफर करते देखे जाते हैं। नतीजा यह होता है कि कभी-कभी प्राणघातक दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। इसमें यह बात और जोड़ दीजिए कि जब पेट्रोल की सब जगह कमी है तब विशेष मोटर गाड़ियाँ भी बम्बई से पूना दौड़ती हैं। क्या ये यात्री बम्बई में अपना हमेशा का राशन नहीं लेते? क्या इन्हें स्पेशल गाड़ियों में और घुड़दौड़ के मैदान में नाश्ता नहीं मिलता?

इस पर से मेरे मन में सिविल सर्विस की जाँच करने की बात पैदा होती है। जिन लोगों के बुरे प्रबन्ध की हम पहले निंदा करते थे, क्या वे ही लोग आज देश का राजकाज नहीं चला रहे हैं? हमारी आज क्या हालत हो रही है? हमें ज़रूरत का अनाज और कपड़ा भी प्राप्त नहीं हो रहा है। फिर भी हम ऐसे खर्चीले खेल-तमाशों में फँसे हुए हैं।

मैं अकसर घुड़दौड़ की बुराइयों के बारेमें लिख चुका हूँ। लेकिन उस समय मेरी बात पर कोई ध्यान नहीं देता था। विदेशी शासक इस बुराई को पसंद करते थे और उन्होंने इसे एक तरह की अच्छाई का जामा पहना दिया था। लेकिन अब उस गंदी बुराई से चिपके रहने का कोई कारण नहीं है। या कहीं ऐसा न हो कि हम विदेशी हुकूमत की बुराइयों को तो बनाए रखें और उसकी अच्छाइयाँ उसके साथ ही खतम हो जाएँ?

पत्र लिखने वाले भाई सिविल सर्विस के बारेमें जो कहते हैं, उसमें बहुत सचाई है। वह एक ऐसी संस्था है, जिसके आत्मा नहीं है। वह अपने मालिक के ढंग पर चलती है। इसलिए अगर हमारे प्रतिनिधि सचेत रहें और हम उन पर अपना फर्ज अदा करने के लिए जोर डालें, तो सिविल सर्विस के ज़िरये बहुत कुछ काम किया जा सकता है। आलोचना किसी भी लोकतांत्रिक सरकार का भोजन है। लेकिन वह रचनात्मक और समझदारी से भरी होनी चाहिए। जन-आंदोलन के आरंभ में काँग्रेस अपनी जिस बुनियादी पवित्रता के लिए प्रसिद्ध थी, उस पर ही जनता की आशा टिकी हुई है। और अगर हमें जिन्दा रहना है, तो काँग्रेस में वह पवित्रता हमें फिरसे लानी होगी। [ह. से., १७-८-'४७, पृ. २४०]

सिविल सर्विस और कंट्रोल

सिविल सर्विस के कर्मचारी आफिसों में बैठकर काम करने के आदी हैं। वे दिखावटी कार्रवाइयों और फाइलों में ही उलझे रहते हैं। उनका काम इससे आगे नहीं बढ़ता। वे कभी किसानों के संपर्क में नहीं आये। वे किसानों के बारेमें कुछ नहीं जानते। मैं चाहता हूँ कि वे नम्र बनकर राष्ट्र में जो परिवर्तन हुआ है उसे पहचानें। कंट्रोलों की वजह से उनके इस तरह के कामों में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। उन्हें अपनी सूझ-बूझ पर निर्भर करने का मौका देना चाहिए। लोकशाही का यह नतीजा नहीं होना चाहिए कि वे अपने-आपको लाचार महसूस करें। मान लीजिए कि इस बारेमें बड़े से बड़े डर सच साबित हों और कंट्रोल हटाने से हालत ज्यादा बिगड़ जाय, तो वे फिर कंट्रोल लगा सकते हैं। मेरा अपना तो यह विश्वास है कि कंट्रोल उठा लेने से हालत सुधरेगी। लोग खुद इन सवालों को हल करने की कोशिश करेंगे और उन्हें आपस में लड़ने का समय नहीं मिलेगा। [ह. से., २६-१०-'४७, पृ. ३२६]

सिविल सर्विस, पुलिस और फ़ौज

आज हिंदुस्तान में सिविल सर्विस के कर्मचारी, पुलिस और फ़ौज, जिनमें ब्रिटिश अफसर भी शामिल हैं, सब जनता के सेवक हैं। वे दिन अब बीत गये जब वे विदेशी शासकों से तनख़ाह पाकर जनता के साथ मालिकों जैसा बरताव करते थे। अब उन्हें पंचायत राज्य के वफ़ादार सेवक बनना होगा। उन्हें मंत्रियों से आदेश लेने होंगे। उन्हें घूसखोरी, अप्रामाणिकता और पक्षपात से ऊपर उठना होगा। दूसरी तरफ लोगों से यह अपेक्षा रखी जाती है कि वे शासन-प्रबन्ध में पूरा-पूरा सहयोग दें। अगर सिविल सर्विस के कर्मचारी, पुलिस और फ़ौज अपना कर्तव्य भूलते हैं, तो वे बेवफा करार दिये जाएँगे और स्थिति को सुधारने के लिए उचित कदम उठाये जाएँगे। इन नौकरियों में काम करने वाले अप्रामाणिक और पक्षपाती लोगों के ख़िलाफ़ अपनी शिकायतें ज़ाहिर करने का जनता को पूरा अधिकार है। [ह. से., २६-१०-'४७, पृ. ३२३, ३२५]

सिविल सर्विस के सदस्यों को नई सरकार के अनुकूल बनने की शिक्षा अभी से देनी चाहिए। वे किसी कौम का पक्ष नहीं ले सकते। उनमें सम्प्रदायवाद का ज़रा-सा भी चिह्न दिखाई दे, तो उनके साथ सख्ती से काम लेना चाहिए। उसके ब्रिटिश सदस्यों को जानना चाहिए कि अब उन्हें भारत की नई सरकार के प्रति वफ़ादार रहना है, न कि पुरानी सरकार और इसलिए ग्रेट ब्रिटेन के प्रति। अपने आपको शासक और श्रेष्ठ मानने की उनकी आदत का स्थान अब जनता की सच्ची सेवा की भावना को लेना चाहिए। [बिहार पछी दिल्ली, (१९६१), पृ. ३९४-९५]

८३. सरकारी नौकरों की बहाली

मेरी फाइल में ऐसे काँग्रेसजनों के कई पत्र पड़े हुए हैं, जिन्होंने असहयोग आंदोलन के दिनों में सरकारी संस्थाओं से असहयोग कर दिया था। इन लोगों में वे भी थे, जिन्होंने सरकारी नौकरियाँ छोड़ दी थीं। इनमें से कुछ अब अपनी बहाली के लिए आंदोलन कर रहे हैं। अपने इस आंदोलन के समर्थन में वे मेरी उस अपील का हवाला देते हैं, जो मैंने जनसाधारण से की थी और जिनमें सरकारी नौकर भी शामिल थे। जहाँ तक मुझे पता है, कष्ट या नुकसान उठाने वालों में से जिन्होंने मुआवजे के लिए कोई आंदोलन नहीं किया, वे हैं – सत्याग्रही, जिन पर भारी भारी जुर्माने किये गए; कुटुम्बी या रिश्तेदार, जो अपने

जीविका कमाने वाले सदस्यों से हाथ धो बैठे; वकील, जिन्होंने अपनी वकालत छोड़ दी और मुफलिसी कि हालत में पहुँच गये; और विद्यार्थी, जिन्होंने अपनी पढ़ाई और भविष्य की तमाम आशाएँ छोड़ दीं। उनका ख़याल यह है कि स्वेच्छापूर्वक किया गया कष्ट-सहन स्वयं ही अपना पुरस्कार है, और ऐसा कष्ट-सहन किसी और मुआवजे का दावा नहीं करता।

यदि ये सबके सब काँग्रेसी मंत्रियों के सामने इस तरह का दावा करने लग जाएँ, तब तो उनका सचमुच यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा और मुआवजों के इन सारे दावों पर विचार करने के सिवा वे दूसरा कोई काम ही नहीं कर सकेंगे। इन दावों को पूरा करने के लिए उन्हें रुपया भी कहीं से पैदा करना पड़ेगा, जो कई करोड़ होना चाहिए। इसके अलावा, जिन सरकारी नौकरों ने अपनी नौकरियाँ मजबूरन् या अपनी मरजी से छोड़ दी थीं, उनके लिए यह बताना भी कठिन होगा कि दूसरे पीड़ितों ने उनकी तुलना में कम तकलीफें उठाई थीं।

मेरी राय में इन भूतपूर्व सरकारी नौकरों ने एक वर्ग के नाते सबसे कम तकलीफ या नुकसान उठाया है। और अगर इतने बरसों तक उन्हें कोई काम नहीं मिला और ये बिलकुल बेकार बैठे रहे हैं, तो वे शायद ही राज्य के योग्य नौकर हो सकते हैं। काँग्रेसननों के लिए सरकारी नौकरी कोई आर्थिक उन्नित का द्वार नहीं है; उसे तो लोकसेवा का एक साधन होना चाहिए। इसलिए सिर्फ वे ही काँग्रेसवादी सरकारी नौकरियों में प्रवेश करें, जिनकी बाज़ार-कीमत उस से कहीं ऊँची हो जो वे सरकार से पा सकते हैं। वे तभी नियुक्त किये जा सकते हैं जब सरकार को उनकी आवश्यकता हो। 'काँग्रेस का आश्रय' जैसी कोई चीज तो होनी ही नहीं चाहिए। [ह. से., ३-१२-'३८, पृ. ३३२]

८४. लोकतंत्र और सेना

एक सैनिक अधिकारी अपने मित्र को लिखते हैं:

... कितने दुःख की बात है कि उन तमाम देशों में, जहाँ प्रजा का राज्य है, राजनीतिज्ञ सेना के बारेमें बहुत कम ज्ञान रखते हैं और उसमें बहुत कम रस लेते हैं। सेना से वे बहुत कुछ सीख सकते हैं। उन्हें कम से कम यह तो सोचना ही चाहिए कि दूसरे सरकारी नौकरों के बनिस्बत सैनिक क्यों अपनी नौकरी से इतना प्रेम और नमकहलाली की भावना रखता है, हालाँकि सेना में उसे दूसरी

नौकरियों से कहीं ज्यादा कष्ट, खतरे और मुसीबतें उठानी पड़ती हैं? आपके पास एक शानदार सेना है। और जब आपके सबसे योग्य व्यक्ति काफ़ी संख्या में इसके अधिकारी बनेंगे, तो वह और भी शानदार हो जाएगी। अगर आप लोग सही प्रकार के अधिकारी ढूँढ़ सकें, तो आपको सेना के बारेमें किसी तरह की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं रहेगी। तुलना में यह सेना किसी से कम नहीं होगी। लेकिन अगर गलत प्रकार के अधिकारी रख लिए गये या राजनीति को सेना में घुसने दिया गया, तो भारी नुकसान उठाना पड़ेगा। अभी अनेक वर्षों तक हिंदुस्तान को काफ़ी मुक्किलों से गुजरना है। मेरा विश्वास है कि आपकी सेना ही संकट के समय आपके काम आयेगी। रक्त भी कम से कम बहेगा। परन्तु शर्त यह है कि सेना के लिए सही प्रकार के अधिकारी ढूँढ़े जाएँ और राजनीतिक तथा धार्मिक झगड़ों को उससे दूर रखा जाय।

अगर यह सच हो कि प्रजातंत्र वाले तमाम देशों में राजनीति में भाग लेने वाले लोग सेना में रस नहीं लेते, तो कोई दु:ख की बात नहीं है। दु:ख की बात तो यह है कि वे सेना में गलत प्रकार का रस लेते हैं। वे समझते हैं कि सेना उनकी रक्षा करती है, प्रजातंत्र की रक्षा करती है, धन लाती है, दूसरे देशों पर हमारा अधिकार जमाती है और देश के भीतर दंगा-फसाद होने पर सरकार को अपने सहारे खड़ा रखती है। कया ही अच्छा हो कि लोकराज्य किसी भी बात के लिए सेना का सहारा न ले, ताकि वह सच्चा लोकराज्य हो सके !

जिस सेना की ऊपर वकालत की गई है, उसने हिंदुस्तान के लिए क्या किया है? मुझे डर है कि किसी अर्थ में भी उसने हिंदुस्तान को लाभ नहीं पहुँचाया है। उसने बेचारे लाखों करोड़ों देशवासियों को गुलाम बना रखा है। उन्हें कौड़ी-कोड़ी का मुहताज बना दिया है। उस सेना का ब्रिटिश विभाग जितनी ज़ल्दी यहाँ से वापिस भेज दिया जाय और किसी अधिक अच्छे कार्य में लगा दिया जाय, उतना ही हिंदुस्तान का, इंग्लैंड का और दुनिया का भला होगा। सेना के हिंदुस्तानी विभाग का दिमाग भी जितनी ज़ल्दी विनाश के कार्य से हटाकर सर्जन के कार्य में लगा दिया जाय, उतना ही लोकराज्य के लिए वह अधिक उपयोगी होगा। जो लोकराज्य केवल सेना के सहारे ही जीवित रह सके, वह एक निकम्मी चीज है। सैनिक शक्ति मन के विकास को रोकती है। उसमें मनुष्य की आत्मा दब जाती है। इस 'सुयोग्य' सेना ने इतने बरसों से विदेशी हुकूमत को देश में कायम रखा है। उसकी कृपा से आज स्थिति यह हो

गई है कि कैबिनेट मिशन के प्रयत्नों के बावजूद हिंदुस्तान को शायद एक छोटी या लम्बी घरेलू लड़ाई में से गुजरना पड़े। उसका कड़वा अनुभव ही शायद हमें सशस्त्र सेना के मोह से छुड़ा सकेगा। सेना में आदेश या नियम के अनुसार चलने की जो खूबी है, वह तो समाज के हर अंग में होनी चाहिए। इस खूबी को निकाल दें, तो सेना आदमी को हैवान बनाने के सिवा और कुछ नहीं सिखाती। अगर स्वतंत्र हिंदुस्तान को भी आज के जितना ही सैनिक खर्च उठाना पड़ा, तो भूखों मरने वाले करोड़ों लोगों को उसकी स्वतंत्रता से कोई लाभ नहीं पहुँचेगा। [ह. से., ९-६-'४६, पृ. १७६]

अगर हम स्वराज्य की देहरी पर खड़े हैं, तो हमें सेना को अपनी समझकर रचनात्मक कार्य में उसका उपयोग करने से ज़रा भी हिचकिचाना नहीं चाहिए। आज तक उसका उपयोग हमारे ख़िलाफ़ अँधाधुंध गोलीबार करने में हुआ है। आज सेना वाले हल चलाकर अनाज पैदा करें, कुएँ खोदें, पाखाने साफ करें और दूसरे अनेक रचनात्मक कार्य करके लोगों की आँख की किरिकरी न रहकर सबके प्रिय बनें। [ह. से., २१-४-'४६, पृ. ९७]

८५. अनुशासन का गुण

आज़ाद राष्ट्र में अनुशासन कैसा होना चाहिए, इसकी मिसाल हमें अंग्रेजों से लेनी चाहिए। रानी विक्टोरिया के बारे में यह कहानी प्रसिद्ध है कि जब वह १७ बरस की थी तब एक रात उसे यह कहने के लिए जगाया गया कि वह इंग्लैंड की रानी है। वह जवान लड़की भगवान द्वारा सौंपी गई इतनी भारी ज़िम्मेदारी से स्वाभाविक रूप में घबरा गई और ज़रूरत से ज्यादा डर गई। बूढ़े प्रधानमंत्री ने रानी के सामने घुटनों के बल झुककर उसे ढाढ़स बँधाया। रानी विक्टोरिया ने सिर्फ इतना ही कहा कि मैं ठीक हो जाऊँगी। इंग्लैंड के अनुशासन पालने वाले लोंगो ने ही रानी को राज्य करने में मदद की। आज मैं चाहता हूँ कि आप यह समझ लें कि आज़ादी आपके दरवाजे पर खड़ी है। वाइसरॉय मंत्रि-मंडल के सिर्फ नाम के अध्यक्ष हैं। आप देश के राजकाज में उनकी मदद की आशा न करके ही उन्हें मदद पहुँचायेंगे। आपके बेताज के बादशाह पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं। वे आपकी सेवा राजा बनकर नहीं, बल्कि प्रथम पंक्ति के सेवक बनकर ही कर रहे हैं। वे हिंदुस्तान की सेवा के द्वारा सारी दुनिया की की सेवा करना चाहते हैं। जवाहरलाल अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति हैं और वे हिंदुस्तान में रहने वाले सारे विदेशी राजदूतों से मित्रता का सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन अगर लोग अनुशासन तोड़कर जवाहरलाल के काम

को बिगाड़ दें, तो वे अकेले राज नहीं चला सकते। पहले के स्वेच्छाचारी शासकों की तरह वे तलवार के बल पर राज नहीं कर सकते। ऐसा राज्य न तो पंचायत-राज होगा और न जवाहर-राज। हर हिंदुस्तानी का यह कर्तव्य है कि वह मंत्रियों के काम को आसान बनाए और उसमें किसी तरह का हस्तक्षेप न करे।

आपको याद होगा कि पंडित नेहरू किस प्रकार एक साल पहले काश्मीर गये थे जब कि उनका दिल्ली में रहना अत्यंत आवश्यक था; और किस प्रकार उस समय के काँग्रेस प्रेसिडेन्ट मौलाना साहब के आदेश से वे दिल्ली लौट आये थे। आज पंडितजी फिर काश्मीर जाने की बात कर रहे हैं। उनका दिल दुखी है, क्योंकि काश्मीरियों के नेता शेख अब्दुल्ला साहब अभी तक जेल में बन्द हैं। लेकिन मुझे लगता है कि पंडितजी का दिल्ली में रहना ज्यादा ज़रूरी है। इसलिए उनके बदले मैंने काश्मीर जाने की इच्छा प्रकट की है। लेकिन जवाहरलाल मुझे वहाँ जाने की आज्ञा दें, इसके पहले उन्हें बहुत-सी बातों का विचार करना होगा। यदि मैं काश्मीर गया तो वहाँ से भी उसी तरह बिहार और बंगाल की सेवा करूँगा, जैसे मैं इन प्रान्तों में शरीर से मौजूद रह कर करता। [ह. से., ८-६-'४७, पृ. १५५, १५८]

८६. मंत्री और प्रदर्शन

अब हमें देश का भिन्न रीति से मार्गदर्शन करना पड़ेगा; और उसके लिए कार्यकर्ताओं का एक अच्छा दल खड़ा करना होगा। इन कार्यकर्ताओं का यह कर्तव्य होगा कि वे लोगों में घुल-मिलकर उनके सच्चे दु:खों और कष्टों को जानें और उन्हें यह पाठ सिखायें कि अब यह देश हमारा है और देश का शासन चलाने वाले मंत्री हमारे चुने हुए हैं। अब यदि उनके ख़िलाफ़ प्रदर्शन किये जाएँ, तो उनसे मंत्रियों की अपेक्षा लोगों का ही अपमान अधिक होता है। हाँ, यदि कोई मंत्री ऐसा काम करता हो जिससे आम जनता के साथ अन्याय हो, तो जनता उसे कान पकड़ कर मंत्रीपद से अलग कर सकती है – उसके स्थान पर दूसरे को बैठा सकती है। अब यह शक्ति भी जनता में विकसित होनी चाहिए। मंत्री अपने पदों पर जनता के स्वामियों के नाते नहीं बैठे हैं, परन्तु उनके सेवकों के नाते बैठे हैं। यही बात मैं समाजवादियों से भी कह रहा हूँ। परन्तु. . . जैसे लोग भी आज मेरी बात समझते नहीं है, यद्यपि मैं आशा तो रखता हूँ कि उन्हें समझा सकूँगा। काँग्रेस ने अंग्रेजों के ख़िलाफ़ आज़ादी की लड़ाई लड़ते समय जो काम किया, उसे भूल कर अब काँग्रेस को राष्ट्र की जनता को राजनीतिक शिक्षण देने की मुहिम शुरू करनी चाहिए। [बिहार पछी दिल्ली, (१९६१), प्. ४२८]

८७. नमक-कर

आज सुझे एक दूसरी बात कहनी है। नमक का कर रद कराने के लिए दांडीकूच की थी। बेशक, वह कर तो रद कर दिया गया। परन्तु नमक आजकल महँगा हो गया है। अगर यह सच हो तो हमारे व्यापारियों के लिए यह लज्जा की बात है। ग़रीब लोग जिस नमक पर निर्वाह करते हैं उस नमक से भी व्यापारी नफा कमाने की इच्छा रखें, यह सचमुच घृणास्पद और निंदनीय है। शक्कर न मिले तो आदमी काम चला सकता है, परन्तु नमक के बिना गरीबों के गले के नीचे रोटी नहीं उतर सकती। सरकार से भी मेरी विनती है कि इस बारे में वह जाग्रत रहे। सरकार को चाहिए कि वह अपनी देखरेख में नमक के आगरों और कारखानों का काम चलाये, जिससे ग़रीब जनता को मूल कीमत पर नमक मिल सके। नमक-कर रद होने का लाभ देश की जनता को मिलना ही चाहिए। अगर लोग चाहें तो वे गाँवों में और शहरों में घर-घर नमक बना सकते हैं। ऐसा करने से कोई उन्हें रोक नहीं सकता। अगर हम अपना आलस्य छोड दें, तो ऐसे अनेक गृहउद्योगों का विकास हो सकता है और हमारी आर्थिक और नैतिक स्थिति सुधर सकती है। अगर लोग खुद नमक बनाएँ और उसके वितरण की व्यवस्था करें तथा उससे नफा कमाने का लोभ छोड दें, तो नाम मात्र की कीमत पर ही नमक मिल सकता है। परन्तू हमारे देश में आज सर्वत्र स्वार्थ और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। ऐसी परिस्थिति में रामराज्य की कल्पना कैसे सिद्ध हो सकती है? लेकिन एक बात निश्चित है कि यदि पाकिस्तान या भारत की सरकार अपनी सत्ता के गर्व में आकर नमक पर कर लगायेगी, तो वह एक लज्जाजनक और दुःखद कृत्य होगा। मेरी आशा तो यह है कि ऐसा नहीं होगा। आज हम नमकहराम बन गये हैं। [बिहार पछी दिल्ली, (१९६१), पृ. ३९७-९८]

८८. अपराध और जेल

अहिंसक मार्ग पर चलने वाले स्वतंत्र भारत में अपराध तो होंगे, परन्तु अपराधी नहीं होंगे। उन्हें सजा नहीं दी जाएगी। दूसरे किसी रोग की तरह अपराध भी एक रोग है और वह प्रचलित सामाजिक व्यवस्था की उपज है। इसलिए सारे अपराध – जिनमें हत्या भी ज्ञामिल होगी – रोग माने जाएँगे और रोग की तरह ही उनका इलाज होगा। यह अलग प्रश्न है कि ऐसा भारत कभी अस्तित्व में आयेगा या नहीं। [ह., ५-५-'४६, पृ. १२४]

आज़ाद हिंदुस्तान में कैदियों के जेल कैसे होने चाहिए? बहुत समय से मेरी यह राय रही है कि सारे अपराधियों के साथ बीमारों जैसा बरताव किया जाय और जेल उनके अस्पताल हों, जहाँ इस वर्ग के बीमार इलाज के लिए भरती किये जाएँ। कोई आदमी अपराध इसलिए नहीं करता कि ऐसा करने में उसे मजा आता है। अपराध उसके रोगी दिमाग की निशानी है। जेल में ऐसी किसी खास बीमारी के कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर करना चाहिए। जब अपराधियों के जेल उनके अस्पताल बन जाएँगे, तब उनके लिए आलीशान इमारतों की ज़रूरत नहीं होगी। कोई भी देश ऐसा नहीं कर सकता। तब हिंदुस्तान जैसा ग़रीब देश तो अपराधियों के लिए बड़ी-बड़ी इमारतें बना ही कैसे सकता है? लेकिन जेल के कर्मचारियों की दृष्टि अस्पताल के डॉक्टरों और नर्सों जैसी होनी चाहिए। कैदियों को यह महसूस करना चाहिए कि जेल के अफसर उनके मित्र हैं। अफसर वहाँ इसलिए हैं कि वे अपराधियों को फिर से मानसिक तंदुरस्ती प्राप्त करने में मदद करें। उनका काम अपराधियों को किसी तरह सताने का नहीं है। लोकप्रिय सरकारों को इसके लिए ज़रूरी आदेश निकालने होंगे। लेकिन इस बीच जेल के कर्मचारी अपनी व्यवस्था को मानवतापूर्ण बनाने के लिए बहुत-कुछ कर सकते हैं। [ह., २-११-'४७, पृ. ३९५-९६]

स्रोत

[इसमें यं. ईं. यंग इंडिया के लिए; ह. हरिजन के लिए, ह. से. हरिजनसेवक के लिए, हिं. न. हिंदी नवजीवन के लिए तथा नटेसन स्पीचेज एन्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, (चौधा संस्करण), नटेसन, मद्रास के लिए आया है।]

* * * * *

